सौन्दर्यलहरी

(हिन्दी भाषा-भाष्य)

व्याख्याकारः

पं. हरिदत्त शास्त्री

हरिदत्त शास्त्री

सौन्दर्यलहरी

SL6

।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

112

सौन्दर्यलहरी

(हिन्दी भाषा-भाष्य)

व्याख्याकारः

पं. हरिदत्त शास्त्री

ज्ञाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

38. यू. ए., बंगलोरोड, जवाहरनगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : (011) 23856391; फैक्स : 23854728

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2005 ई.

मूल्य 125.00

अन्य प्राप्ति-स्थान

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक आफ बडौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2420404

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117, गोपाल मन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2335263

मुद्रक

ए. के. लिथोग्राफर्स

दिल्ली

॥ युग्मम् ॥

वेदाभ्रयुग्म श्रुति विक्रमवत्सरेऽस्मिन् ।
पक्षेसिते शिवतिथौ भृगुवासरेयम् ॥
मासेति पावन तमे किलमार्गशीर्षे ।
'श्रीकृष्णदत्त तनयो हरिदत्त शास्त्री' ॥ १ ॥
स्मृत्वा त्वदीय सरसीरुह पादयुग्मम् ।
'सौन्दर्यभाष्य कुसुमावलिराविरासीत्' ॥
तस्मात्प्रणम्य रवि चन्द्र पदारविन्दे ।
नूपुर रूपमविधाय समर्पयामि ॥ २ ॥

प्रारंभिक परिचय

सुखं मे भूयाद् दुःखंमाभूः।

मुझे सुख हो दुःख न हो। यह कामना जीवमात्र की स्वाभाविक होती है। परन्तु दुःख में विमुक्ति का साधन एक-मात्र मनुष्य शरीर में ही है। मनुष्य पुरषार्थ द्वारा उस साधन-सम्पत्ति का उपयोग कर सकता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय मनुष्य जीवन को सफल करनेवाले हैं। उक्त पुरुषार्थ विहीन मनुष्य पशु जाति से पृथक् अपने को बताने में कथञ्चित भी समर्थ नहीं हो सकता है। महान् दुःख, जन्म-मरण रूपी शृङ्खला है। जब तक यह शृङ्खला बनी है तब तक सुख कहाँ ? यह शृङ्खला अज्ञान से बनती है, और अज्ञान में बनी रहती है। जब तक महामोह अज्ञान का आधिपत्य जीवन में रहता है, तब तक यह शृङ्खला पुष्ट रहती है, इसका विलय, ज्ञान से ही होता है। "ज्ञानेन तु तदज्ञानंयेषां नाशितमात्मनः" ज्ञान से जिनका अज्ञान नाश हो जाता है, वह दुःख से छुटकारा पा सकते हैं। ज्ञान अनुभवगम्य कहते हैं। अनुभव सब को नहीं, जिसे स्वयं अनुभव नहीं है, वे दूसरों को कैसे अनुभव करा सकते हैं। अनुभवगम्य ब्रह्मज्ञान श्रीविद्या की उपाशना से प्राप्त होगा। श्रीविद्या की उपाशना में भगवती के यन्त्रात्मक, कुण्डल्यात्मक

आध्यात्मिक पूजन है, लय योग इसी में है। यह श्रीविद्या के उपाशक को ज्ञान हो जाता है, उसका शरीर देवालय, जीवात्मा देवता है। "देहो देवालय: प्रोक्तः, जीवोंदेव: सनातनः।" इस मनुष्य देह में षट्चक्र-भेदन कुण्डलनी को जागृत करना उपाशक को बताया है. भगवती की विधिवत् पूजा हवन करनेसे उसके अन्तःकरण में चिदग्नि का विकाश हो जाता है।

श्रीविद्या की उपाशना भोग, मोक्ष दोनों सिद्धियों को देनेवाली है, स्वयं शिवजीने कहा हैं—"अखिल पुरुषार्थैक घटना, स्वतंत्रं ते तन्त्रं" सम्पूर्ण पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देनेवाला श्रीविद्या का यह स्वतन्त्र तन्त्र पृथ्वी लोक में प्रकट हुआ। पूज्यपाद शंकराचार्य ने इसी श्रीविद्या की उपाशना और सम्पूर्ण मन्त्र-शास्त्र के सर्वस्व, सौन्दर्य लहरी की रचना की है। इस श्रीविद्या के आदि उपाशक १५ प्रधान थे, जिनके नाम ये हैं—मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ अगस्त्य, नन्दिकेश्वर, सूर्य, विष्णु, षण्मुख, शिव, दुर्वासा, ब्रह्मा, इन्द्र और यम। जिस २ मंत्र से जिसने उपाशना की है श्लोक नं० १ में उसका विशदीकरण किया गया है। श्रीविद्या की उपाशना सच्चिदानन्द परब्रह्म की ही उपाशना है, जिसे पराशक्ति की उपाशना कहा है। उसीसे सारे ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ है। श्रीविद्या और ब्रह्म एक ही है। ब्रह्म प्रकाश स्वरूप हैं, और श्रीविद्या विमर्षरूपा है। कुलार्णव, ज्ञानार्णव, वामकेश्वर तन्त्र तथा परशुराम कृत कल्पसूत्र में श्रीविद्या का विस्तार दिखाया है। पञ्चदशी विद्या "शिवः शक्ति

कामः (श्लोक ३२) से तीन खण्डोंमें दिखाईहै, त्रिपुरा तापिनी तथा वह्वर्च उपनिषद में त्रिपदा 'तत्सवितुर्वरेण्यं' तीन चरणों से पञ्चदशी विद्या बताई है। ऋग्वेद का आदि अक्षर 'अग्निमीड़े' से अकार, यजुर्वेद 'इषेतोर्जेत्वा" से इकार, सामवेद "अग्न आयाहि" से अकार। इन तीनोंके मिलानेसे अनुस्वार रहित ऐं वाग्भव कादि विद्या का प्रथम कूट बनता है, अतः इसको वेदत्रयी कहा है। यह पञ्चदशाक्षरी विद्या है, रमाबीज के योग से षोड़शाक्षरी हो जाती है। अतः अविद्यानामन्तः (श्लोक ३) में श्रिद्याकी उपाशनासे अविद्या दूर होकर आत्म साक्षात्कार हो जाता है। इसका महात्म्य--कामोयोनि कमलेत्येवं संकीर्तितैः शब्दैः व्यवहरति नतु प्रकटं यां विद्यां वेदपुरुषोपि" बह्वचौंपनिषद में इसीका स्पष्टीकरण किया है। "देवी ह्येकाग्र आसीत् इत्युपक्रम्य" कामकला रूपा या शृङ्गारकला देविने सारे ब्रह्माण्डको प्रकट किया है। (श्लोक ४६) "विशाला कल्याणी" इस परा (शक्ति शाम्भवि विद्या) से— कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या रूपी रहस्य ॐ इस शब्द से प्रकट हुआ। इसी शक्ति ने पुरत्रय, शरीर त्रय में ब्याप्त होकर वाह्य जगत् तथा अन्तर्जगत को प्रकाश किया है। (श्लोक २) 'तनीयांसं पांशुं" आत्मा अनात्मा का भेद इसीसे प्रकट होकर अन्तमें—"अहं ब्रह्मास्मि अयमात्मा ब्रह्म तत्वमसि इत्यादि महावाक्य बोधित ब्रह्मात्म्यैकस्थिति" इसीने दिखाई है। यंही षोड़शी पञ्चदशाक्षरी महात्रिपुर सुन्दरी है। इस प्रकार बह्वृच उपनिषद में वर्णन आया है। अतः, श्रीगुरूपदिष्ट मार्गसे श्रीविद्याका रहस्य जान

कर श्राविद्या को उपाशना भोगैश्वय के अनन्तर ब्रह्म साक्षात्कार (मोक्ष) करानेवाली है, सौन्दर्य लहरी में भगवती के उस दिव्य सुन्दरता के प्रकाश-पुञ्ज का वर्णन करते हुए सात करोड़ महा-मन्त्र जो षडाम्नाय से निकले हैं, उनसे प्रतिपाद्य श्रीचक्र "चतुर्भिः श्रीकण्ठैः" (श्लोक ११) नवयोन्यात्मक उसके आवरण देवता प्रत्यधि देवताओंके पूजनका क्रम दिखाया है। सौन्दर्य लहरी के एक २ श्लोक मन्त्र रूप हैं, उनका प्रयोग जिस-जिस काम में होता है, उसका संक्षिप्त रीति से वर्णन कर दिया है। श्रीयन्त्रका सूक्ष्म पूजन 'महीं मूलाधारे' (श्लोक ९) 'जपो जल्पः शिल्पं' (श्लोक २७) 'पुरारातेरंतः' (श्लोक ९६) भी इसमें लिख दिया है। भगवती की सुन्दरता के वर्णनरूपी सौन्दर्य लहरी में जो सुगुप्त रूप से मन्त्र और योग प्रणाली अन्तर्याग कुण्डलनी का विकाश यह हिन्दी भाषा में अनुवाद मात्र किया है। इन एक २ श्लोकमें जो भाव है, उसका पूर्णतया विशदीकरण करना कठिन है, अतः संक्षिप्त रूपमें जितना बन पड़ा भाषा-भाष्य लिखा है।

श्रीविद्या का पूजन इस एक श्लोक से प्रकट होता है:—

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं।
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्॥
वीरान्द्य्वष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावली पञ्चकं।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥

श्लोक १ से ४१ तक मन्त्रात्मक हैं, और ४२ से मूर्त्यात्मक हैं। मनुष्य का देह नवयोन्यात्मक श्रीयन्त्र का प्रतिबिम्ब है। इसका चित्र पृष्ठ नं० २७३ के साथ है।

शुभेच्छु—
हरिदत्त शास्त्री

* श्री गणेशाय नमः *

सौन्दर्य लहरी

हिन्दी भाषा भाष्य

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा, कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥१॥

टीका :—

यदि शिव शक्तिके साथ संयुक्त हो जाय तभी प्रभु (ईश्वर) होनेमें समर्थ हो सकता है। (न चेदेवं) यदि ऐसा (शक्ति-संयोग) न हो तो स्पन्दन (हिलने डुलने) में भी समर्थ नहीं हो सकता है। इसलिये (हे भगवति!) विष्णु शिव और ब्रह्मा आदिसे आराधना करने योग्य तुमको अकृतपुण्य (जिसने पुण्य सञ्चय न किया हो वह पापी) कैसे प्रणाम और तुम्हारी स्तुतिकर सकता है।

भाष्य :—

भगवान् आदि-शंकराचार्य आठ वर्षकी अवस्थामें ही "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस डिंडिम नादसे अखिल विद्वत्संसारको आत्माभिमुखि बृति करनेका निर्देश और स्थान-स्थान पर कर्म, उपासना, भक्ति, ज्ञान सबका एक वाक्यतासे निःश्रेयस पथको प्रकाशित कर चुके थे, तथापि "पुरुष विद्या 'नित्यत्वात कर्म सम्पत्ति र्मन्त्रो वेदे" त्रिगुणात्मक मन और बुद्धिके रहते ज्ञान निरन्तर मनुष्य जीवनमें स्थिर नहीं रहता है इसलिए "श्रीविद्या" की उपासना मानव संसारमें नित्य ज्ञान निष्ठावाली अनुभवकर "शिवः" शक्त्या युक्तः" से सौन्दर्य लहरी उनके मुखारविन्दसे प्रकट हुई। शिव शब्द मङ्गलात्मक होनेसे इस स्तवनका प्रारम्भ शिव शब्दसे किया गया है। शिव शब्दका प्रयोग षटचक्र-निरूपण पृष्ठ ५५ में इस प्रकार आया है :—

"शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणाः
लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे
पदं देव्या देवी चरणयुगलाम्भोजरसिकाः
मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानममलम् ॥

सहस्रारमें साधक शिव आत्माका दर्शन करते हैं, अर्थात् शिव शब्द आत्माका बोधक होनेसे मङ्गलार्थक है।

शिवेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।
भस्मी भवन्ति तस्याशु महापातक-राशयः ॥

शिव यह दो अक्षरका मन्त्र जिसकी जिह्वासे जपा जाता है उसके सम्पूर्ण पाप नाश हो जाते हैं। "शान्तं शिवमद्वैतं स आत्मा स विज्ञेयः" शिव शब्द मङ्गल वाचक और आत्म बोधक तथा वेद विहित है इसलिए यजुमें भी आया है "तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु" मनमें शिवका संकल्प होनेको आराधना करते हैं। यतः शिव-संकल्पात्मक मन ही आनन्दका साधन हो सकता है।

शिव (निष्कल आत्मतत्व) में जब शक्ति (विमर्श) अर्थात इच्छा, क्रिया, ज्ञान या रौद्री, ज्येष्ठा, वामाका संयोग होता है तब शिवतत्व इस संसारका निर्माण और संचालन कर सकता है। श्रुति—"इन्द्रो मायाभि बहु रूपमोयते" इन्द्र आत्मा माया शक्तिसे ही विचित्र संसारको रचता है। यथा इच्छा शक्तिके संयोगसे "एकोऽहं बहुस्याम्" शिवतत्वमें यह कल्पना होती है।

आत्मा शक्ति-क्रिया शक्तिके योगसे हिरण्यगर्भ रूप धारण करती है, तथा शिव-आत्मा-शक्ति ज्ञान-शक्तिके योगसे ही परम-श्रेयः (मोक्ष) प्राप्त करती है। योग मार्गमें मूलाधारस्थ शिवतत्व जिसके लिए आधार चक्रमें इस प्रकार निरूपण किया है "काशी-वासि-विलासि विलसति सरिदावर्त रूप प्रकाशः" वह शक्ति कुण्डलिनीके योगसे सहस्रारमें मोक्ष स्थितिको प्राप्त होती है।

शिव शब्दमें इ-कार शक्ति वीज है। शवमें जबतक इ-कारका संयोग नहीं होता है तबतक वह शव रहता है अर्थात मृतक शरीर, मृतक शरीरमें हिलने डुलनेकी शक्ति नहीं रहती है।

जब शव्में इ-कारका संयोग होता है तब वह शिव हो जाता है; शिव समग्र शक्तिका केन्द्र होता है।

अक्षर (वर्ण) दो प्रकारके होते हैं, स्वर और व्यञ्जन :— अकारसे अः विसर्ग तक १६ स्वर होते हैं इन्हें शक्तिके अक्षर कहते हैं, क कारसे ह कार तक ३५ वर्णोंको व्यञ्जन कहते हैं ये शिवाक्षर हैं। जबतक ये शिवाक्षर (व्यञ्जन) शक्ति (स्वर) वर्णोंसे युक्त नहीं होते तबतक उनका मुखसे उच्चारण तक नहीं हो सकता है। शिव शब्दका देव शब्द विशेषण होनेसे यथा 'न चेदेवं देवो' दिवु क्रीड़ासे देव शब्द बनता है इससे यह द्योतना होती है कि यह सारी सृष्टि लीला मात्र है ब्र० सू० "लीलामात्रं तु कैवल्यं" यह सारा प्रपञ्च एकमात्र लीला विलास है। शिव (आत्मा या विद्या) और विमर्श (अविद्या या माया) के संयोगसे स्फुरण हो रहा है इसलिए वेदोंमें विद्या (शिवतत्व) अविद्या (विमर्श) इन दोनोंका विचार लिखा है "विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृत मश्नुते" अविद्या कर्मकाण्डसे मृत्यु तकका निग्रह कर सकता है, विद्या आत्मज्ञान से मोक्ष प्राप्त करता है यह श्रुतिका तात्पर्य है। जो कुछ व्यक्त अव्यक्त संसार अनुभूत होता है यह समग्र शिव शक्तिका ही परिणाम है। शब्दमय जगतकी रचना भी तब ही हो सकती है जब शिव शक्त्यात्मक अक्षरोंका परस्पर संयोग हो।

तन्त्र शास्त्र :—

शिवशक्तिमयान् प्राहुः तस्मान् वर्णान् मनीषिणः

तथा च मातृकारहस्ये :—

ककारादिक्षकारान्ताः वर्णास्ते शिवरूपिणः
समस्त व्यस्त रूपेण षट्त्रिंशत् तत्वविग्रहाः
शिव शक्ति मया वर्णाः शब्दार्थ प्रतिपादकाः ॥

जब शिवाक्षर शक्ति अक्षरोंसे युक्त होते हैं तब शब्दार्थकी अभिव्यक्ति और शब्दमय संसार बन सकता है।

कालिदासने भी कहा है—"वागर्थाविवसंपृक्तौ......पार्वती परमेश्वरौ" शब्दके साथ जिस प्रकार अर्थ मिला रहता है इस प्रकार शिव-शक्तिके ऐक्य भावसे सारा संसार बनता है। शिवः शक्त्यायुक्तः यह पद आया है।

यद्वा शिव हकार शक्ति अकार इनके योगसे द्व्यक्षरी वाग्-वादिनी मन्त्र बनता है। "अनन्तो नकुलीशश्च विद्या वाग्वादिनी मता" शिव पञ्चाक्षरका भी इसीसे उद्धार होता है। शिव शब्द में इ शक्तिके योगसे "ॐ नमः शिवाय" बनता है अतस्त्वा माराध्यां हरिहर विरिञ्चादिभिरपि" यहां त्वासे आ, मासे अनुस्वार आं पाश बीज बनता है ह्रीं भुवनेश्वरीका बीज भी बनता है। हरिसे ओं हरसे र विरञ्चीसे क, इनके लोम विलोम से उन-उन देवताओंके बीजाक्षर और मधुमति विद्या (चन्द्रकला) भी बनती है। यतः पञ्चदशी विद्याके अन्तर्गत मधुमति विद्या को मूर्द्धा स्थान माना गया है। शिव 'ह' शक्ति 'म' हरि 'ल' 'हर' 'ह' विरञ्ची 'क' इनके लोम विलोम करनेसे भुवनेश्वरीके बीज निकलते हैं। अथवा नवार्णव मन्त्रका भी यही उद्धार है। या

शिव 'ह' शक्ति 'अ' हरि 'ल' हर विन्दु विरञ्ची 'क' आदि पदसे रेफका ग्रहण होता है इससे नाना प्रकारके श्री-विद्यान्तर्गत मन्त्रों का उद्धरण होता है। इसलिए अकृतपुण्यः प्रणन्तुं स्तोतुं न प्रभवति शारदा तिलकमें लिखा है। "पूर्व जन्म कृतैः पुण्यैः ज्ञात्वैनं परदेवताम्" पूर्व जन्मके जब पुण्य सञ्चय होते हैं तब श्रीविद्याकी उपासना और भगवानके चरणोंमें झुकनेकी इच्छा और उसके स्तोत्र पाठ करनेकी रुचि होती है, जबतक पापके संस्कार रहते हैं तबतक माताके चरणोंमें प्रणाम करनेकी रुचि नहीं होती है। यथा गीता :—येषान्त्वन्त गतं पापं जनानां पुण्य कर्मणाम् ते द्वन्द्व मोह निर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढ़व्रताः।

जब पाप नाश हो जाते हैं तब ही मनुष्य दृढ़व्रत होकर भगवानके चरणोंमें लगता है। "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः" पाप कर्मके नाश होनेपर ही मनुष्यको ज्ञान अर्थात मोक्षका रास्ता सूझता है। माताकी शरण मिलनेसे ही मोक्ष प्राप्ति होती है "सैषाप्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये" माताकी प्रसन्नता ही मोक्ष देनेवाली है। अतः मुमुक्षुओंको श्री विद्याका ज्ञान प्राप्त कर तदुपासना द्वारा मोक्ष सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। यह शिव शक्त्यात्मक योग, भोग मोक्षका द्वार है "यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः श्री सुन्दरी साधन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव" जहां मोक्ष साधन बताये हैं वहां भोग नहीं जहां स्वर्गादि भोग बताये हैं उस कर्मकाण्डसे मोक्ष अप्राप्य है परन्तु श्रीविद्याके उपासकोंको करस्थ अर्थात् जप करनेसे ही भोग, मोक्ष दोनों प्राप्य हैं।

यद्वा शिव शब्दसे ऊर्द्ध चार त्रिकोण शक्ति शब्दसे नीचेके पांच त्रिकोण जब इनका संयोग होता है तभी श्री यन्त्रका निर्माण हो सकता है। यथा त्वक्, असृक्, मांस, मेद, अस्थि ये पांच शक्तिकी धातु और मज्जा शुक्र प्राण जीव ये शिवकी धातु इनके संयोगसे शरीर बनता है। यथा—"चतुर्भिः श्रीकण्ठैशिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि"।

त्रिपुरा तापिनी उपनिषद्में आया है।

इत्याद्यां स्यामभिधाय एकविद्याशक्तिकूटं शक्ति शिवाद्यं लोपामुद्र यम्।

श्रीविद्याके आदि उपासक ये हैं :—

"मनुश्चन्द्रः कुवेरश्च लोपामुद्रा च कामराट्।
अगस्त्य नन्दि सूर्यश्च विष्णुस्कन्दः शिवास्तथा॥
दुर्वासाश्च महादेव्या द्वादशोपासकाः स्मृताः।
शक्रश्च गौतमी चैव तथा च वरुणस्तथा॥
धर्मराजोऽनलोनाग राजश्चायुर्वुधस्तथा।
ईशानश्च रतिश्चैव तथा नारायणस्तथा।
ब्रह्मा जीवो महादेव्या स्त्रयोदश उपासकाः॥"

ज्ञानार्णवे उक्तं :—

वक्त्र कोटि सहस्रैस्तु जिह्वाकोटि शतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्री विद्यां षोडशाक्षरीम्॥

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोपामुद्राभिधां पराम् !
कामराजाख्य विद्यायाः शक्ति तुर्यं च सुन्दरि ॥
हित्वा मुखे शिवेन्द्वाढ्या लोपामुद्रा प्रकाशिता ।
विद्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शक्तिमादन मध्यगम् ॥
शिवं कुर्याद्वाग्भवे तु शिवाद्यं कामराजकम् ।
चन्द्राद्यं तु तृतीयं स्याद्विद्येयं मनुपूजिता ॥
सहाद्यं वाग्भवं देवि चन्द्राद्यं शिवमध्यगम् ।
मादनं कामवीजं तु शक्तिवीजं हसाननम् ॥
चन्द्राराधितविद्येयं भोग मोक्ष फलप्रदा ।
हसाद्यं वाग्भवं विद्धि शिवाद्यं सहमध्यगम् ॥
मादनं कामवीजं तु तार्तीयं श्रृणु पार्वती ।
हसाद्यं शक्तिवीजं तु कुबेरेण प्रपूजिता ॥
काम राजाख्यविद्यायास्तार्तीयं श्रृणु पार्वती ।
शक्तिवीजं सहाद्यं स्याद्विद्यागस्त्य प्रपूजिता ॥
कामराजाख्य विद्याया वाग्भवे मादनं त्यज ।
चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजे ततः परम् ॥
कामराजमिदं भद्रे षड्वर्ण सर्व मोहनम् ।
शक्तिवीजं वरारोहे चन्द्राद्यं सर्व सिद्धिदम् ॥

कामराजाख्य विद्याया हित्वा भूमिं तृतीयके ।
शक्तिबीज स्थितां देवि चन्द्राद्यः कुरु तत्र च ॥
इन्द्राराधित विद्येयं भुक्ति मुक्ति फलप्रदा ।
लोपामुद्राख्य विद्याया द्वितीयाया महेश्वरी ॥
कामराजे भृगुं हित्वा मुखे कुर्यात्तमेव हि ।
शिवं बिना चतुर्थन्तु तार्तीये शक्रडाः शिवः ॥
एषा विद्या वरारोहे त्रिपुरा सूर्य पूजिता ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि चतुष्कूटां च शांकरीम् ॥
लोपामुद्रां द्वितीयां तु विलिख्य सुर सुन्दरि ।
पुनर्विलिख्य तामेव चतुर्थे पंचमे स्थिताम् ॥
हित्वा तु भुवनेशानी मेकोच्चारेण चोच्चरेत् ।
चतुष्कूटा महाविद्या शंकरेण प्रपूजिता ॥
लोपामुद्रा पुनर्देवि विलिखेत्तदनन्तरम् ।
नन्दिकेश्वर विद्यां च षट्कूटा वैष्णवी भवेत् ॥

लोपामुद्रां द्वितीयामित्यर्थः । क ए ई ल ह्रीं, ह स क ल ह्रीं, स ह स क ल ह्रीं, स ए ई ल ह्रीं, स ह क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं,

इति षट् कूटा विष्णुपासिता श्री विद्या

कामराजाख्य विद्याया त्रिकूटेषु वरानने।
या स्थिता भुवनेशानी द्विधा कुरु महेश्वरिः ॥
विन्दुहीना नादहीना दुर्वासा पूजिता भवेत्।
दुर्वाससा पुरा देवि निष्कला पूजिता परा ॥

पंचविंशति संख्याकोपासकानां मन्त्राः अगस्त्य कामराजोपासिता लोपामुद्रोपासिता श्रीविद्या :—

ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं

मनु-उपासिता श्रीविद्या: —

क ह ए इ ल ह्रीं, ह क ए ई ल ह्रीं, स क ए ई ल ह्रीं

चन्द्रोपासिता श्रीविद्या :—

स ह क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ए ई ल ह्रीं,
ह स क ए ई ल ह्रीं

कुबेरोपासिता श्रीविद्या :—

ह स क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ए ई ल ह्रीं
स ह क ए ई ल ह्रीं

अगस्त्योपासिता श्रीविद्या ;—

क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स ह स क ल ह्रीं

नन्दिकेश्वरोपासिता श्रीविद्या :—

स ए ई ल ह्रीं स ह क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं

इन्द्रोपासिता श्रीविद्या :—

क ए ई ल ह्रीं   ह क ह ल ह्रीं   स क ल ह ह्रीं

सूर्योपासिता श्रीविद्या :—

क ए ई ल ह्रीं   स ह क ल ह्रीं   स ह स क ह ह्रीं

शिवोपासिता श्रीविद्या :—

क ए ई ल ह्रीं   ह स क ह ल ह्रीं   स ह स क ल ह्रीं

क ए ई ल   ह स क ह ल   स ह स क ल ह्रीं

षट् कूटा विष्णूपासिता । द्वितीया लोपामुद्रा :—

क ए ई ल ह्रीं   ह स क ह ल ह्रीं   स ह स क ल ह्रीं

स ए ई ल ह्रीं   स ह क ह ल ह्रीं   स क ल ह्रीं

दुर्वासोपासिता :—

क ए ई ल ह्रीं   ह स क ह ल ह्रीं

स क ल ह्रीं

वरुणोपासिता :—

क ए ई ल ह्रीं   ह क ह ल ह्रीं   स ह क ल ह्रीं

धर्मराजोपासिता :—

क ए कं ल ह्रीं   ह क ह ह्रीं   स ह क ल ह्रीं

वह्न्युपासिता :—

क स क ल ह्रीं   ह स ल क ल ह्रीं   स क ल र ल ह्रीं

नागराजोपासिता :—

ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल र ल ह्रीं

वायूपासिता :—

क ए र ल र ह्रीं ह क ल र ह ल ह्रीं स क र ल र ह्रीं

बुधोपासिता :—

क ए ई र ल ह्रीं ह क ह ल र ह्रीं स ह क ल र ह्रीं

ईशानोपासिता :—

क ह ल ह्रीं ह क ल ह ल ल र ह्रीं स क ल ह्रीं

मन्मथोपासिता :—

क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं

नारायणोपासिता :—

क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं
स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं क ए ई ल ह्रीं

ब्रह्मोपासिता :—

क ए ई ल ह्रीं ह क ह स ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं

जीवोपासिता :—

ह स क ल ह्रीं ह क ह स र ह्रीं ह स क ल ह्रीं

कामराजोपासिता :—

ह स क ह ल ह्रीं

उन्मनी :—

क ए ई ल ह्रीं ह क ह ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं

नोट—प्रथम श्लोकका सारार्थ :—

१—शिव, आत्मा, शक्ति, मायाके योगसे ही सारे संसारकी रचना कर सकता है मायाकी दो प्रधान शक्ति हैं (आवरण और विक्षेप) इससे ही विचित्र रचना होती है।

२—शिव जब शक्ति, प्रकृतिके (सत्व, रज, तम गुणोंसे मिलता है तब वह सौर जगतकी रचना करनेवाला ईश्वर हो सकता है। ब्रह्मा भगवती की रजोमय कलासे संसार रचता है, विष्णु सत्वसे पालन, रुद्र तमसे संहार। यदि (शक्ति) प्रकृतिके इन गुणसे सम्बन्ध न हो तो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र कुछ भी नहीं कर सकते हैं अतः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर ये भगवतिके पर्यंकके चार पाये बनकर स्तुति कर रहे हैं।

३—जब हैमवति शक्तिके साथ शिवका संयोग होता है जैसे—कैलास पृष्ठ में भी यन्त्रके ऊपर शिवके चक्र है तभी शिवको हालाहल विषको पचानेकी शक्ति हुई है।

४—शिव शब्दमें जब इ और अ कार शक्ति मातृकाका योग होता है तभी तो शिव शब्दका उच्चारण हो सकता है। शिव अर्धमात्रा विन्दु शक्ति परा के संयोगसे परा पश्यन्ति मध्यमा वैखरी शब्द सृष्टि होती है।

५—शिव शब्द ब्रह्म इसमें परा शक्तिका योग होता है तब शब्द प्रपंच हो सकता है। पराके संयोगसे पश्यन्ति मध्यमा और वैखरी शब्द ब्रह्ममें परा शक्ति के संयोग होनेसे ही ब्रह्मा विष्णु स्तुति मन्त्रोंका उच्चारण कर सकते हैं।

शिव विन्दु है यह जबतक शक्ति त्रिकोणके साथ नहीं मिलता तबतक कु-श-ल-कु-भू पृष्ठ, मेरु पृष्ठ, कैलाश पृष्ठरूपी यन्त्र नहीं बन सकते है। जिसे हरि-सूर्य, हर अग्नि, विरंचि, चन्द्र आदिके मन्त्र ५१ वर्ण और ८ वर्ग ५९ कोष्टमें भजन कर रहे हैं।

यद्वा १६ शक्ति (षोड़शनित्या, कामेश्वरी, भगमालिनि, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा आदि) षोडश नित्याओंका ज्ञान न होनेसे हरिहर ब्रह्मा भी तुम्हारा स्तवन करनेको असमर्थ हैं कु-श-ल—इनसे कादि क ह ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं इत्यादि मन्त्रवर्ण बनते हैं।

तनीयांसं पांसुं तव चरण-पंकेरुह-भवम् ।
विरञ्चिः सञ्चिन्वन् विरचयति लोकानविकलम् ॥
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसाम् ।
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलन विधिम् ॥२॥

टीका :—

तुम्हारे चरण कमलसे उठी हुई धूलीके कण (अणु) को ब्रह्मा चुन कर (इकट्ठे कर) सारी सृष्टिको बनाता है। विष्णु इसी चरण धूलीके अणुओंको अपने हजारों शिरोंपर धारण कर (पालन) करता है। रुद्रने क्षोभित होकर इन धूलीके अणुओं को धारण किया है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें तनीयांस शब्द जो पांसु शब्दका विशेषण है वह परमाणुका बोधक है। यह पंच भूतात्मक जगत् भौतिक तत्वानुसन्धान परमाणु द्वारा बनी हुई है। जैसे कणादने वैशेषिक दर्शनमें बताया है। दो अणुओंके संयोगसे द्वणुक और तीनसे त्र्यणुक क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पञ्चभूतोंका निर्माण होता है। यथा "आत्मनः आकाश सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी" इत्यादि। प्रलयकालमें जो तत्व जिससे प्रकट होता है वह उसमें लय हो जाता है, अर्थात् महासंहारमें ये सब एकीभूत होकर भगवतीके चरणोंमें

लय हो जाते हैं। पुनः उत्पत्ति कालमें भगवतीके चरणोंसे उठी हुई धूलि रूपसे पंच महाभूतोंके परमाणु भगवतीकी इच्छा शक्ति द्वारा प्रादुर्भाव होते हैं। ब्रह्माने इन्हीं पादपद्मसे निसृत धूली अणुओं द्वारा चतुर्दश भुवनात्मक संसारकी रचना की है, सौरी शब्दसे विष्णुका अर्थ है विष्णुने सहस्र शीर्ष 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' हजार शिरों द्वारा यद्वा हजार फणवाले शेष नागने इस पृथ्वीको धारण किया है यद्वा सहस्रेण शिरसा सहस्र कमल बैन्दव स्थान निःसृत अमृत द्वारा सारे षट्चक्रात्मक पिण्डका पालन किया है। चरण पंकेरुहभवम् चरणपंकेरुह, द्विदल आज्ञाचक्रसे सारे षट् यन्त्रात्मक देहका निर्माण हुआ है। आज्ञाचक्र द्विदलात्मक ही भगवतीके दो चरण सूर्यचन्द्रात्मक शीतोष्ण दो प्रकारके अणु प्रधानतया हैं। मातृका अर्थात् मन्त्रात्मक विग्रह रूपिणी मातृका भी इसी स्थानसे प्रारम्भ होती है। यही स्थान इच्छा, क्रिया, ज्ञान तथा उत्पत्ति, स्थिति, संहारका आदिस्तर है। इस श्लोकमें पंकेरुह शब्दसे हकारका ग्रहण होता है। चरणसे रकार और तनीय शब्दसे इकार, सं से अनुस्वार निकाल कर माया बीज (ह्रीं) बनता है यही भुवनेश्वरीका बीज है इसीसे सारे जगतकी निर्माण शक्ति का संचार होता है। इसे प्रणव भी कहते हैं।

रुद्रने क्षुभित होकर इन परमाणुओंको चूर्णकर भस्म बना दिया और उसी भस्मकी विभूति देखकर अपने सारे शरीरमें धारण किया, जिससे अविद्याका संहार कर शिवतत्त्वको प्रकट किया है। इसलिए वेदमें आया है 'जलमिति भस्मं स्थलमिति

भस्म' इत्यादि । इन भिन्न-भिन्न परमाणुओंके संमिश्रण और विश्लेषण करनेसे उत्पादन पालन और संहारात्मक शक्तियां प्रकट होती हैं ।

इन अणुओंके सम्मिश्रणसे जो एक पिण्ड बनता है उसके प्रयोगसे विनाशकारी (रौद्री) शक्ति प्रकट होती है उसी प्रकार उन-उन परमाणुओंके साजात्य तथा विजात्य मिश्रण तथा घनीकरणसे उत्पादन और संरक्षण शक्तियां भी होती है, जिन्हें ब्राह्मी और वैष्णवी शक्ति भी कहते हैं । यथा रौद्र अणुओंके मिश्रणसे विनाशकारी शक्ति होती है । इसी तरह ब्राह्म अणुओं के मिश्रणसे उत्पादन शक्ति उसमें भी पार्थिव, आग्नेय, आप्य, वायव्य आदि भिन्न-भिन्न भूतोंके परमाणुओंके सङ्गठन और संमिश्रणमें विभिन्न प्रकारकी शक्तियोंका संचार होता है। 'तवचरणपंकेरुह' इस शब्दसे महामायाके चार चरणोंका भी बोध होता है; जोकि शुक्ल रक्त, मिश्र और निर्गुण नामके चार चरण हैं । सत्व प्रधान शुक्ल, रजस् प्रधान रक्त, तम प्रधान मिश्र और गुणातीत निर्गुण; शुक्ल, रक्तका स्थान आज्ञाचक्र (भ्रूमध्यमें) है मिश्रका हृदयकमल और निर्गुणका सहस्रदल स्थान है ।

यद्वा भगवतीके पर्यंकके चार पाये हैं, जिनमें शुक्ल सत्व-प्रधान पाया विष्णु, दूसरा रक्त रजःप्रधान ब्रह्मा, तीसरा मिश्र तमः प्रधान रुद्र, चतुर्थ निर्गुण सदाशिव ये चार पाये उनके सिंहासनके हैं अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पाद भगवतीके उपासनाके हैं ।

यद्वा षट् चक्रात्मक भगवतीके स्वरूपका यह वर्णन है। जैसे दत्तात्रेयने कहा है—भ्रूमध्यगौ विधि हरि तव रक्त शुक्लौ पादौ रजोऽमल गुणौ तव सेव्य मानौ सृष्टी स्थिति वितनुते सदये तृतीये संचिन्वतेस्तवहरौ स्तिमिरस्यविश्वम्॥ भाव्यं तवैव चरणं निरुपाधि बोधः सन्तामृतेशिव पदे सततं नमामि॥

अर्थात् तुम्हारे आज्ञाचक्रमें जो चरण हैं, वे संसारकी रचना, पालन, तथा संहारात्मक शक्तियोंके विकाशक हैं।

इस श्लोकमें भगवतीके चरण रजसे संसारकी सृजना बताई गई है। वृहन्नील तन्त्र द्वादश पटलमें यह लिखा है

ब्रह्मोवाच

"केन रूपेण देवेशि सृष्टि स्थित्यादिकं भवेत्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा भवानि भव मोहिनी॥
कथयामास सर्वेस्मिन् वरदा सा सुरान् वरान्।
मम पादरजो नीत्वा उपादानात्मकं शिवम्॥
सृष्ट्वादीन् कुरुत प्राज्ञा येन सिद्धि र्भविष्यति।
तत्पाद प्रभवं नीत्वा रजो देवि शिवे शुभे॥
सृष्टिं कर्तुं ततो ब्रह्मा स्थितौ विष्णु प्रवर्तकः।
संहारे रुद्र एवासौ प्रावर्तयत सत्वरम्॥२३॥

ब्रह्माने कहा हे भगवति! किस रूपसे सृष्टिस्थिति संहारक्रम होता है। भगवतीने यह उत्तर दिया मेरे पाद रजको ब्रह्माने लेकर सृष्टि बनाई, इन्हीं पद रजसे विष्णुने स्थिति, रुद्रने संहार किया।

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी ।
जड़ानां चैतन्य स्तवक मकरन्द श्रुति झरी ॥
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ ।
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती ॥३॥

टीका :—

हे भगवति अविद्या रूपी अन्धकार जिन अज्ञानियोंमें है उनके अज्ञान दूर करनेको अन्तःकरणमें सूर्य-द्वीपवाली नगरी हो। जड़ोंको चैतन्यता देनेके लिए मकरन्दको निश्शरण करनेवाली श्रोतरूपा हो। दरिद्रियोंको उनके दारिद्र दूर करनेमें तुम चिन्तामणी हो, इस दुःखमय संसारसागरमें निमग्न हुए प्राणियोंके लिए तुम वराहरूपी भगवानकी दाड़ (दृष्ट्र) हो।

भाष्य :—

अविद्या ही संसारके जन्म-मरणादि नाना क्लेशोंको उत्पन्न करनेवाली है। जबतक अविद्यारूपी आवरण रहेगा तबतक दुःखोंका अन्त नहीं हो सकता है। यथा—"अविद्यायामन्तरे वर्तमाना स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः जंघन्यमाना परियन्ति मूढ़ाः अन्धेनैव नीयमानायथान्धाः कठ०, इस श्लोकमें अविद्या शब्दसे अ "चैतन्यसे "ऐ" अन्तसे अनुस्वार इनके योगसे वाग्-भवकूट सरस्वतिका बीजाक्षर निकलता है, मन्त्रशक्ति जाननेवाले भारतवर्षीय प्रायः नवजात शिशुकी जिह्वापर अष्टगन्धमें मधु

मिलाकर वाग्भव वीज (ऐं) लिखते हैं। वाणीके विकाश अर्थात् विद्या शक्तिको विकाश करनेवाला वाग्भव बीज है। विद्या आत्म-विकाश करनेवाली शक्तिको कहते हैं। उसका जिसमें अभाव हो वह अविद्यारूपी अन्धकार जिसके अन्तः-करणमें आच्छादित है उसको दूर करनेवाली द्वादशादित्य प्रकाशमयी शक्ति तुम हो। वाग्भव वीजके जप करनेसे अन्तः-करणका अज्ञान दूर हो जाता है। देवी भागवतमें एक ऋषिके बालककी कथा आती है ऋषि बालक मूर्ख होनेके कारण जङ्गलमें चला गया क्योंकि घरपर उसके मूर्ख होनेसे उसका तिरस्कार किया जाता था। एक समय एक व्याधने किसी शूकरपर गोली मारी, शूकर भगकर उस मूर्ख ब्राह्मणकी पर्णकुटीमें छिप गया यह ऐ ऐ ऐसा जपकर रहा था व्याध शूकरके शोणित चिह्नोंसे ब्राह्मणकी कुटिया तक आया; उसके आगे उसे कोई चिह्न शूकरके आने जानेका दृष्टिमें न आया। तब उसने उस ब्राह्मणसे पूछा कि कृपया बताइए वह शूकर किधर गया वह निरन्तर ऐ, ऐ जपता जाता था, जब व्याधने अनेक बार उसे पूछा तो उसमें वाग्भव वीजके जपनेसे सारस्वत प्रकाश आ गया था वह तत्काल उसे उत्तर देने लगा 'यः पश्यति नसा ब्रूते या ब्रूते सान पश्यति" अरे जिन आंखोंने देखा उन आंखोंमें बोलनेकी शक्ति नहीं है और जिस मुखमें बोलनेको शक्ति है उसने देखा नहीं है तब तुम बार-बार क्यों चिल्लाकर पूछ रहे हो ? इस उत्तरसे व्याध वापिस हुआ। उस ऋषिकुमारमें वाग्भव वीज ऐं के जपसे अपूर्व वाग्वादिनी

शक्ति देखकर सब आश्रमवासी चकित होकर वाग्भव बीजका जप करने लगे।

जड़ जीवोंके अन्दर उत्तरोत्तर आ-इ मकरन्द रसको सिंचन करनेवाली शक्ति प्रकट हो जाती है जिससे अन्तःकरणकी जड़ता दूर होकर अध्यात्म विकाश द्वारा संसारके त्रिविध तापों से अत्यन्त विमुक्त होकर शान्ति प्राप्त करता है। दरिद्राणां दरिद्री जनः जिन्हें भोजनाच्छादन तकका भी कष्ट है वे तुम्हारी उपासना द्वारा जिस वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, वह उन्हें तत्काल प्राप्त हो जाती हैं। जन्म-मरणरूपी संसारसागरमें डूबे हुए प्राणियोंको उद्धार करनेमें वाराहि शक्ति तुम हो। यथा :—

वाराहि वरदे देवि द्रंष्ट्रो धृत वसुन्धरे।
कृपया हरमे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छमे ॥

मूल श्लोकमें भगवतीके चार प्रकारके पृथक् सिद्धियोंके निर्देशसे भगवतीकी उपासना, बीजाक्षरोंके जप ध्यान सपर्यासे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चतुर्विध पुरुषार्थ की सिद्धि बताई है।

यथा—अविद्याके दूर होनेसे धर्मकी प्राप्ति जड़ताके नाश होनेसे कार्य्य सिद्धि दारिद्र दोषके उपशमनसे अर्थ प्राप्ति संसारमें काम, क्रोधादिमें निमग्न हुए प्राणियोंको संसारसे उद्धार करनेमें मोक्ष प्राप्ति बताई है। इसलिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको सिद्धि देनेवाली तुम हो, सारा प्रपंच तुम्हारे भ्रूभङ्ग विक्षेपकी विभूति मात्र है। त्रिपुरार्णवमें लिखा है—

"हरत्यज्ञान मज्ञानां जड़ी मान मतः पुनः ।
अतः कामान्वितन्वन्ते कैवल्यं कलया विधौ ॥"
वाग्भवं प्रथमं वीजं वेदानां पुरतो यतः ।
त्रिपुरा संज्ञया भद्रे त्वद्रूपं विश्वविग्रहम् ॥
वाच्य वाचक भेदेन व्याप्नोत्यमित वैभवम् ।

शब्दमय जगतके प्रादुर्भाव होनेमें तुम्हारा वागभव वीजरूपी प्रकाश आदिमें हुआ, इसलिए त्रिपुरा संज्ञा तुम्हारी हुई है। तीनों लोकोंमें और तीनों अवस्थाओंमें प्रकाश देनेवाली तुम ही हो। विष्णु भगवानकी गोदमें वैठी हुई स्त्री (ईं) लक्ष्मी रूपमें तुम्हें जो जानते हैं वह उनका भ्रम है यतः वे तुम्हारी यथार्थ लीलाको न पा सके हैं वस्तुतः पुरुषरूप होकर तुम ही विष्णुरूप धारण करती हो। जैसे सप्तसती रहस्यमें लिखा है—

"एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तोनु पश्यन्ति नेतरेतद्विदोजनाः ॥

अर्थात् स्त्रियोंने पुरुषरूप धारण किया है जिनमें देखनेकी शक्ति है वह इस चमत्कारको देख सकते हैं दूसरे नहीं।

इस श्लोकमें भगवती त्रिपुराके तीन वीजाक्षर ऐं क्लीं सौः निकलते हैं यही त्रिविद्या ज्ञानशक्ति भोग शक्ति, मोक्ष शक्तिरूपा है। यही त्रिविद्या ऋगका प्रथमाक्षर 'अ अग्निमीडे पुरोहितं' यजुमें इ "इषेत्वोंजेत्वा " साममें 'य' ऋगवेदके 'अ ई ऐ' और अर्धमात्र अनुस्वार मिलनेसे ऐं वाग्भवकूट बना। यह त्रिविद्या मृग, यजु,

सामका निष्कर्ष अज्ञान दूर करनेवाला है। इसी प्रकार "श्रुतिझरी" शब्द जो मूल श्लोकमें आया है उसमें श्रुतिसे श्र झरी से ई अ से अनुस्वार इनके योगसे श्रीं रमावीज बना है।

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण।
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवरा भीत्यभिनया॥
भयात्त्रातुं दातुं फलमपिच वाञ्छासमधिकं।
शरण्ये लोकानां तवहि चरणावेव निपुणौ॥४॥

टीका :—

हे शरण्ये! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य देवताओंके हाथोंमें भी अभय, वर ये दो मुद्रा हैं किन्तु तुम्हारे अभय और वरदान की मुद्रा केवल अभिनय (प्रदर्शन) के लिए नहीं है। अपितु भयसे बचानेके लिए और इच्छासे भी अधिक फल देनेके लिये (एकमात्र) तुम्हारे ही चरण समर्थ हैं।

भाष्य :—

इस श्लोकमें भगवतीकी उपासनासे निर्भयता और सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिका वर्णन आया है। त्वदन्य पाणिभ्यां इस पदसे गणेश आदि मूर्तियोंके हाथोंमें भी जो अभय और वर देनेकी मुद्रा दिखाई गई हैं उन मुद्राओंको अभिनय (प्रदर्शन) मात्र ही है यतः यथार्थ अभयदान आत्मस्थिति मोक्ष यह तो भगवतीके चरण जो आज्ञाचक्रमें हैं उनसे ही प्राप्त

होगा यतः "द्वितीयाद् वैभयं भवति" उप० "अभयं वै जनक प्राप्तोसि" जबतक "तत्त्वमसि" महावाक्यसे ऐक्यात्म अनुभव न होगा तबतक भय (जन्म मरण) दूर नहीं हो सकता यह अनुभव महामाया भगवतीके चरणोंके प्रसादसे ही प्राप्य है। वरदान वाञ्छासे अधिक अर्थात् स्वर्गादि भोगसे अधिक मोक्ष भगवतीके ही चरणोंसे प्राप्य है, अतः भगवतीके चरणोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव ये चार देवता पर्यङ्कके चार पाये बन कर स्तुति कर रहे हैं। मार्कण्डेय ऋषिने भी कहा है—"सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये" भगवतीकी प्रसन्नता ही मोक्ष देनेवाली है। 'सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी" उपासककी सिद्ध की हुई वह विद्यारूपा भगवती मोक्ष देनेवाली होती है। मोक्ष ही सब धर्मोंका एकमात्र साध्य है जिस धर्म या जिस उपासना द्वारा मोक्ष सिद्ध हो वही मनुष्यमात्र का यथार्थ धर्म और पूजा उपासना है। मोक्ष सिद्धिके लिए ही अनेक प्रयास किए गये हैं। दर्शन शास्त्रोंने पार्थिव तत्वज्ञानसे लेकर जितनी-जितनी गहराईमें जो पहुंच सका वहां तक उसने वर्णन किया है। कोई भौतिक ज्ञान तक ही पहुंच कर रुक गये न्यायदर्शनमें—दुःखजन्मप्रवृत्तिदोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः वैशेषिक। सांख्य-सूत्र—"अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" त्रिविध (आधिदैविक आधिभौतिक अध्यात्मिक) तीन प्रकारके दुःखोंसे अत्यन्त निवृत्ति ही (मोक्ष) हैं पातञ्जलि "तदा

द्रष्टुः स्वरूपे वस्थानम्” द्रष्टाके स्वरूपमें तन्मय हो जाना मानते हैं। पूर्व मीमांसा वेद-वोधित मन्त्रों द्वारा देवता (इन्द्रादि देवताओंको) हविर्दान करना धर्म बताते हैं कुछ आधुनिक केवल पुस्तकोंको रटकर विचारको निश्चय करना ही कल्याण मार्ग बताते हैं। सौगतः-शून्यवाद, क्षणिकवाद, योगाचार सौत्रान्तिक वादको महत्व देते हैं कुछ लोग त्रिभङ्गी सप्तभङ्गी सिद्धान्त द्वारा वीतरागता होनेसे निर्वाण मानते हैं। भगवत् पाद अविद्या के कट जानेसे नित्य मोक्षका उपदेश देते हैं यही वेदोपनिषद् सिद्धान्त है। अविद्याकी निवृत्ति भगवतीके चरणोंमें उपासना द्वारा ही हो सकती है, जिसे तन्त्रानुमोदित योगशास्त्रके साधनसे उपासक प्राप्त कर सकता है। इस मूल श्लोकमें “त्वमेकासि” शब्दसे एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म इसका बोध होता है, यद्वा भगवतीके चरणोंसे दो प्रकारकी शक्तिका विकाश “अभयवरद” जो इस श्लोकमें बताये हैं वह इस अर्थके विकाशक हैं कि भगवती अभय, (मोक्ष) वर, (भोग) दोनों पदार्थोंको एक साथ देती है। भोग और मोक्ष ये दोनों बातें एक साधनसे और कहीं प्राप्य नहीं है, यथा—“यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षः नहि तत्र भोगः श्रीसुन्दरी साधन तत् पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव” अन्यत्र भी कहा है—“या मोक्षदायिनी विद्या न सा भोग प्रदायिनी। भोगदा नैव मोक्षाय श्री विद्यातूभयात्मिका।” जहां भोग मिलता है वहां मोक्ष नहीं, जहां मोक्ष है वहां भोग नहीं है परन्तु श्रीविद्याके उपाशकोंको भोग और

मोक्ष दोनों साथ मिलते हैं। यही अभयवरदका तात्पर्य है। इस श्लोकसे ईकार लकार, ककार, निकलते हैं ये काम वीजके वाचक हैं। इनसे "क्लीं" बनता है, और दातुं शब्दसे दकार तुसे उकार "अधिक" से अनुस्वार इस प्रकार इस श्लोकमें बाला त्रिपुर सुन्दरीका मन्त्र है "ऐं क्लीं सौं:" यह बनता है।

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं।
पुरानारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्॥
स्मरोऽपित्वां नत्वा रतिनयन लेह्येन वपुषा।
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्॥५॥

टीका :—

प्रणत जनोके सौभाग्यको उत्पन्न करनेवाली जो तुम हो, विष्णुने पूर्व समयमें तुम्हारी आराधना करके स्त्री रूप धारण कर पुररिपु (शिवजी) को भी क्षोभित किया। रतीके नयनोंसे चुम्बित किये हुए शरीरसे कामदेव तुमको प्रणाम कर बड़े मुनि जनोंके अन्तःकरणको मोहित करनेमें समर्थ हुआ है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें भगवती महामायाके सम्मोहन शक्तिका वर्णन आया है, यथा कुमारसम्भवमें इन्द्रने कामदेवके प्रति कहा—'सम्मोहनं नाम सखे ममास्त्रम्' जैसे मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है—"ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती-

हिसा। वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति" ज्ञानी जनोंके भी हृदयमें यह महामाया ही मोह शक्तिको उत्पन्न करा देती है इसी मोहमयी शक्तिने भगवान् विष्णुको महानिद्रामें डाल दिया था। जब मधु और कैटभ दो दानव ब्रह्मा पर प्रहार करनेपर उतारु हुए थे तब भगवतीकी इस महामोहमयी शक्तिसे सारा ब्रह्माण्ड सोया हुआ था। भगवतीकी आराधनासे ही यह मोहमयी शक्ति दूर हो सकती है यथा—सा विद्या परमामुक्तेर्हेतुभूता सनातनी" वही भगवती इस महामोहसे छुटकारा करानेवाली है। गीतामें भी कहा है—

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"

जो मुझको प्राप्त करते हैं वही इस मायासे पार उतर सकते हैं।

शरणमें आये हुए प्राणियोंके सौभाग्य देनेवाली हे माता विष्णुने तुम्हारी आराधनासे अपना स्त्रीका रूप धारण कर महादेवको क्षोभित कर दिया था, इसी प्रकारकी तुम्हारी आराधना कामदेवने की थी। जोकि रति (उसकी स्त्री) के नेत्रोंकी स्नेहमयी ज्योतिसे लावण्यमय शरीर धारण कर मुनियोंको मोहित करनेमें समर्थ हुआ। यहां आराध्य शब्दसे श्री विद्याके मन्त्र जपकी महिमा और जिस-जिसने जिस मन्त्रसे अराधना की है उसपर प्रकाश डाला गया है।

"जननी इस पदमें इकारका विश्लेषण करनेसे ई का ज्ञान होता है यही तुम्हारी काम-कला है, जिसके प्रभावसे विष्णुने मोहनि रूप धारण किया था।

यद्वा ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं इत्यादि विष्णूपासिता विद्याका दिग्दर्शन है, तैत्तरेय ब्राह्मणमें "जनकोह वैदेह अहोरात्री संव्रजत्" जनक अहोरात्रात्मक प्रतिपदासे पूर्णिमा तक पञ्चदशाक्षरी विद्याकी उपासना द्वारा तुम्हारे शरणमें प्राप्त होकर ही विदेह पदको पाये हैं, अर्थात् तुम्हारी पञ्चदशाक्षरी विद्या जो "शिवः शक्ति कामः क्षितिरथ रविः शीत किरणः" इस श्लोकसे निर्देश की गई । इस विद्याकी उपासनासे जनकका देहाध्यास दूर हुआ था इससे यह भी प्रतीत होता है कि पञ्चदशाक्षरी विद्याके साक्षात्कार होनेसे मनुष्यके मल, विक्षेप दूर होकर कैवल्य मोक्ष हो जाता है। इस श्लोकमें विष्णुका स्त्री रूप धारण करना कोई भ्रमोत्पादक नहीं है, एवं "युवतयः" जैसे पहले वर्णन हो चुका है कि स्त्री पुरुषका रूप पुरुष स्त्रीका देह बना लेता है। यह तन्त्रानुमोदित योगशास्त्रकी विभूतियां हैं जैसे योगवाशिष्ठ में राजपुत्री चुड़ालाका इतिहास आया है जब उसका पति वनमें तपस्या करने लग गया था तब समय-समयपर वह पुरुषका रूप धारण कर उसके पास आकर उसे उपदेश देती थी, और अन्तमें पुरुष रूपसे अपना यथार्थ स्त्रीका रूप धारणकर उसे चकित किया। इस दैवी चमत्कारको समझने-देखनेकी अलौकिक बुद्धि और दृष्टि आराध्य है, जैसे भगवानने अर्जुनको उपदेश दिया था "नतुमांशक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा" तुम इस आधिभौतिक दृष्टिसे मुझे देख नहीं सकोगे अतः मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं

"दिव्यं ददामि ते चक्षु" विष्णुपक्षमें हरि (इन्द्र) ने गौतम के शापसे ग्रस्त होनेपर हे जननि ! "प्रणतजन सौभाग्य जननी" जो तुम्हारे चरणोंमें शिर झुकाते हैं उनको सौभाग्य देनेवाली जानकर तुम्हारी उपासना करनेसे शाप मुक्त हुआ, जैसे इन्द्रोपासिता विद्या क ए इ ल ह्रीं इत्यादि आया है। इस श्लोकमें पञ्चदशाक्षरी विद्यासे आत्मज्ञानका विकाश बताया है तथा षोडशाक्षरी विद्याका प्रभाव जैसे वामकेश्वर तन्त्रमें लिखा है— "ह्रीं क्लीं ब्लीं" ये वीजाक्षर इस श्लोकसे बनते हैं। हरिसे ह र जननीसे ऐं स्मरसे क्लीं वपुसे व लिहसे ल मुनीनां से म इस प्रकार उक्त वीजाक्षरोंका उद्धार होता है। एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे। चक्षुष्मन्तोनु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदोजनाः।

महाविद्याके इस चमत्कारको वही लोग देख सकते हैं जो उसकी इस स्त्री रूपसे पुरुषत्वकी शरीरान्तरकारिणी महाशक्ति को समझते हैं।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्चविशिखा।
वसन्त सामन्तो मलयमरुदा योधनरथः॥
तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते॥६॥

टीका :—

हे गिरिनन्दिनी ! तुम्हारी अपूर्व कृपाको पाकर कामदेव जिसका पुष्पोंका (कोमल) धनुष है भ्रमर पंक्ति ही धनुषकी

डोरी है। पञ्चवाण (पांच इन्द्रिय) जिसमें है वसन्त (ऋतु) जिसकी सहायक है, मलयाचलका शीतल पवन जिसका युद्धका रथ है और अशरीर जिसका शरीर भी नहीं वह सारे संसार पर विजय पा रहा है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें कामवीज इस प्रकार निकलता है—"कामपि कृपा" इससे क मलयसे ल मौर्वीसे ई पौष्पंसे अनुस्वार ये सब मिलकर (क्लीं) कामवीज बनता है, जव भगवान शंकरने कामदेवको अपने तृतीय (अग्नि) नेत्रसे भस्म कर दिया था यथा "क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरा खे मरुतां चरन्ति तावत् सवह्नि र्भवनेत्र जन्मो भस्मावशेषं मदनं 'चकार:'। हे प्रभो क्रोधको दूर करो यह शब्द आकाशसे जैसे निकलने को हो था तबतक महादेवके तृतीय नेत्रसे प्रकट हुई अग्निने कामदेवको भस्म कर दिया। तब कामदेवकी स्त्री रतिने "क्लीं" वीज प्राप्त कर उससे कामदेवको पुनः जीवन दिलाया। 'धनुपौष्पं' इस पदमें कामदेवके धनुषका वर्णन किया गया है उसमें यह दिखाया है जिसमें किसी भी प्रकारका बल नहीं है वह भी तुम्हारे मन्त्र जपके प्रभावसे इतनी सामर्थ्य रखता है जो त्रैलोक्य-को कम्पायमान कर दे। विष्णुपक्षमें "क्लीं" वीज कृष्ण मन्त्रका है "हिमगिरिसुते काममपि कृपा" इन दोनों शब्दोंके विश्लेषणसे हिमगिरिसुते इस पदसे इकार कामपिसे क मलयसे लकार पौष्पंसे अनुस्वार सब मिलकर क्लीं कामकला बीज बना।

इस कामबीजके प्रभावसे निःसहाय दुर्बल पुरूष भी कार्य सिद्ध कर सकता है।

क्वणत्काञ्चिदामाकरिकलभकुम्भस्तननता
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना।
धनुर्बाणान्पाशंश्रृणिमपि दधाना करतलैः
पुरस्तादास्तांनः पुरमथितु राहो पुरुषिका ॥७॥

टीका—

अहो पुरुषके रूपमें त्रिपुरासुरको बध करनेवाली तुम जिसकी स्वर्णमयो कर्दनीकी झंकार और जिसके स्तन नव हस्ति शिशु के कुम्भके समान भारसे नत हुई तुम, जिसके करकमलोंमें धनुष, पाश, वाण, अंकुश हैं ऐसी शोभायमाना हे माता हमारे सामने विराजमान हो।

भाष्य—

तुम्हारा ओजस्वी स्वरूप जो तुमने त्रिपुरासुरके वधमें धारण किया था वही उक्त विशेषणोंके साथ (भगवती के) अलौकिक एवं अद्वितीय रूपका वर्णन किया है यथा छोटी २ घण्टियोंकी मालासे शब्दायमान ऐसी स्वर्णमयी कर्धनी जिसके कटि प्रदेशमें शोभित है तथा हाथीके नव शिशुके कुम्भके समान उन्नत कुच भारसे झुकी हुई छोटी कमरवाली शरद ऋतुके पूर्ण चन्द्रकला मुखारबिन्दसे झलक रही है और चारों भुजाओंमें क्रमशः

धनुष, बाण, पाश, अंकुश धारण किये हुए ऐसा 'उमा' रूप जो त्रिपुरासुरके वध करनेवाले शिवके रूपको धारण करनेवाली, पुरुषरूपा तुम हमारे हृदयमें विराजमान इस प्रकार हमें अनुभव हो। उपासक इस स्वरूपमें भगवति त्रिपुराका हृदयमें ध्यान करता है। अन्यत्र इस प्रकार ध्यान आया है 'बालार्क मण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम् पाशांकुशशरश्चापं तर्जयन्ती शिवां भजे।" रुद्रयामलमें इस भावको स्पष्ट किया है। पुरमथितु इस पदसे तीनों पुरोंके मथन करनेसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्था त्रयका मथन कर तुरीयावस्थामे निवास करनेवाली त्रिपुरा चित्शक्तिके ज्ञानसे ऐं, क्लीं, सौः— त्रिपुरसुन्दरीके तीन बीजोंका साक्षात् हुआ।

यद्यपि उक्त श्लोकोंमें भगवतीके स्थूल स्वरूपका वर्णन है अब मन्त्राक्षरमयी मूर्तिका वर्णन करते हैं। जिस प्रकार समुद्र मन्थन करनेसे १४ रत्नोंका प्रादुर्भाव हुआ इसी तरह अक्षरमय सूक्ष्माकाशके मन्थन करनेसे पञ्चदशी, षोड़सी आदि मन्त्र समुदायका प्रादुर्भाव हुआ है। जिस प्रकार स्वरूपमें "क्वणत्काञ्ची" अर्थात् भगवतीके नूपुरोंकी झंकार कानोंमें आती है इसी प्रकार सूक्ष्म मन्त्रात्मक विग्रह हृत्कमलमें भगवतीको अनाहत ध्वनि साधकको अनुभव होती है। शब्दमय समुद्र " मथन करनेसे अनेक प्रकारके मन्त्रोंका आविर्भाव हुआ है जिन्हें आम्नाय कहते हैं। आम्नाय छ प्रकार होते हैं यथा पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय. ऊर्ध्वाम्नाय क्रमशः शिवके पंचमुखोंसे

निकले हैं; छठां अनुत्तराम्नाय है। प्रत्येक आम्नायके मन्त्र शरीरके भिन्न भिन्न चक्रोंमें जपे जाते हैं। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः पाश ह्रीं अंकुश क्रौं, वासना रूपमें धनुष मन है बाण पञ्चतन्मात्रा इत्यादि पाश वासना है क्रोध अंकुश है। अहो पुरुषिका शब्दसे कितने ही प्रकारकी ध्वनियां निकलती हैं। यथा अहो अभिमान द्वारा पुंभाववालीका ज्ञान, अहोको पृथक कर देनेसे आश्चययुक्त पुंभाव अलौकिक अद्भुत रूपका ज्ञान यथा अहं ब्रह्मास्मि आत्मस्थिति द्वारा आत्म स्थितिमें भगवतीका ज्ञान अर्थात् भगवतीमें और अपनेमें अभिन्न भावनाका अनुभव इस सारे पद पर विचार करनेसे पुरूष प्रकृति या मायाब्रह्म अथवा साधक ओर भगवतीमें अभेद भावनाका अनुभव होता है। भगवतीके स्थूल स्वरूपमें धनुर्वाणान्पाशं नीचेके हाथमें इक्षुका धनुष जिसमें मधुमक्षियोंकी पंक्तिरूपी डोरी है और दाहिने हाथमें पांच बाण जो रक्त कमल, नील कमल, कल्हार, कैरव, सहकार मञ्जरी रूपमें लगे हैं। ऊपरवाले बायें हाथमें पाश और दाहिनेमें अनेक प्रकारके रत्नोंसे खचित अंकुश है। यह स्थूलरूपमें आयुधों-का ध्यान दिखाया है। अब सूक्ष्मरूपमें इन्हींको इस प्रकार बताया है। धनुष बीजाक्षर रूप, यं पञ्चबाण, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ह्रीं-अंकुश क्रौं-धनुष या वासनात्मक मन धनुष है पञ्चतन्मात्रा, पञ्चबाण वासना ही पास है क्रोध ही अंकुश है। इसी प्रकार हठ योग साधनामें जब सार्धत्रिबला कुण्डलिनीको उद्बोधन कर षटचक्रका भेदन करते हैं तब मणिपुरसे अनाहतमें पहुंचने पर

यह स्वरूप साधकके सामने आता है, सूक्ष्म मन्त्रात्मक देवताका विग्रह पञ्चदशी विद्या जो कादि हादि भेदसे है वही रमाबीज युक्त होनेसे षोड़सी बन जाती है। जैसे शिवः शक्ति कामः इस श्लोकके भाष्यमें आया है। परा रूपा कुण्डलनी शक्ति है इसका स्पष्ट ज्ञान तभी हो सकता है जब साधक अपने अस्तित्वको देवीके रूपमें लय कर सके। बाण शब्दसे ब, करतलसे ल मथितुसे उ अस्तांसे अनुस्वार इनके मिलानेसे वशनीका ब्लूं बीज़ बनता है। पुर मथितु और अहो पुरषिका शब्दोंका योग इस बातका द्योतक है कि शिव शक्तिकी उपासना एक साथ करना ध्येय है जैसा कि प्रथम श्लोकमें वर्णन किया गया है। इस श्लोकका आध्यात्मिक भाव यह है कि शिव (प्रकाशरूप) का रूप तभी भाषित होता है जब कि उनका प्रतिबिम्ब शक्ति पर पड़ता है अर्थात जब देवीजीके संयोग (विमर्श) से द्योतित होता है।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे
शिवाऽकारे मञ्चेपरमशिव पर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥८

टीका--

अमृतमय समुद्रके मध्य कल्पवृक्षोंके उपवनसे घिरी हुई मणिद्वीपके बीच चिन्तामणि मन्दिरमें शिवाकार पर्यंक पर परम

ANGIRAS ARYA'S

शिवमें निवासकी हुई चिदानन्द समुद्ररूपिणी भगवती, तुम्हारा जो भजन करते हैं वे साधक धन्य हैं अर्थात् मुक्त हैं।

भाष्य—

भगवतीके स्वरूपका वर्णन करनेके अनन्तर अब भगवतीके निवासस्थानका वर्णन करते हैं:—अमृतरूप समुद्रमें कल्पवृक्षोंके उपवनसे वेष्टित नवरत्न जड़ित् कदम्ब वृक्षके समीप चिन्ता मणियोंसे खचित रत्नजड़ित स्तम्भादि पर निर्मित भवनमें शिवाकार मंच पर अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईशान सदाशिवकी मूर्तिरूप मञ्चमें जहांपर परमशिव पर्यंक (पलंग) स्थित है ऐसी चिदानन्द लहरी विज्ञान सुखतरंगात्मिकका तुमको कतिचन कुछ अनेक जन्म तक सुधांशुजन (ज्ञानी) भजते हैं। विष्णु पक्षेतु गोपालोंके सौन्दर्यातिशय कल्याणकारक मनोहर मंचमें हे शिवे ! कतिचन धन्य (पुण्यकाम) पुरुप ही तुम्हारा भजन करते हैं "भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन" संसारमें अन्तर्याग और वहिर्याग द्वारा निरन्तर तुम्हारा पूजन करनेवाले जन ही धन्य हैं। जिन्होंने अपने मनको तुम्हारे कमलरूपी चरणोंमें भ्रमरके समान मकरन्द ग्रहण करनेके लिये अर्पित कर दिया है। तथा निरन्तर पंचदशाक्षरी तुम्हारे सूक्ष्म शरीरमें लीन होकर परमस्थानको प्राप्त कर लिया है।

श्रीयन्त्रके मध्यमें वहिर्याग द्वारा वस्त्रपत्र या स्फटिक निर्मितमें पद्मादि चतुः षष्टि उपचारान्तसे विषद चक्र (सहस्र दल) में अन्तर्याग द्वारा हृदय कमलमें जो अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र हैं; जहां पर

बाणलिङ्ग काकिनी शक्तिके साथ रहता है, वहां पर जो तुम्हारा ध्यान करते हैं वे धन्य हैं।

इसी अन्तः पुण्डरीके दहराकाशके चारों ओर पुरीतति नाड़ीका जाल फैला है, जिसमें जन्मजन्मान्तरकी वासना भरी हुई है, ये वासनाएं तुम्हारे चित्तरूपी प्रकाशको प्राप्त कर निरन्तर घूमती हुई जाग्रदादि अवस्था जन्य सम्पूर्ण क्रियाओंको प्रकाशित करती है, जिस तरहका संस्कार सामने आता है उसी प्रकार अन्तःकरणमें भावनायें लहराती हैं इसलिए अन्तर्याग द्वारा महात्मा लोग तुम्हारे स्वरूपका ध्यान अन्तर्दहरमें करते हैं जिससे तुम्हारा प्रतिबिम्ब पड़कर निरन्तर अन्तःकरणमें तुम्हारा रूप प्रकाशित होकर भासित होता रहे। उस सारूप्य मुक्तिको बिरले ही प्राप्त कर सकते हैं। सहस्र दल जिसका वर्णन ऊपर आया है उसका महात्म्य कंकालमालिनी तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है :—

सहस्रारः कर्णीकायां चन्द्रमण्डलमध्यगा।
सर्वसङ्कल्प रहिता कला सप्तदशी भवेत्॥
उन्मनी नाम तस्या हि भवपाश निकृन्तनी।
सहस्रारं महापद्मं शुक्लवर्णामधो मुखम्॥
अकारादि क्षकारान्तैः स्फुरद् वर्णैः विराजितम्।
तत् कर्णिकायां देवेषी अन्तरात्मा ततो गुरुः॥

सूर्यस्य मण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च ।
ततो वायुर्महानामा ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम् ॥
तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गश्च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
तदूर्ध्वे शङ्खिनी देवी सृष्टि स्थित्यन्तकारिणी ॥

षटचक्र निरूपणमें सहस्रार स्वरूपमें आया है ।

तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्य देशे प्रकाशम् ।
विसर्गाधः पद्मं दश शत दलं पूर्ण चन्द्राति शुभ्रम् ॥
अधोवक्त्रं तरुण रविकला-कान्ति किञ्जल्क पुञ्जम् ।
लकाराधैर्वर्णैः प्रविलसित-वपुः केवलानन्द रूपम् ॥
सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितराम् ।
यतेः स्वात्मज्ञानं दिशति भगवान् निर्मलमतेः ॥

सहस्रार दलके ज्ञानका महात्म्य :—

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियति निज चित्तो नरवरो ।
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने ॥
समग्रा शक्तिः स्यान्नियम मनसस्तस्य कृतिनः ।
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपिवाणी सुविमला ॥

अर्थात इस सहस्रदल स्थानको साङ्गोपाङ्ग जाननेसे नियत निज चित्तका ज्ञान उस मनुष्यको हो जाता है चित्त स्थिर

करनेकी शक्ति आ जाती है वह संसारके बन्धनको प्राप्त नहीं होता है। भागवत्में लिखा है :—

कर्मणिक्रियमाणेतु गुणैरात्कनिबन्धनैः।
तदस्य संस्मृतिर्बन्धः पारतन्त्रश्च तत् स्मृतम्॥

सत-रजस गुणोंसे जो कर्म होते हैं और उनको जो शरीरमें मानता है ; यही बन्धनका कारण है। गीतामें कहा है :—

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धःस्वेन कर्मणा।

जीवका बन्धन कर्मसे माना है और जो कि पुण्य, पाप भोगनेके निमित्त स्वर्ग, पातालमें जन्म धारण करता है परन्तु सहस्रदलमें जिसका नियत चित्त हो गया है वह संसारके जन्म-मृत्युके बन्धनमें नहीं पड़ता है। और भी शास्त्रोंमें कहा है :—

अश्वमेध शतेनापि ब्रह्महत्या शतेन च।
पुण्य पापैर्नलिप्यन्ते येषां ब्रह्मह्रदिस्थिताः॥

जिनकी ब्रह्ममें निष्ठा हो गयी है उनको पुण्य पाप नहीं लगते हैं। और भी भागवत् गीतामें :—

नैवतस्य कृतेनार्थः ना कृतेनेहकश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थ व्यापाश्रयः॥

अर्थात् ऐसे महात्माके कर्म करनेसे कोई स्वर्गादि सुख नहीं होता और न करनेसे कोई नरकादि दुःख नहीं होता है। जिसका मन शिव तत्व ब्रह्ममें लय हो गया है ऐसे पुरुषके प्रारब्ध सचित

और क्रियमाण कोई भी कर्म बन्धनके हेतु नहीं होते। यथाः—
ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणिभस्मसात् कुरुते तथा।

"सुधासिन्धोर्मध्ये" राजयोगसे मनकी स्थितिके और हठ योग द्वारा प्राणको पूरकसे नीचे भर कर और अपानको मूलाधारसे ऊपर खींचकर कुण्डलिनी महाशक्तिको मणिपुरमें प्राणापानके परस्पर संयोगसे उत्पन्न अग्नि द्वारा उद्बोधन करे सुषुम्णा मार्गसे हृदय दहरके समीपसे आत्म स्वरूपको ग्रहण करते हुए आज्ञा चक्रस्थ चन्द्रमण्डलमें जो अमृतपिण्ड है जिसका अमृतविन्दु नीचे गिरनेसे यह शरीर जीवित रहता है। जिसको ऊपर रोकनेके लिए योगीजिन विपरीत करणी मुद्रा द्वारा ऊपर ही रोक कर अमृत प्राप्त करते हैं। यही वह श्रीचक्रका विन्दुस्थान है जिसके भीतर सम्पूर्ण चक्र इस प्रकार अन्तर्निहित हैं।

सुर विटपिवाटी परिवृतेः—शरीर ये मूलाधारसे लेकर सहस्त्र दल पर्यन्त षटचक्रोंको एक ही स्थानपर एकत्रित करनेसे ४३ (तेतालीस) त्रिकोणात्मक यन्त्र बन जाता है। वही ४३ त्रिकोण ही कल्पवृक्षोंका उपवन है। इसके बीचमें त्रिकोण मूलाधार चक्र ही विन्दुरूप कदम्ब बृक्ष युक्त मणिद्वीप (अग्निका स्थान प्रकाशमय) के मध्यमें चिन्तामणि गृह हैं, उसमें चतुर्दलरूपी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश यह मंचके चार पाये हैं, जिसमें सदाशिव-मय शव ही विस्तर रूप है। उसमें बैठी हुई हे भगवति! तुम्हारी वह क्वणत्कांची दामा वालास्वरूप शोभित है। समस्त

जगतपर जब योगी अपनी स्थिति हठयोग या राजयोग द्वारा कर लेता है तब वहांपर तुम्हारे श्वासोच्छ्वास रूपमें उत्पन्न होनेवाले वायुसे अनाहतनाद जो अव्यक्तरूपमें कानोंके अन्दर सुनाई देता है, वही समाधि अवस्थामें व्यक्त होकर "एकोऽहं बहुस्याम" कामनारूप वीज है। यथा—(कार्मनासे कः कलासे ईं तुम्हारे द्वीप सूक्ष्म स्थानसे "ल" को मिलानेसे "क्लीं' की ध्वनि स्पष्ट रूपसे प्रतीत हो जाती है।

"परम शिव पर्यंक", 'यहांपर "खं ब्रह्म" महावाक्यसे शिव-विन्दुरूप परा शक्तिनाद इसके योगसे "शिवः शक्त्यायुक्तो" प्रणवकी उत्पत्ति हुई। यह प्रणव अ उ म विश्व-तैजस प्राज्ञ; ब्रह्म, विष्णु, रुद्र। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-रज-सत्व-तम ईन भेदों से सर्वात्मक है। अतः तुम तुरीय रूपमें अर्धमात्रारूपा सूक्ष्मा मन्त्राक्षर ध्वनिमयी "अर्धमात्रा स्थिता नित्या जानुश्चार्या विशेषतः" तथा अर्धमात्रामें वासनामयी हो। "मनसै वेद-मातव्यं" नेहनानास्ति किंचन" अव्यवहार्यरूपा चितिः प्रज्ञानं ब्रह्म। तुम ही हो। इस श्लोकसे कामेश्वरीं वीज "क्लीं और महाप्रेत "हसौ" की ध्वनि द्योतित होती है।

भावनोपनिषद्में श्रीचक्रके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन आया है :—

आत्मानमखण्डमण्डलाकारमावृत्य सकल ब्रह्माण्डमण्डलं स्वप्रकाशं ध्यायेत।

ॐ श्री गुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः। तेन नवरन्ध्ररूपो

देहः। नवशक्तिरूपं श्रीचक्रम्। वाराही पितृरूपा। कुरुकुल्ला बलिदेवता माता। पुरुषार्थाः सागराः। देहो नवरत्न द्वीपः। आधार नवकमुद्राः शक्तयः। त्वगादि सप्तधातुभिरनेकैः संयुक्ताः कल्पतरवः। तेजः कल्पकोद्यानम्। रसनया भाव्यमाना मधुराम्ल तिक्तकटुकषाय लवण भेदाः षड्साः षडतवः क्रियाशक्तिः पीठम्। कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम्। इच्छा शक्तिर्महात्रिपुर सुन्दरी। ज्ञाता होता ज्ञानमग्निः ज्ञेयं हविः। ज्ञातृज्ञान ज्ञेयानाम भेदभावनं श्री चक्र पूजनम्। नियति सहिताः सृङ्गाराद्यो नवरसा अणिमादयः।

कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्य पुण्यपापमया ब्राह्म्याद्यष्टशक्तयः। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश श्रोत्रत्वकचक्षुर्जिह्वाघ्राण वाक्पाणि पाद-पायुपस्थ मनोविकाराः षोडश शक्तयः। वचनादानगमन विसर्गानन्दहानोपेक्षा बुद्ध्योऽनङ्गकुसुमादि शक्त्योऽष्टौ। अलम्बुसा कुहूर्विश्वोदरी वरुणाहस्तिजिह्वा यशस्वत्यश्विनी गन्धारी पूषा शङ्खिनी सरस्वतीडा पिङ्गला सुषुम्नाचेति चतुर्दश नाड्यः। सर्वसंक्षोभिण्यादि चतुर्दशारगादेवताः।

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिमरुतमा काशमुपरि॥
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपिभित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरते॥९॥

टीका :—

हे भगवति ! मूलाधारमें तुम पृथ्वीरूपसे हो मणिपुर (अन्य ग्रन्थोंमें इस दलको स्वाधिष्ठान कहा है) में जलरूप होकर रहती हो। स्वाधिष्ठान (इसको अन्यत्र मणिपुरक कहा है) में अग्निरूपसे हृदयमें वायुकी मूर्ति विशुद्धमें आकासस्वरूपा भ्रूमध्यमें मनोमयी शक्ति इस (षटचक्रात्मक) कुल मार्गको भेदन कर सहस्र दलमें वैन्दवस्थान (जो गुप्तस्थान है) उसमें पति परम शिवके साथ तुम हृल्लेखा कुण्डलनी स्वरूपसे विहार करती हो।

भाष्य :—

कणत् काञ्ची इस श्लोकमें भगवतीके स्थूल रूपका वर्णन किया है। सुधासिन्धोर्मध्ये सूक्ष्म मन्त्रात्मक विग्रहको कह कर महीमूलाधारे इस श्लोकमें भगवतीका हृल्लेखा कुण्डलनीके स्वरूपका वणन इस प्रकारसे किया है मूलाधार पृथ्वीतत्वसे लेकर विशुद्ध आकाशतत्व कुलमार्गको भेदन कर आज्ञाचक्रमें मनोमयी श क्त सम्पन्ना राजयोग्यगम्या भगवती सहस्रारमें जो गुप्तस्थान है जिसे षटचक्रमें "सुगुप्तं तद्यत्नात" कहकर निर्देश किया है बहांपर सदाशिवमें मिल जाती हो यही आरोह क्रमसे मोक्ष सिद्धि है। योगशास्त्रका तात्पर्य कुण्डलनो शक्ति को मूलाधारसे जागृत कर सहस्रारमें ले जानेका है षट्चक्रोंमें पृथ्वी आदि तत्व आये हैं जिस-जिस तत्वपर योगी विजय प्राप्त कर लेता है उस-उसका ज्ञान उसे प्राप्त होता है तथा

जिस तत्वमें मनको लीन कर देता है उसी-उसी वस्तुके भीतर होनेवाले गुणोंसे सम्पन्न हो जाता है। तथा शरीरमें योग-शास्त्रोक्त भुवनभेदोंमें मनको स्थिर करनेसे उन-उन लोकोंकी स्थितिको जान लेता है।

मूलाधार पृथ्वीके सम्पूर्ण तत्वोंसे युक्त है, इसमें गन्ध तन्मात्रा है; यही मूल त्रिकोण श्री यन्त्रका प्रथम त्रिकोण है। यदि पृथ्वी तत्वात्मक मूलाधारमें किसीका दोष आ जाता है तब यह शरीर भी जो आधाराध्येय भावसे मूलाधारपर स्थित है वह स्वयं भी निराधार होकर कार्य करनेमें असमर्थ हो जाता हैं। इसके भेदनका तात्पर्य यह है कि अपान वायुके द्वारा इस चक्रके मध्यमें बिन्दुरूप जीवनसत्ता शक्तिके ऊपर मनको हठ और राजयोग द्वारा स्थिर कर लेता है तब वह समाधि अवस्था द्वारा पृथ्वीतत्वमें लीन होकर पृथ्वीके प्रत्येक भागमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे प्रविष्ट हो जाता है। यहांपर भगवद् पादने स्वाधिष्ठानकी संज्ञा ही मणिपुर मानकर यह सिद्ध किया है कि पूर्ववत् मनोयोगसे इस जल तत्वात्मक चक्रका भेदन करनेसे जल स्तम्भन आदि सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यही श्री यन्त्रका अष्टकोण है। यह चार दल मूलाधारके ऊपर जब षट् दलको रखा जाता है तब-तब आठ ही कोण बनते हैं इसलिए इस स्थानपर अष्टकोण बनते हैं। जब योगी अपान वायुको ऊर्ध्वाकर्षण करते हुए नाभिस्थान-स्वाधिष्ठानमें पहुंचता है उस समय प्राणापानके परस्पर संघर्षसे अग्नि उत्पन्न होती है।

इसीको दशदलात्मक वह्निका (अग्निका) स्थान कहा है। इसमें मनको स्थिर करनेसे वह्नि जय स्थितिको प्राप्त कर लेता है। यही श्री यन्त्रका अन्तर्दशार है। हृदयमें नादात्मक वायुका स्थान है। इसकी तन्मात्रास्पर्श है। पूर्ववत् श्री यन्त्रका बहिर्दशार बन जाता है। इसके ऊपर योगमार्गसे विजय पानेपर योगी वायुके समान गति प्राप्त कर लेता है।

विशुद्धचक्र कण्ठकूपमें आकाशका स्थान है। चतुर्दशार श्री यन्त्रका यहांसे प्रादुर्भाव होता है। इस स्थानपर विजय पानेसे योगी आकाशगमन तथा लघिमा सिद्धिको प्राप्त करता है। यह सिद्धि अञ्जनीनन्दन हनुमानजीको प्राप्त थी, तुलसी-दासजीने लिखा है—"मशक समान रूप कपि धरी, लङ्का चले सुमिरी नरहरी" इस प्रकार षट्चक्र भेदन कर कुण्डलनी शक्ति आज्ञाचक्रमें चन्द्र स्थानपर पहुंचती है तब साधकको भगवती पराचितीके स्वरूपकी स्फुरणा होती है। जिसका "सुधासिन्धो" वाकयसे निरूपण किया गया है, तदनन्तर जीव चिच्छक्तिके साथ सहस्रारमें जाता है जो अमाका स्थान है यह केवल योगी जनसे ही गम्य है: यहांपर वाणीकी गति नहीं है, महामाया परब्रह्मके साथ एकरूपा होकर यहांपर विराजती है, इसीको "परमानन्द लहरी" कहकर निर्देश किया गया है। " ॐ आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन" ब्रह्मानन्दका अनुभव प्रणवका विलास यहांपर ही है इस ही स्थानको वेदमें "नेति नेति" कहा है "न स पुनरावर्तते" यहांपर

जाकर फिर दुःखमें नहीं आता है। तत्र को मोहः कः शोकः इस स्थितिमें जाकर मोह, शोक दूर हो जाते हैं, कुण्डलनी शक्ति यहांपर शिवतत्वमें मिल जाती है इस भावको "सहर-हसिपत्या विहरसि" इससे दर्शाया है ब्रह्मरन्ध्रमें कुण्डलनीके मिलनेको सिद्धसोपानमें लिखा है—"कुण्डलिन्या महीभेदे योगी त्यजति मेदिनीम्. सलिलस्थानभेदेन जले चलति योगवित्" इस प्रकरणको स्पष्ट करनेके लिए जिस-जिस चक्रमें जिन वर्णोंका अधिष्ठान है वह सब विस्तारसे दिखाते हैं मनुष्य शरीर छ चक्रों से बना हुआ है जो श्रीचक्रके पृथक २ चक्र हैं जिनको आजकलके वैज्ञानिक अन्वेषण करते करते थक बैठे हैं; परन्तु भारतीय ऋषियोंने अन्तर्मुख दृष्टि प्राप्त करके जिस चक्रकी जहां स्थिति है उसका क्या रंग है और प्रत्येक चक्रमें कहां कितने दल हैं? उन पर कौन २ अक्षर (Alphabets) अ से क्ष तक प्राकृतिक रूपसे विराजते हैं। इस विषयकी उपयोगिता होनेके कारण इसको विस्तारसे स्पष्ट करते हैं :— यथा :'आधारे लिंग नाभौ हृदय सरसिजे, तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोड़शारे द्विदश दशदले द्वादशार्धे चतुष्के वामन्ते बालमध्ये ड़ फ क ढ सहिते कण्ठदेशे स्वराणाम् हं क्षं तत्वार्थ युक्ते 'सकल मुनिमनं वर्णरूपं नमामि।

१—पार्थिव चक्र-चक्र मूलाधारमें चतुष्कोणात्मक चार कोने वाला पार्थिव चक्र है। इसके कोणोंमें दक्षिणावर्त्त से (दाहिनी ओर) व-श-ष-स ये ४ वर्ण है पीले रंगका कमल है; इस चक्रमें

जो पद्म है उसके चार दल (पत्ते) हैं उन पर उक्त ४ अक्षर हैं। और आठ त्रिशूल और सप्त कुलाचल हैं। बीचमें पृथ्वी बीज 'लं' है। उस बीजके मध्यसे सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्माके रूपमें विराजमान हैं, डाकिनी शक्ति यहाँ पर है और कन्दर्प नामका वायु यहांपर रहता है। पृथ्वीमें मध्याकर्षण शक्ति (Gravitation) अर्थात् प्रत्येक वस्तुको नीचेकी ओर खींचनेकी शक्ति रहती है। अपान वायुका भी यही स्थान है। चन्द्रमाका शरीरमें यही अधिष्ठान माना गया है। विश्वतन्त्रसारमें इस प्रकार कहा है:—

मूलाधारे धराचक्रं चतुष्कोणं प्रियंवदे।
पीतवर्णं परिवृत्तं चाष्ट शूलै कुलाचलैः॥

सप्तकुलाचलोंके नाम ये हैं :—

नीलाचलं मन्दरं च पर्वतं चन्द्रशेखरम्।
हिमालयं सुवेसंश्च मलयश्च सुपर्वतम्॥

अर्थात् नीलाचलादि सात पर्वत हैं। यहीं पर कामबीज "क्लीं" का स्थान एवं भगवती त्रिपुराका स्थान भी यहीं है। उसका आकार कैसा है सो लिखा है। "त्रिकोणं तत्तु विज्ञेयं शक्तिपीठं मनोहरम्। वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री त्रिरेखा च तदूर्ध्वतः॥ कन्द देशे वसेत्प्राणो ह्यपानो गुदमण्डले॥ कन्ददेशमें प्राण वायु और गुदा देशमें अपान वायु रहता है।

प्राणका स्थान ही सूर्यका स्थान है। अर्थात् तेजसका स्थान है जो सबको ऊपरकी ओर आकर्षित करता है। अर्थात् अपान

प्राणको अपनी ओर खींचता है। पृथ्वीमें Law of gravitation होनेसे सब वस्तुको अपनी ओर खींचनेकी शक्ति है और सूर्यमें तैजस तत्व होनेसे प्रत्येक पदार्थको ऊपरकी ओर खींचनेकी शक्ति है। इस प्रकार यह विसम्वाद क्रिया आकर्षण Negative विकर्षण Positive दो प्रकारकी विरुद्ध शक्तियां काम करती हैं। तबतक जीवन है अर्थात् जबतक अपानका नीचे खींचना प्राणका उर्द्धाकर्षण रूपी विसंवाद रहता है तब तक जीवन है। जब दोनों में से एककी गति रुक जाती है तब ही मरण है अर्थात् क्रिया शक्तिका नाश है। कहा भी है :—"श्वासोच्छ्वास विभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते। सामूलाम्वुज गह्वरेविलसति प्रोद्दाम दीपावली" श्वास प्रश्वासके विभञ्जनसे जो जीवन सत्ताको बनाती है वह कुण्डलनी शक्ति मूलाधारमें प्रकाशरूपसे रहती है।

अब दूसरा आप्य चक्र है: सिन्दूरके सदृश लाल रंग है। सुषुम्णाके बीच ध्वजके मूलमें ये छ (६) दलों वाला कमल है जिन पर ६ अक्षर (वर्ण हैं। इसके मध्यमें "वं" कार बीज है। उसका अधिष्ठान देवता वरुण है। शरदकालीन चन्द्रमाके समान वरुणका शुद्ध वर्ण (रंग) है। यहां पर विष्णुकी मूर्ति और राकिनी शक्ति रहती है। ग्रन्थी भेदन कर कुल मार्ग यहां से चलता है। इसके ऊपर अग्निचक नाभी मूलमें दश दलका चक्र है उसे मणिपुर कहते हैं। सौन्दर्य लहरीमें मणिपुरका स्थान स्वाधिष्ठानके स्थान पर मणिपुर नाम लिखा है। केवल नाम

मात्रका भेद है। सब प्रकारके चक्रोंका वर्णन एक ही तरह पर है इसमें दश दल हैं इन पर डं ढं-णं-तं-थं-दं-धं-नं पं-फं ये वर्ण हैं। इसका मेघके समान रंग है इसके मध्यमें अग्नि त्रिकोण है और "रं" बीज है। लाकिनी शक्तिका वास है।

(४) वायव्य चक्र हृदय कमलमें १२ द्वादश दलात्मक अनाहत चक्र है। यहां पर वायुका वास है।

मण्डलका सिन्दूरके समान रङ्ग है। कं—खं—गं—घं—ङं—चं—छं- जं—झं—ञं—टं—ठं ये वर्ण १२ दलोंमें हैं। यहां काकिनी शक्ति ओर वाणलिङ्गका स्थान है विष्णुग्रन्थीका भेदन यहांपर होता है।

(५) आकाशचक्र कण्ठमें है। इसमें १६ स्वर अ से अः तक हैं। यही षोडश नित्याका स्थान है। यहांका रक्त वर्ण है। वृत्ताकार आकाशमण्डलके मध्यमें "हं" आकाशका वीज है। शाकिनी शक्ति त्रिनेत्र सदाशिवके साथ रहती है। यही मोक्षका द्वार है।

(६) मानसचक्र-भ्रू मध्यमें चन्द्रमाके समान शीतल प्रकाश है। हूं-क्षूं दो वर्ण हैं। हाकिनी शक्तिके साथ शिव विराजते हैं। यहीं पर मन सूक्ष्मरूपसे रहता है। ब्रह्मज्ञान इसी स्थानसे होता है। इसके ऊपर सहस्रार कमल वैन्दव स्थान कुण्डलनी शक्ति यहांपर परम शिवके साथ रहती है इसीको "सहरहसिपत्या विहरसि" से शिवके साथ विहार करना कहा है।

हं—चतुर्दसार—	यं—बहिर्दसार—	वं—अन्तर्दसार—
विशुद्धि	अनाहत	मणिपूर
रं—अष्टकोण—		लं—त्रिकोण
स्वाधिष्ठान		मूलाधार

सुधाऽऽधारासारे श्चरणयुगलान्तर्विगलितैः ।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः ॥
अवाप्य स्वांभूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं ।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी १०

टीका—

चरणकमल (भ्रूमध्य द्विदल) से निस्सृत अमृतकी धारसार में (षट्चक्ररूपी) प्रपञ्चको सिञ्चन करती हुई रसरूपी जो आम्नायको प्रकाश से अपने मूलाधार भूमिको (अवरोह मार्गसे) प्राप्तकर अपने सर्पाकार (सार्द्ध त्रिवलय) करके कुलकुन्डमें शयन करती है। अर्थात् सुषुम्नाके अन्दर वज्रानाड़ीके भीतर छिप जाती है।

भाष्य—

पहले श्लोकमें मूलाधार जो अग्निशिखाका स्थान है वहांसे कुलकुन्डलिनीको षट्चक्र भेदन द्वारा सहस्रारमें परम शिवके संयोग द्वारा मायाब्रह्मको एकता कही है। यही मोक्षावस्था है। योगी निरन्तर इसी अवस्थासे जीवनमुक्त स्थिति और अणिमा-

लघिमादि सिद्धियां प्राप्त करता है। परन्तु यावच्छरीरमें यह स्थिति नहीं रहती। यदि यह स्थिति बनी रहे तो सांसारिक प्रपञ्च लीन हो जाते हैं। अतः यह हल्लेखा जीवन-शक्ति कुण्डलिनी प्रत्येक क्षणमें विद्युतगतिके समान तीव्रगतिसे फिर अपने स्थानपर लौट कर इस शरीरको जीवन प्रदान करती है। इसलिये अब वह महाशक्ति अपनी मूल भूमिकामें किस प्रकार सञ्चार करती रहती है इस बातको सुधाधारेत्यादि पदसे प्रकट किया है। "अवाप्य स्वां भूमिं"—कुलकुण्डलनी अपने स्थान को प्राप्तकर आत्मभाव होनेसे निर्वाण स्थितिमें साधक पहुंच जाता है। इसलिए पहले कुन्डलनीका स्वरूप और उसकी सहस्रारमें जानेकी गति और ग्रन्थियोंका भेदन जानकर कुल-कुन्डामें कुहिरीका प्रवेश जाना जाता है। यथा मेरुतन्त्रमें—

षण्नवत्वंगुला यामं शरीरमुभयात्मकम्।
गुद ध्वजान्तरे कन्द मुत्सेधो द्वंगुलंविदुः॥
तस्माद् द्विगुण विस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम्।
नाड्यस्तत्र समुद्भूताः मुख्या स्तिस्रप्रकीर्तिताः॥
ईड़ा वामेस्थिताः नाड़ी पिंगला दक्षिणेस्थिता।
तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुम्णा वंशमास्थिताः॥
पादांगुष्ठ द्वयेयाता शिफाभ्यां शिरसापुनः।
ब्रह्मस्थानं समापन्ना सोमसूर्याग्निरूपिणी॥

प्रत्येक पुरुषका अपने अंगुलसे ९६ अंगुल लम्बा शरीर होता है, गुदा और लिंगके मध्ये २ अंगुलके अन्तरपर कन्दस्थान है, उससे द्विगुण अर्थात् ४ अंगुलका विस्तारका एक वृत्त बना है, यहांसे नाड़ी शिरा और धमनियां उत्पन्न होती हैं। इनमें मुख्य नाड़ी तीन हैं।

मेरु दन्डके बाम भागमें ईड़ा (चन्द्रनाड़ी) दक्षिण भागमें पिंगला (सूर्यनाड़ी) दोनोंके मध्य मेरुदन्डके भीतर सुषुम्णा है, यथा—"मध्ये नाड़ी सुषुम्णा त्रिनवगुणमयी" सूर्य, चन्द्र, अग्नि तीनों गुणोंवाली है "विद्धिते धनुराकारे नाड़ीड़ा पिंगलेपरे" सुषुम्णा नाड़ीके मध्यमें वज्रा उसके बीचमें चित्रणी चित्राके मध्यमें ब्रह्मनाड़ी, ईड़ा, पिंगला, धनुषके आकारकी तरह मुड़ी हुई हैं। यथा—

मध्ये सुषुम्णा तन्मध्ये वज्राख्यालिंग मूलतः।
तन्मध्ये चित्रणी सुक्ष्मा विशतन्तु सहोदराः॥
मूलमूलात्सहस्रारस्तदंतर्ब्रह्मनाडिका।

तथा—

तस्यामध्ये विचित्राख्या अमृतश्राविणी शुभा।
सर्वतेजोमयं सातु योगीनां हृदयंगमाः॥

अर्थात् सुषुम्णाके मध्यमें वज्रानाड़ी उसके मध्यमें चित्राके छिद्रको ही ब्रह्मनाड़ी कहते हैं, योगी इसीमें आनन्द करते हैं इसे "प्रणव बिलसिता" भी कहते हैं, ओंकारकी ध्वनिसे यह जागृत होती है। मायातन्त्रमें इसके स्वरूपका वर्णन आया है—

"ब्रह्मद्वार मुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति" अपने मुखसे ब्रह्मद्वार को ढक कर यह कुन्डलनी रहती है। षट्चक्र निरूपणमें कहा है—

विद्रुन्माला विलासा मुनिमनसि लसत् तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा,
शुद्धज्ञान प्रवोधा सकल सुखमयी शुद्धबोध स्वभावा ॥
ब्रह्म द्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधा धार गम्यं प्रदेशं।
ग्रन्थीस्थानं तदेतत् वदनमिति सुसुम्णाख्यनाड्यांलपन्ति॥
तस्योर्द्ध्वे विशतन्तु सोदर कला सूक्ष्मा जगन्मोहिनी।
ब्रह्मद्वार मुखं मुखेन मधुरं संछादयन्ति स्वयं॥
शंखा वर्तनिभा नवीन चपला माला विलासास्पदां।
सुप्ता सर्प समा शिवोपरि लसत् सार्द्ध त्रिवृत्ता कृति॥

उक्त श्लोकोंमें कुन्डलनीका स्वरूप वताया है सूक्ष्म कमलके रेशेके समान यह शिरा है सारा संसार इसीके कारण मोह-निद्रामें पड़ा है। यह कुन्डलनी ब्रह्मद्वारको अपने मुखसे ढकी हुई सहस्रार वैन्दव स्थानसे जो अमृत निकलता है वह सब कुन्डलनीके ही मुखमें चला जाता है, इस नाड़ीका स्वरूप शङ्खके आवर्तकी तरह घूमा हुआ है, यह बिजलीको तरह चमक देती है, मूलाधारमें जो शिवलिंग है उसमें साढ़े तीन फेरे लगा कर सर्पणीके समान सोती-सी रहती है।

"भित्वालिंगत्रयं तत् परमरम शिवपदे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे। सा देवी शुद्धसत्वा तड़िदिव विलसत् तन्तुरूपा सुसुक्ष्मा" मूला-

धार अनाहत विशुद्धमें तीन शिवलिंगोंको पारकर परम शिव सहस्रारमें विद्युत् चमकवाली अतिसूक्ष्म कुन्डलनीको ले जांना यही परम शिव पर्यंकमें शयन करना है। यह रहस्य स्थान है।

यद्यपि कुन्डलनीकी जागृति करानेकी विधि योगशास्त्रमें लिखी है पर यह गुरुगम्य है केवल पुस्तकोंके अध्ययनसे इसका ज्ञान हो जाना सम्भव नहीं है यह आनुभविक विज्ञान है इसके लिए "गुरुपदेशतोगम्यं नतु शास्त्रार्थ कोटिभिः" यह गुरुगम्य है तथापि यम नियमासनादि सम्पन्न साधन चतुष्टयवान् मुमुक्षुके लिए इसकी रूपरेखा संक्षेपसे लिख देते हैं इष्टदेव भगवतीकी पूर्ण भक्तिसे इसका प्रकाश होता है वस्तुतः भगवतीके उपासक को किसी-न-किसी रूपमें गुरु मिल ही जाते हैं, कुन्डलनीके उत्थानकी विधि निम्न प्रकार है—

"पद्मासने निविश्यांके ततः पाणिद्वयं ण्यसेत् ।
ततः हंसमुपश्रृत्य शनैः संकोचयेत् गुदम् ॥
वायु मुत्तोलयेत्तेन वर्त्मना सपुनःपुनः ।
उत्तोल्य भेदयेश्चक्रं तस्यानुष्ठानमुच्यते ॥
मूलाधार सरोजंतु त्रिकोण मणि सुन्दरम् ।
कामो भवति तन्मध्ये बालार्क कोटि सन्निभम्॥
तदूर्धे कुण्डली शक्ति स्वयम्भूलिंग वेष्ठिता ।
हृदिस्थां कुञ्चिकां कृत्वा गत्वा तदुदरे शिवे ॥

कण्ठाद्यं समनुप्राप्य द्वारं कुञ्चिकयाहवत् ।
उद्घाट्य परमेशानीं पवनेनप्रदीपयेत् ॥
हुताशन प्रतप्तांतु तापेनधृषमूर्द्धनाम् ।
प्रसुप्तां नागिनीं लिंगे योनिवक्त्रे प्रबोधयेत् ॥
ततः प्रक्षालयेद्वायुं यावन्नाऽभ्यन्तरेषु च ।
गुरु पादिष्ट मार्गेण सकृद्वा कुम्भकेन च ॥
आक्रम्यैनं ततोजीवं सुगुप्तेन यथाभृशम् ।
उद्‌र्ध्वच्छ्वासैरुर्ध्वमुखात् कारयेत्पंकजान् शिवे ॥
प्रबोधयेत् शनैःवायुं मेरुशृंगं नयेत्सुधिः ॥

उक्त श्लोकोंका तात्पर्य यह है यमनियमाशन सम्पन्न अधिकारी भस्त्रीकाको सिद्ध किया हुआ पद्माशनमें बैठकर दोनों हथेलियोंको अपने दोनों जङ्घाओंपर रखकर "हंसः" हकार सकारसे वायुकी बाह्य अन्तर्गति स्थगित कर शनैः शनैः गुदाको आकुंचन करके (सिकोड़ कर) वायुको ऊपरकी ओर पूरककी सिद्धिसे उछालनेसे ऊपरके पांच चक्रोंको भेदन करे मूलाधार त्रिकोणमें कामवीज आगे वालसूर्यकी तरह चमकवाला है उसके ऊपर स्वयम्भूलिंगमें सर्पाकार कुन्डलनी शक्ति है, हृदयपद्ममें विष्णुग्रन्थिका भेदन कर विशुद्धमें हठयोगके नियमानुसार ले जावे कुन्डलनीको जगाकर कुम्भकको अग्निसे उसे उत्तपन कर तब अवरोह मार्गसे योनिस्थानमें लावे तब नाड़ियोंको वायुसे

शुद्ध कर देवे तब उर्द्ध श्वासको खींचकर षट् कमलोंके विकाश करनेसे शनैः शनैः कुन्डलनीको जागृत करे यह अनुभव सिद्ध गुरुसे जानने योग्य है। तथाच

हुंकारेणेव देवीं यमनियम समभ्यासशील सुशीलो।
ज्ञात्वा श्रीनाथ वक्त्रात् क्रममितिच महामोक्षवर्त्म प्रकाशम्
ब्रह्म द्वारस्य मध्ये विरचयति सतां शुद्धबुद्धिस्वभाव।
भित्वा लिंगत्रयं तत् पवनदहनयो सक्रमेणैव गुप्तम्॥

हुंकार शब्दसे कुन्डलनीको जागृत करके पवनदहन कुम्भक पूरकके योगसे मोक्षद्वारको उद्घाटन करे अर्थात् मूलाधार जो कफका स्थान है उसे कुम्भककी अग्निसे प्रतप्त कर हूं हूं हूं इस शब्दसे जिस भावका संकेत किया जाता है उस क्रियासे कुन्डलनी को वहांसे चालन करके स्वयम्भूलिंग (मूलाधारमें) वाणलिंग (अनाहतमें) इतर लिंग (विशुद्धमें) इन तीन लिंगोंके भीतर छिद्रसे उस कुन्डलनीको जगाकर अर्थात् तीन ग्रन्थियोंको भेदन कर परम शिवमें (सहस्रारमें) कुन्डलनीको पहुंचाना आरोह ओर पुनः अवरोह मार्गसे कुन्डलनीको यथास्थानमें लाना सहस्रारसे जो अमृत श्रावित होकर आज्ञारूपी भगवतीके चरणों के द्वारा सारे षट्चक्रात्मक देहरूपी प्रपंचको सिंचन करती हुई ज्योतिरूप आम्नायको सहसा प्राप्त कर कुन्डलनी अपने स्थानको प्राप्त करती है। इस श्लोकमें आम्नाय पदसे शङ्करके पंचमुखों से निकले हुए पंचाम्नायसे तात्पर्य है यथा—"पूर्वं दक्षिण पाश्चात्यै सदगूर्द्ध क्रमेण च। पंचवक्त्रै शिवप्रोक्ताः पंचमाम्नाय

देवता:" शिवजीके पञ्चमुखोंसे पञ्चाम्नाय निकले हैं (१) पूर्वाम्नाय जिसमें उन्मनी विद्या है "ह स्रौं स्हौं श्रीं क ल ह्रीं" (२) दक्षिणाम्नाय जिसमें भोगिनी विद्या है ऐं क्लिन्ने मदद्रवेत् ह्सौः (३) पश्चिमाम्नाय जिसमें कुब्जिका विद्या ऐं ह्रीं श्रीं हस फ्रें ह सौः ओं है (४) उत्तराम्नाय कालिका विद्या एव फ्रें महा चंड योगीश्वरी (५) ऊर्धाम्नाय जिसमें परा प्रसाद मन्त्र है पपञ्च शब्दसे देह और सारी सृष्टिका अर्थ है। यथा—

"योगी स ब्रह्मवित्ज्ञानि शिवयोगी तथात्मवित् ।
तेनैव विहितं सर्वं प्रपञ्चात्म्यैक्य विग्रहम् ॥

देह इन्द्रियादि कालादि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रपञ्चात्मक है शास्त्रमें प्रपञ्चन्यास सविस्तार वर्णित है। आकाशादि मानसादि ६ स्थानोंको जो स्तम्भरूप हैं तथा क्रमसे नीचेके चक्रोको अपने प्रकाशसे सिञ्चित करती हुई सार्द्ध त्रिवृत्ता बनकर कुल कुण्डलनी कुलकुण्ड चतुर्दल मध्यवर्ती मूलाधार गर्तमें निवास करती है। स्वपिषिसे उस सुसुप्तिका निर्देष है जो माण्डूक्यमें "सुसुप्ति स्थान एकीभूत प्रज्ञानधम आनन्दमयो ह्यानन्दमुक्" से वर्णित किया है उस आनन्दावस्थामें विलास करती है। इस प्रकार कुण्डलनी मूलाधारसे सहस्रारमें सहस्रारसे मूलाधारमें आरोह अवरोह मार्गसे चलती हुई सारे प्रपञ्चको जीवित करती है अर्थात् ब्रह्मरंध्र अकुल स्थानसे अमृत पान कर कुल रूप अपने स्थान पर लौटती है। पुनः अमृत पानके लिए कुलस्थान मूलाधारसे ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर आनन्दित होती है जब कुण्डलनी परम शिव

सहस्रारमें जाती है उस समय ६ चक्र इसीमें लीन हो जाते हैं। फिर अमृत प्रभावसे नीचे उतरते सब तत्व तथा चक्र यथावत् हो जाते हैं, यह संसारका उदय प्रलय है यह उत्पत्ति प्रलय क्रिया अति शीघ्र होती रहती है जो संसारकी दृष्टिसे मालूम नहीं होता है। दिव्यदृष्टिगम्य यह ज्ञान है "दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम्" योगका चमत्कार दिव्यदृष्टि द्वारा दिखाई देता है। तब योग विभूति दिखानेको अर्जुनको भगवानने दिव्य चक्षु दिये थे। सामयिक लोग भगवानके भालमें जो चन्द्र है उसीको अमृतपिण्ड मानते हैं आज्ञाचक्र निसृत पियूषको ही परम रस कहते हैं 'रसोहवै लब्ध्या आनन्दि-भवति" चन्द्रमा षोड़श कलात्मक है। श्रीचक्रमें भी षोड़श दल षोड़शाक्षरी विद्या षोड़श नित्या है, ये सब अमृतमय हैं यह पीयूष प्रवाह भगवतीके चरणोंसे स्पन्दित होकर नीचेको प्रवाहित होता है। साढ़ तीन कोटि नाड़ियोंको तथा वागादि देवताओं-को और साधिभौतिक सम्पूर्ण संसारको जीवित करता है।

यह कुण्डलनी शक्ति सुसुम्णाके मध्यदेशसे विद्युत् छटाकी तरह षट्चक्रोंको संजीवन करती हुई ब्रह्मरंध्रमें पहुंचती है। नाभिमें विष्णुग्रन्थी हृदयमें ब्रह्मग्रन्थी आज्ञाचक्रमें रुद्रग्रन्थीको भेदन कर सहस्रारमें प्रवेश करती है। यही कुलकुण्डलनीके जागरणका संक्षेपसे निर्देष है। गुरू उपदेश द्वारा मुमुक्षु जन इस ज्ञानको प्राप्त कर अपने लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं यही भगवतीका पूजन आदि उच्च उपासना है।

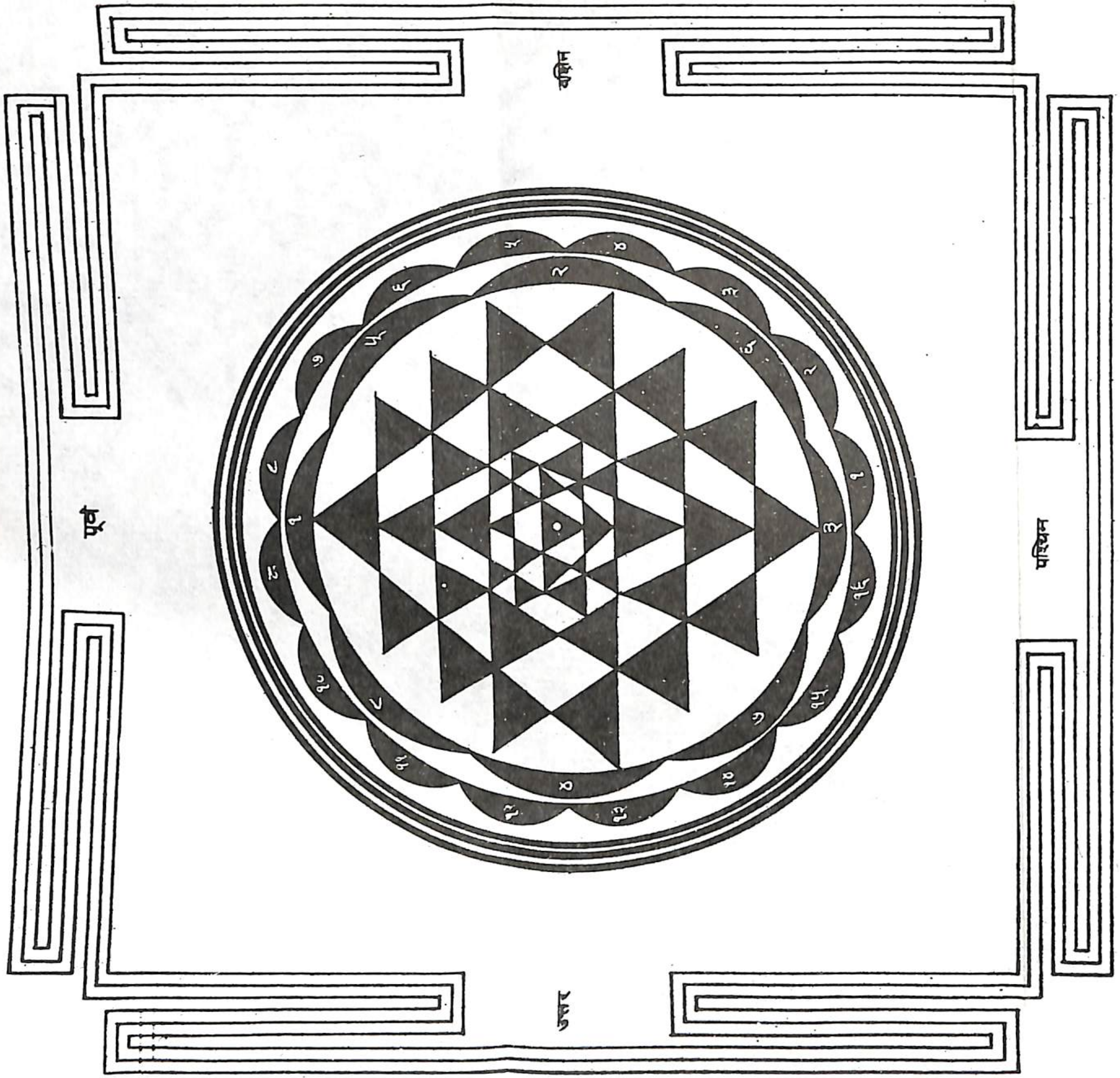

अष्टदल पद्म

१ कं खं गं घं ङं अनङ्ग कुसुमा
२ चं छं जं झं ञं अनङ्ग मेखला
३ टं ठं डं ढं णं अनङ्ग मदना
४ तं थं दं धं नं अनङ्ग मदनातुरा
५ पं फं बं भं मं अनङ्ग रेखा
६ यं रं लं वं अनङ्ग वेगिनी
७ शं षं सं हं अनङ्ग कुशा
८ ळं क्षं अनङ्ग मालिनी

—(::o::)—

—: षोड़शदल पद्म :—

१ अं कामाकर्षिणी
२ आं बुद्ध्याकर्षिणी
३ इं अहंकाराकर्षिणो
४ ईं शब्दाकर्षिणी
५ उं स्पर्शाकर्षिणी
६ ऊं रूपाकर्षिणी
७ ऋं रसाकर्षिणी
८ ॠं गन्धाकर्षिणी
९ ऌं चित्ताकर्षिणी
१० ॡं धैर्याकर्षिणी
११ एं स्मृत्याकर्षिणी
१२ ऐं नामाकर्षिणी
१३ ओं बीजाकर्षिणी
१४ औं आत्माकर्षिणी
१५ अं अमृताकर्षिणी
१६ अः शरीराकर्षिणी

——o——

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल प्रकृतिभिः
त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदल कलाश्रत्रिवलय-
त्रिरेखाभिःसार्धंतवशरणकोणाःपरिणताः ॥११॥

टीकाः—

चार त्रिकोण श्रीकण्ठ और पांच शिवयुवति ये नवकोण नौ मूल प्रकृति से ४३ कोण जिसमें अष्टदल और षोड़शदल त्रिवृत्त तीन रेखाओंसे श्री यन्त्र के कोण परिणत हुए।

भाष्यः—

इस श्लोक में श्रीचक्र का वर्णन आया है यह श्रीचक्र नौ मूल प्रकृति का द्योतक है, इसमें ऊपर के चार त्रिकोण शिति-कण्ठ कहे जाते हैं। नीचे के पांच त्रिकोण शिवयुवति हैं अर्थात् चार ऊपर से नीचे की ओर, पांच नीचे से ऊपर के त्रिकोण है, मध्य बिन्दू से ये पृथक हैं परन्तु अष्टदल षोड़शदल तीन वृत्त तीन भूपुर सब मिलाकर तेतालीस कोण होते हैं। ये तेतालीस भगवति के भुवन कोण है, इसमें मूल त्रिकोण की गणना नहीं की गई है यह सृष्टी क्रम द्वारा गणना मूल त्रिकोण छोड़कर तेतालीस त्रिकोण बताये हैं, नौ मूल प्रकृति इस चक्र की मूल भूमिकाऐ हैं इनको ही नवयोनी कहते हैं, अर्थात् नौ, धातुओं का सूक्ष्म है। यथा—

त्वक्, असृक्, मांस, मेदा, अस्थि, ये पाँचशक्ति मूलक माता को धातू हैं। प्राण, मज्जा, शुक्र, जीव, ये चार धातू श्रीकण्ठ, पिता के अंग से आती है।

इनके अतिरिक्त पञ्च भूत, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, माया शुद्धविद्या महेश्वर, (सदाशिव) ये शिव तत्व से बने हैं, इससे यह ज्ञान होता है कि नौ त्रिकोण से पचीस तत्व बने है, श्रीकण्ठ और शिवयुवति से बने हुए त्रिकोण बिन्दु से पृथक है, वसुकला शब्द का अर्थ आठ से सोलह तक हैं, परन्तु यहां पर अष्टदल, षोड़श दल से अभिप्राय है, कोई-कोई एक ही वृत्त को मानते हैं, परन्तु बृत्त तीन ही होने चाहिए, यतः अष्टदल और षोड़शदल में भी बृत्त है। वामकेश्वर तन्त्र में भूपुर का होना परमावश्यक वताया है, और ४ द्वार श्लोक ९६ में ४ द्वारों का विशदी करण होता है, विन्दु १-८-१०-१०, १४ इनके योग से तैतालीस त्रिकोण बनते हैं।

यथा—"बिन्दुत्रिकोण वसुकोण दशारयुग्मम्
मन्वस्त्र नाग दल संयुत षोड़शारं
बृत्तत्रयश्च धरणी सदनत्रयश्च
श्रीचक्रराज मुदितं परदेवतायाः।

वासासृक् मांसमेदोस्थि धातवः शक्तिमूलकाः। मज्जा शुक्र प्राणजीव धातवः शिवमूलका। नवधातुरयंदेह नवयोनि समुद्भवः।

श्रीचक्र में जैसे ६ धातू नव व्यूह शिव शक्त्यात्मक ४३ कोण हैं वैसे ही ५१ अक्षरों का भी स्थान है श्रीचक्र भगवती का कलेवर या रहने का स्थान है श्री चक्र में सूर्य्य, सोम और अग्नि ये तीन तत्व हैं यथा ४३ त्रिकोण इनमें १६ चन्द्रकला और २७ नक्षत्र के योग से ४३ ये सोम कला है। सौर गणनासे १२ (द्वादशादित्य) द्वादश कला द्वादश ऋषि तीन वेद और चार स्वर ये सौर कला ४३ होती है। त्रिकोण अग्नि द्योतक है। अष्ट कोण और आठ मूर्ति अग्नि की अन्तर्दशार, अग्नि की १० कला है वहिर्दशार अग्नि की दश विभूतियां अथवा आठ मूर्ति अष्ट कोंण में दशकला अन्तर्दशार में और दशविभूति वहिर्दशार और चतुर्दशार में चौदह लोक इस प्रकार भी ४३ कला अग्नि की गणना है सोम, सूर्य, अग्निमय श्रीचक्र है। मेरु, कैलाश और भू ये तीन प्रस्तार हैं। प्रधानतया श्री चक्र के तीन प्रस्तार है।

"प्रस्तारोत्र त्रिधाप्रोक्तः श्रीचक्रस्य तथेश्वरी।
मेरु कैलाश भूसंज्ञा भेदातस्य त्रिधा भवेत्॥
मेरु प्रस्तारकं यन्त्रं नित्यतादात्मकं स्मृतम्।
मातृकायास्तु कैलाश प्रस्ताराख्यं सुरेश्वरी॥
भूप्रस्तारं महादेवि, वश्यान्त्यात्मकमुत्तमम्।
सृष्टी क्रमं मेरुचक्रम्, कैलासंचार्ध मेरुकम्॥
संहाराख्यं महेशानि भूप्रस्तारं स्थितिक्रमम्।

एकैकस्यतु चक्रस्य त्रिभेदास्तु भवन्तिहि ॥
सृष्ट्यादि भेदैर्देवेशि संहारंकौलिकंमतम् ।
सृष्टीक्रमंतु समये मतंस्यात् स्थितिसंज्ञकम् ॥
शुद्धन्तु कथितं देवि रहस्याति रहस्यकम् ।
मेरुचक्रे तु संहार क्रमपूजा न विद्यते ॥
सृष्टी क्रमेण देवेशि पूजनीयं प्रयत्नतः ।
संहार पूजा कैलासे प्रस्तारेऽत्र विधीयते ॥
भूप्रस्तारे महेशानि स्थिति पूजा सदोत्तमा ।
स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारौ बनिनोयतेः ॥
ततः कुंकुमसिन्दूरै कार्यं यन्त्रंतुयोगिना ।
सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके वैद्रुमे तथा ॥
चक्रे तथोक्त विधिना पूज्यां देविवरोत्तमैः ।
यावज्जीवं सुवर्णेस्यात् रौप्येद्वाविंशति प्रिये ॥
ताम्रे द्वादशकं वर्षं तदुर्ध्वं भूर्ज पत्रके ।
ताम्रे द्वादशकं वर्षं स्फाटिकादौतु सर्वदा ॥
तेषांमध्ये स्फाटिकं तु सर्वसिद्धिप्रदं भवेत् ।
विद्रुमे रचिते यन्त्रे पद्मरागेथवा प्रिये ॥

इन्द्रनीले च वैडुर्ये स्फटिके मरकतेपिवा ॥
धनं पुत्रं तथा दारा यशांसि लभते ध्रुवम् ।

श्रीयन्त्र मेरुपृष्ठ भूपृष्ठ और कैलास पृष्ठ भेद से तीन प्रकार का है। मेरुपृष्ठ के भी तीन भेद होते हैं। श्री चक्र स्थिति क्रम, सृष्टी क्रम, संहार क्रम भेद से तीन प्रकार का होता है। पूजा भी तीन प्रकार से है गृहस्थियों को सृष्टी क्रम से यन्त्र अ.र पूजन करना तथा स्थिति क्रम से भी और यति को संहारक्रम। मेरु में सृष्टिक्रम भूप्रस्तार में स्थितिक्रम कैलास में संहार क्रम होता है।

श्रीयन्त्र सुवर्ण चाँदी स्फटिक मूंगा पन्ना आदि में बनाया जाता है स्फटिक का यन्त्र सब सिद्धि दायी है।

"वृत्तोकृतेऽष्टमानेन सूत्रं पूर्वापरायतम् ।
विन्यस्य विभजेदष्ट चत्वारिंशद् विभागतः ॥
षष्ठे षष्ठे पञ्चमे च तृतीये च तृतीयके ।
चतुर्थे च तृतीये च षष्ठे षष्ठांशके पुनः ॥
विभज्य नव चिह्नानितेषु सूत्राणिपातयेत् ।

अथवा—

शनिमध्ये रवेरन्तो चन्द्रान्तः केतु मध्यम ॥

* * * *

श्रीचक्र वनाने का उद्धार। "विन्दु त्रिकोण वसुकोण" ऊपर बता आये हैं उसके बनाने का क्रम यह है।

वामेश्वर तन्त्रानुसार श्री यन्त्र बनाने की विधि इस प्रकार है:-

१ किसी साधारण लम्बाई को व्यास मानकर उस पर एक वृत्त खींचो। और व्यास की खड़ी रेखा को ४८ समान भागों में विभक्त करो।

२ ऊपर की ओर से (Top) प्रारम्भ कर भाग नं० ६ १२ १७ २० २३ २७ ३० ३६ ४२ के अङ्कों पर चिह्न कर दो।

३ ऊपर वाले चिह्नित अङ्कों पर त्रिज्या (Chord) रेखा खींचो और उनपर १ से ९ तक अङ्क लिख दो।

४ रेखा नं० १ २ ४ ५ ६ ८ और ९ को आधार मानकर रेखा नं० ६ ९ ८ ७ २ १ और ३ के मध्य बिन्दुओं को शीर्ष मानकर क्रमशः त्रिभुज बनाओ।

५ त्रिज्या न० १ का १/१६ भाग, २ का ५/४८ ४ का १/३, ५ का ३/८ ६ का १/३ ८ का १/१२, और ९ का १/१६ वां भाग दोनों ओर से मिटा दो।

६ रेखा न० ३, ७ को भी इसी प्रकार आधार मानकर खड़े व्यास के नीचे और ऊपर के शिरों से क्रमशः मिलाकर दो त्रिभुज बनाओ।

७ इस प्रकार से ४३ त्रिभुज बाहर की ओर निकले हुए बन गये। (२) जिसमें से एक बीच में, ८ उसके चारों

ओर, तदन्तर दस दस त्रिभुज के दो स्थान, उसके बाद १४ त्रिभुज चारों ओर होंगे ।

तत् पश्चात बृत्त के व्यास के ऊपरी बिन्दु से आरम्भ करके परिधी को आठ समान भागों में विभाजित किया। और प्रत्येक भागके ऊपर एक दल बनाया, इस तरह अष्टदल कमल बन गया। तब एक बृत्त आठों दलों के बाहरी बिन्दुओं को स्पर्श करता हुआ खींचो ।

इस प्रकार बने हुए दूसरे बृत्त को परिधि को १६ समान भागों में बिभाजित कर उनके ऊपर १६ दल बनाओ; तब एक वृत्त १६ दलों के बाहरी बिन्दुओं को स्पर्श करता हुआ खींचो और इस वृत्त के बाहर की ओर उसी केन्द्र से दो बृत्त समान समान दूरी पर खीच दो ।

सब से बाहर वाले वृत्त के चारों ओर तीन वर्ग बनाओ जो एक दूसरे से समानान्तर पर हों और सबसे अन्दर का वर्ग सबसे बाहर वाले बृत्त को स्पर्श न करे ।

३ चारों दिशाओं में बीचोबीच समानान्तर पर चार द्वार बनाओ। और इन द्वारों के बोच की रेखाओं को मिटा दो ।

इसी यंत्र को श्रीचक्र भी कहते हैं। विन्दु केन्द्र को वैन्दव स्थान कहते हैं ।

५ त्रिकोण जिनके शीर्ष नीचे की ओर हैं वह शक्ति के हैं और चार जो उर्ध्व मुखी है वे शिव के है ।

सृष्टी क्रम :—

भूगर्भग स्त्रिवृत षोड़श नाग शक्र दिग युग्म वस्व-नल कोणग विन्दु मध्ये, सिंहाशना परिग तारकपाठ मध्ये, प्रोत्फुल्ल पद्मनिलयां, त्रिपुरां भजेहं।

भू० चतुरस्र के बीच तीन बृत्त षोड़शदल, अष्टदल, चतुर्दश कोण वहिर्दशार अन्तर्दशार अष्ट कोण त्रिकोण विन्दु यह भगवति की तारक पीठ श्रीयन्त्र रूपी है।

सृष्टिचक्र

सामयिन के मतानुसार श्री चक्र को सृष्टी क्रममें बनाने का यह नियम है:-

(१) एक समद्विवाहू (Isosceles) त्रिभुज बनाओ, जिसका आधार कागज के नीचे की रेखा के समानान्तर हो, और जिसका शीर्ष उर्ध्वमुख हो, तत्पश्चात् आधार को दो सम भागों में विभक्त करती हुई और आधार के मध्य विन्दु को शीर्ष से मिलाती हुई एक कल्पित रेखा पर आधार के मध्य बिन्दु के तनिक ऊपर एक बिन्दु रखो, और इस विन्दु के थोड़ा ऊपर आधार के समानान्तर सीधो रेखा खींचो, जो त्रिभुज की दोनों भुजाओं को काटे, इस रेखा पर एक दूसरा सम द्विवाहु त्रिभुज जिसका शीर्ष ऊर्द्ध मुखहो बनाओ, तब पहले बने हुए त्रिभुज के शीर्षक से आधार के समानान्तर से सीधी रेखा खींचो और उस पर एक सम द्विवाहु त्रिभुज जिसका शीर्षक अधो मुखी हो

इस प्रकार बनाओ, कि इस त्रिभुज की भुजाएं उन बिन्दुओं से जहाँ दूसरे त्रिभुज का आधार पहले त्रिभुज से मिलता है होती हुई जाँय। ये दोनों बिन्दु जहाँ तीनसीधी रेखाएँ एक दूसरे को काटती है मर्मांश कहलाती है। और ये बिन्दु उन बिन्दुओं से (जहां दो सीधी रेखाऐँ मिलती और जो समधी कहलाती है) भिन्न हैं। इस प्रकार आठ त्रिभुज बने जिनके कोण बाहर की ओर है इसे अष्ट कोण चक्र कहते हैं।

अन्तर्दशार चक्रः—

अष्टकोण चक्र की सब से ऊपर और नीचे की रेखाओं को दोनों ओर बढ़ाकर दो समद्विबाहु त्रिभुज इस प्रकार बनाओ कि जिनमें से एक का शीर्ष नीचे की ओर और दूसरे का ऊपर की ओर हो, और पहले त्रिभुज की भुजाएँ उन दो त्रिभुजाओं को जिनके शीर्षक ऊपर को ओर हैं आधारों के शिरों से होकर जायें। और दूसरे त्रिभुज की भुजायें उस पहले त्रिभुज के जिसका शीर्षक नीचे की ओर है आधार के शिरों से होकर जाये। भीतरवाले त्रिभुज की, जिसका शीर्षक ऊपर की ओर है भुजाओं को नीचे की ओर बढ़ाने से और उस त्रिभुज के शीर्षक विन्दु से जो नीचे की ओर है आधार के समानान्तर एक सोधी रेखा खींचने से एक नया त्रिभुज बनेगा। इसी प्रकार उस त्रिभुज की जिसका शीर्ष नीचे की ओर है भुजाओं को ऊपर की ओर बढ़ाने से और एक सीधी रेखा आधार के समानान्तर इस प्रकार खींचने से कि वह पहले बनाये हुए बाहरी और ऊर्ध्व

मुखा शोषक वाले त्रिभुज के शीर्ष बिन्दु से जावे। इस प्रकार एक पृथक त्रिभुज बनेगा। इस तरह दस त्रिभुज कोणों पर बनेंगे जिनके कोण बाहर की ओर होंगे। इस प्रकार अन्तर-दशार चक्र बन गया।

वहिर्दशार:—

इसी प्रकार अष्टकोण चक्र में त्रिभुजाओं के आधारों को दोनों ओर बढ़ाओ और भुजाओं को कोण बिन्दुओं से होते हुए इस प्रकार बढ़ाओ कि समांश 'बने और फिर आधारों के समानान्तर सीधी रेखायें इस प्रकार खींचो कि वे ऊर्ध्व मुखी और अधोमुखी शीर्षक वाले त्रिभुजाओं के शीर्ष बिन्दुओं से होकर जाये। इस प्रकार दश कोण वाले त्रिभुज जिनके कोण बाहर की ओर होंगे बनेंगे। इसको वहिर्दशार कहते हैं।

श्री चक्र स्थित प्रस्तारों का वर्णन:—

श्रीचक्र तीनभागहै जिनमें से प्रत्येक में पृथक पृथक देवताओं का स्थान माना गया है, और प्रत्येक की पूजा का विधान भी भिन्न भिन्न है। इनके नाम मेरू, कैलास, और भूप्रस्तार है।

मेरू प्रस्तार:—

मेरू प्रस्तार के अनुसार षोडश नित्याओं को इस प्रकार बताया है। १६ नित्याएँ अर्थात् महा त्रिपुर सुन्दरी, कामेश्वरी, भगमालिनि, नित्यक्लिन्ना, भेरूण्डा, वह्निवासिनी, महाबिंध्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया,

सर्वमङ्गला, ज्वाला, मालिका और चित्कला उपरोक्त क्रम से चित्कला को अष्टयुग में से विभक्त किया गया है।

वर्णमाला के ५१ अक्षरों को इसी प्रकार ८ वर्गों में विभक्त किया गया है।

इन वर्गों को अ वर्ग, क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य वर्ग और स वर्ग कहते हैं।

इसी प्रकार युग्म देवियों और उसीं के अनुसार वर्ग के अक्षरों के स्थान अष्टदल पद्म के आठ दलों के ऊपर नियत किये गये हैं। और इसकी गणना पूर्व दिशा के दल आरम्भ करके दक्षिण दिशा की ओर की जाती है।

श्रीयन्त्रमें मेरुपृष्ठ तीन प्रकार से वर्णन किया गया है:—

(क) भूपुर, (भूगृह से) प्रारम्भ होकर सृष्टीचक्र बनता है। और द्वितीय त्रिकोण से अर्थात् तीन से स्थितिचक्र अन्तिम तीन से संहारचक्र, कहीं-कहीं नित्य-पूजा में भूप्रस्तार और मेरुप्रस्तार का ही वर्णन आया है। कैलाशप्रस्तार छोड़ दिया है। स्वर्ण यन्त्र बनाने का प्रमाण भी ६ तोले का और ४ अंगुल वर्गात्मक बताया है।

(ख) संहारचक्र स्वर्ण के पत्र पर पर्वताकार से एक दूसरे के ऊपर बनता है। भूपुर इसका पहला चरण है और अन्य दो कमल द्वितीय चरण है और दूसरे ६

चक्र एक दूसरे के ऊपर पर्वताकार में बनाये जाते हैं। यही तीसरा चरण है।

(ग) नौ चक्र (नौ त्रिकोण) इसी प्रकार एक दूसरे के ऊपर नौ खण्डों मे बनाये जाते हैं।

कैलाश प्रस्तार में ५१ मातृकाओं का वर्णन इस प्रकार आता है। १६ स्वर (सबवर्णों के जीवन) इनका सम्बन्ध १६ नित्याओं से है। ये सब विसर्ग (अः) में समावेश हो जाते हैं।

ये अकार से आरम्भ होकर एकार तक विसर्ग इसीमें अन्तर्हित होने से यह पञ्चदशाक्षरी विद्या हो जाती है, ये सब बैन्दव स्थान से निकलते हैं, क से मकार तक स्पर्श वर्ण इनसे तीन वीज (ऐं ह्रीं क्रौं इनको पाशांकुश वीज कहते हैं) मिलाने से अट्ठाईस हुऐ। ये अष्टकोण और द्विदशार (अन्तर्दशार बहिर्दशार) इन प्रत्येक कोण में एक-एक अक्षर हैं। अब पकार से रकार तक सात वर्णों को द्विगुणित करने से १४ चतुर्दशार के हुए, चार शिवचक्र इनमें आगये अर्थात् ५१ एकाबन मातृका इनमें ओतप्रोत है।

भूप्रस्तार में १६ नित्या एक-एक में दो-दो रहती है, यथा—वाशिनी कामेश्वरी, मोहिनी बिमला, अरुणाजयन्ति, सर्वेश्वरी कौलिनि, ये एक-एक युग्मक तीन भागों में माना है, जो बिन्दु और त्रिकोण को छोड़ कर तीनों प्रस्तारों में आते हैं। महात्रिपुर सुन्दरी श्रीचक्र के मध्यमें हैं, जिसमें ८ अ क च यदि-

वर्ग और वाशित्यादिनित्या और १२ योगिनी, यथा—(१) विद्यायोगिनी, (२) रेचिका योगिनी, (३) मोचिका योगिनी, (४) अमृत योगिना, (५) दीपिका योगिनी, (६) ज्ञान योगिनी, (७) आप्यायेनियो०, (८) व्यापनियो०, (९) मेधायो०, (१०) व्योमरूपा यो०, (११) सिद्धिरूपा यो०, (१२) लक्ष्मि योगिनी॥ ये सब मिला कर ४३ हैं जोकि श्रीचक्र के कोण होते हैं। श्रीचक्र के चार द्वारों में ४ देवियां हैं, यथा—गन्धाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी। इस प्रकार ये शक्तियां श्रीचक्र में रहती हैं। श्रीचक्रका विधिवत् पूजन तथा कुण्डलनी शक्तिको जागृत कर आरोह मार्ग से सहस्रार तक ले जाकर अमृत पान करना और पुनः अवरोह क्रम से मूलाधार कुलकुण्डा में ले जाना इस प्रकार साधक श्रीविद्या की उपाशना से सफलता प्राप्त करता है। श्री विद्या की उपाशना का महत्व तन्त्र में इस प्रकार है :—

श्रीगुरोः पादुका मूर्ध्नि श्रीचक्रम्हृदि देवता।
श्रीविद्या यस्य जिह्वाग्रे स साक्षात् परमः शिवः॥

जिस उपाशक के सहस्र दलमें पादुका का ध्यान पूजन हृदय में श्रीयन्त्रका पूजन जिह्वा में श्रीविद्या के मन्त्र का जप होता है। वह साधक परम शिव हो जाता है।

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं।
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः॥

यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा ।
तपोभिर्दुष्प्रापामपिगिरिशसायुज्यपदवीम् ।१२।

इसश्लोक में "सौः" शक्ति वीज निकलता है। सौन्दर्य से सौ इन्द्र से विसर्ग इसके जप से आत्म शक्ति का विकाश होता है।

टीका:—

हे हिमगिरिसुते ! तुम्हारे सौन्दर्यकी तुलना करने का ब्रह्मा आदि कविश्वर बड़ी कठिनाई से कल्पना कर सकते हैं. तपस्या से भी दुष्प्राप्य जो शिव की मूर्ति में मिल जाता है उस स्वरूप को दर्शन करने को बड़े उत्सुकता से देवांगना मन से आती हैं।

भाष्य:—

इस श्लोकमें भगवतीको "तुहिन गिरिकन्या" कहा है इस शुद्ध स्फटिक संकाश तेजोमय मूर्ति की तुलना अन्यत्र करने को आदि कवि ब्रह्मा की भी असामर्थ्य दिखाई है दिव्य सौन्दर्य के वर्णन के आधार पर ध्यान योग द्वारा एक मात्र दिव्य दर्शन का निर्देशन किया गया है, "यदालोका" इस पद से और मनसा से मनसे मननीय और ध्यान योग गम्य जो सौन्दर्य है उस दिव्य नित्य सौन्दर्य से तात्पर्य है "ते ध्यानयोगाधिगमेन देवं" उप० "मनसैवेदमाप्तव्यं" इस सौन्दर्य को ब्रह्मा भी अपने चारों मुखों से वर्णन करने में असमर्थ हैं, ब्रह्मा के निर्देश से यह व्यञ्जना है कि ब्रह्मा ने वेदों को प्रकट किया है वह मातेश्वरी

का तेजोमय स्वरूप शब्द गम्य नहीं है, यह तात्पर्य है भगवति के उस स्वरूप को उपलब्धि को आत्मसाक्षात्कार कहते हैं। ब्रह्मा आदि वर्णन करने में इसलिए असमर्थ हैं कि यह भगवति का वह सौन्दर्य ब्रह्मानन्दमय है जिसकी वेदोंने नेतिसे संकेत किया है कि वाणी से कहा नही जासकता है अमर ललना दैवि सम्पत्तिं की शक्तियों के विकाश होने :से आत्माभिमुखि मन बन्धुरात्मा-त्मना यस्य येनात्मेनात्मनो जितम् जो एकाग्र मन भगवति की उपासना से साधक का होता है उस मनसे ही यह सौन्दर्य अनुभूत होता है, यथा—अहं ब्रह्मास्मि।

ध्यान योगका माहात्म्य और भगवति के चमत्कार का वर्णन आता है। भगवति की उपाशना द्वारा मनुष्य में बल, स्फूर्ति, सौन्दर्य आदि गुण एक प्रकार दिव्य काया-कल्प हो जाता है। इस श्लोक में अमरललना और सायुज्य पदवी, ये दो पद आये हैं। इसका तात्पर्य यह है भगवति की उपासना स्थिति क्रम से स्वर्गादि भोग संहारक्रम से मोक्ष की प्राप्ति में है। भगवति के दर्शन की उत्सुक देवांगना जैसे भगवति के दर्शनार्थ आती हैं वैसे शिवस्वरूप उनका हो जाता है अर्थात् दैवि सम्पत्ति-युक्त मनुष्य भगवति को उपाशना से "शिवोहं" इस भाव को प्राप्त कर लेते हैं श्रोचक्र का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर जो श्री विद्या की उपाशना है उसका यह प्रभाव है कि तपस्या से दुष्प्राप्य जो गिरीश सायुज्य मोक्ष है उसे साधक प्राप्त करता है।

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं ।
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः ॥
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया ।
हटात् त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः ।१३।

टीकाः—

वृद्ध पुरुष जिनके नेत्र की ज्योती कम होगई है शरीर में बल नहीं रहा (इन्द्रिय स्तब्ध होगई है) तुम्हारी दृष्टी पड़ने से (वे युवा हो जाते हैं जिनके सौन्दर्य देखने को) युवती स्त्रीयाँ सिर खुला ही है वस्त्र नीचे गिर गया काञ्चिबंधन टूट गया (अति शीघ्र नाम) सैकड़ों युवती उसकी ओर भागती है।

इस श्लोकमें भगवति की दृष्टी पड़ने से जो चमत्कार होता है उसका वर्णन किया गया है बृद्ध पुरुष देखने में कुरूप नेत्र ज्योति जिसकी चल वसी और नपुंसक की तरह काम केली में जड़ होगया है। भगवति के प्रकाश पड़ने से वह पूर्ण युवा दर्शनीय आकर्षक हो जाता है जिसके स्वरूप देखने को युवति गण इतनी लालायित हो जाती है कि उन्हें अपने तन और वस्त्र भूषा का भी ध्यान नहीं रहता जहां की तहां से जैसो दशा में है वहां से ही भागकर उसके सौन्दर्य देखने जाती हैं भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति में यही दिव्य लावण्य आकर्षक सौन्दर्य होनेसे गोपांगना जिस दशा में थी वहां से वैसे ही अपने तंन मन

को भूलकर भगवान् कृष्ण के दर्शन को टूट पड़ी थीं भगवति की उपाशना से अनेक इस प्रकार के चमत्कार हुए हैं।

भगवतिके पाद पद्मसे जो रश्मीयां फैलती है उनका यह चमत्कार है। श्रीचक्र का उपाशक श्रीयन्त्रात्मा भगवती के शरीर से इन रश्मीयों को प्राप्त करता है, हटात् शब्दसे ह-सूर्य-ट चन्द्रमा सूर्य सोमात्मक भगवती के चरण तथा प्राणापान वायु के साघन से हठयोग द्वारा देहमें षट्चक्रात्मक जो श्रीचक्र है उसके आलोक प्रकाश से इस चमत्कार को प्राप्त कर सकता है। च्यवन ऋषि भगवती के प्रकाश से दिव्य देहवाला हुआ राज कन्या श्रीविद्या की उपाशना च्यवन के साथ करती थी।

अन्येरंश कला प्रोक्ताः कृष्णास्तु भगवान् स्वयं

भगवान् श्रीकृष्ण महाराज की अपूर्व शक्तियों का वर्णन श्रीमद्भागवत में आया है यह अवतार पूर्ण षोड़श कला सम्पन्न है, भगवान् श्रीकृष्ण को योगीश्वर कहा है, 'यत्रयोगीश्वरः कृष्णः" श्रीकृष्ण विग्रह योग विभूति मय थे, इस श्लोक में दिखाया है कि षोड़शी की उपाशना जो षट्चक्र भेदन द्वारा बताई गई है। उसके प्रकाश से सौन्दर्य कान्ति, लावण्य का सञ्चार शरीर में होने से देवांगनाओं का समूह वलात् उसकी ओर आकर्षित होता जाता है इस योग विभूति का पूर्ण प्रकाश भगवान् कृष्ण में होने से सम्पूर्ण गोपांगना वलात् कृष्ण की ओर आकर्षित होती थी, जिसका बड़ा हृदयंगम वर्णन भागवत में आया है, यह षोड़शी विद्या का प्रभाव ही षोड़श

कला समपन्नता का है, कृष्ण भगवति की संहार भूर्ति होने से मेघश्याम वर्णवाली हुई। दुर्गा स० "कृष्णाभूत् सापि कालिका" यह भगवान् कृष्ण योगीश्वर की लीला का रहस्य षोड़शी विद्या का रहस्य है।

निशम्यगीतं तदनङ्गवर्धनं
ब्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसा।
आजग्मुरन्योन्य मलक्षितोधयः
स्वयत्रकानां जललोलकुण्डला॥१॥

इस श्लोक से काम वीज बनता है कलश से क ल से ल वर्षी इकार नरं से अनुस्वार सबके योग से ओं बनता है।

क्षितौ षट्पञ्चाशद् विसमधिकपञ्चाशदुदके।
हुताशेद्वाषष्टीश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले॥
दिविद्विः षट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरितिये।
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्॥१४॥

टीका:—

हे भगवती! पृथ्वी के छप्पन मयूख जल के ५२ अग्नी को बासठ ६२ वायु की ५४ आकाश की ७२ मनकी ६४ (इनका योग तीन सो साठ) इन रश्मियों के ऊपर तुम्हारे चरण युग है।

भाष्य:—

पृथ्वी तत्व मूलाधार में २८ रश्मियाँ है यथा ५ भूत ५ तन्मात्रा ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ पञ्च कर्मेन्द्रिय अन्त करण चतुष्टय ४ काल प्रकृति पुरुष महतत्व ये २८ हुई इनको शिवशक्त्यात्मक योग (द्विगुणित करने से) छप्पन ५६ होते हैं, ये पार्थिव रश्मि हैं जलतत्व स्वाधिष्ठान (जिसे इहां मणिपुर कहा है) ५२ मयूख है जैसे ५ पञ्च भूत पञ्च तन्मात्रा ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ पञ्च कर्मेन्द्रिय अन्तः करण चतुष्टय प्रकृति पुरुष ये छब्वीस २६ हुए शिव-शक्ति योग से द्विगुणित ५२ हुये ये जलके मयूख हैं। अग्नि तत्व मणिपुर ६२ मयूख हैं जैसे ५ भूत पञ्च तन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रियः और दश इन्द्रियों के विषय तथा तथा मन ये मिलकर ३१ इकतीस होते हैं इनको द्विगुणित करने से ६२ अग्नी के मयूख हुये। वायुकी चौवन रश्मियां पञ्च भूत पञ्च तन्मात्रा पञ्च ज्ञानेद्रिय पञ्च कर्मेन्द्रिय अन्तः करण चतुष्टय प्रकृति पुरुष महतत्व ये शिव शक्ति भेद से द्विगुण करने से चौवन वायु की रश्मियां हुई। आकाश विशुद्धदल में ७२ रश्मियां हैं तथा शिवशक्ति सदाशिव ईश्वर शुद्ध विद्या माया कला राग नियति पुरुष प्रकृति अहंकार बुद्धि मन ज्ञान पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्च भूत पञ्च तन्मात्रा पञ्चकर्मेन्द्रिय ये छत्तीस हुए शिव शक्ति योग से ये ७२ होते हैं। मनोमय तत्व संपन्न आज्ञाचक्र में मानस ६४ रश्मियां है तथा परा पश्यन्ति मध्यमा वैश्वरी ४ चेष्टा २ ज्ञान ७ क्रिया ७ कुण्डलंनी ४ मातृकाकी ८ ये शिवशक्तिके योग से ६४ हुई

दूसरे श्लोकमें—"तनीयांसंपांसु" में भगवती के चरणों से ही उत्पन्न हुए जिन सूक्ष्म परमाणुओं से संसार की उत्पत्ति स्थिति संहारात्मक शक्तियों का निर्देश किया है पार्थिक आप्य वायव्य आग्नेय नभ से तथा मानसिक (स्फुरणात्मक) सूक्ष्म अणुओं का वर्णन है। भगवती के चरण उनके ऊपर है। इतने प्रकार के भौतिक दृष्टि से इनको परमाणु दैविक दृष्टी से दिव्य शक्तियां मन्त्रात्मक वाद दृष्टी से इतने प्रकार के वर्णों का विकाश है, यही सृष्टीस्थिति संहार कर सकती है। इसश्लोक में देवि के चरणो की महिमा का वर्णन किया गया है, जो आज्ञा चक्र द्विदल में प्रतिष्ठित है, इन मयूखों का तात्पर्य चार प्रकारसे प्रकट किया जा सकता है।

१ ये किरण या कलायें अग्नि, सूर्य, सोम, से प्रवाहित होती हैं रश्मि रुद्र, विष्णु और ब्रह्म जो ग्रन्थियों में विद्यमान हैं ये किरण या कलाएं ३६० होती हैं।

२ इनसे चन्द्रमा का कलात्मक वर्ष होता है। जो तीन सौ साठ तिथीयों का सामुहिक भाग है। एक तिथी चन्द्रमा की एक कला से बनती है और ऐसे तीन सौ साठ तिथियों से ६ ऋतु षट् चक्र रूपात्मक बनती है, इन षट् चक्रों के ऊपर भगवति के चरण नाद और विन्दू रूप में है।

३ मयूखों का तात्पर्य तत्वों से भी है जो पार्थिव आदि भेद से प्रत्येक चक्र में पृथक २ है। और ये तत्व शिव शक्ति भेदसे पृथक २ होते हैं परन्तु देवि के चरण कमल सवसे ऊपर सुधासिन्धु रूप सहास्रार में तत्वातीत है।

४ मयूखों से मातृकाओं का भो बोध होता है जैसे क्ष, को छोड़कर पचास अक्षर और पृथ्वी वीज ऐं, ह्रीं, श्रीं, ऐं क्लीं, सौः, अथवा ऊपर के पचास अक्षर (जलके बीज) सौं, श्रों, हैं।

पचास अक्षर पहलेवाले १४ वां अक्षर चार बार और अग्नितत्व के वीज तथा—'हंसः सोहं' चार बार पचास अक्षर और वायुवीज यं रं लं वं पहले स्वर चौदह पांच बार और आकाशवीज ऐं ह्रों १६ स्वर चार बार मनके ३६० अक्षरों के साथ 'हंसः सोहं' लगा कर चक्रन्यास किया जाता है। प्रत्येक त्रिकोण के अधिष्ठातृ देवता पृथक्-पृथक् हैं। ३६।४१ श्लोकों में इसका स्पष्टीकरण है, उत्तर तन्त्र शक्ति के और शांभाव तन्त्र शिव के कहे जाते हैं। सृष्टी की रचना में शिवशक्ति के योग से एक प्रकाश होता है जिसे परा कहते हैं। ब्रह्म रन्ध्र से आज्ञा-चक्र तक यह प्रकाश रहता है। इसको मज्जा का स्वामी माना है। इसीसे इच्छा, ज्ञान, क्रिया, कुण्डलनी, मातृका प्रकट होकर विशुद्ध आदि चक्रों में प्रकट होती हैं। इसीसे त्वक् अस्थि आदि भौतिक तत्व सारे बनते जाते हैं।

पहले खण्ड में मूलाधार मणिपुर की १०८ मयूख है। दूसरे स्वाधिष्ठानमें सूर्य को ११६, तीसरे विशुद्ध आज्ञा में सोमको १३६ कला है, इनका योग ३६० है।

जो चन्द्र आज्ञाचक्र में कहा गया है वह सहस्रारस्थ चन्द्र का ही प्रतिबिम्ब है: और तिथी रूप में घटता बढ़ता रहता है।

ये किरणे इस तरह पर (अक्षया) हैं। जैसे—पञ्चभूत पञ्च-तन्मात्रा दश इन्द्रियां चार अन्तःकरण काल प्रकृति पुरुष महतत्व २८ द्विगुणित ५६ इत्यादि है। भैरवयामल में इनका नाम भेद से व्यक्त किया है। श्रीविद्या और चन्द्रकला कहते हैं। श्रीविद्या मोक्षदात्री है चन्द्रकला भोगप्रदा है। ब्रह्मग्रन्थी विष्णुग्रन्थि रूद्र-ग्रन्थी सूर्य सोम अग्नि की कलाएँ क्रमशः इन स्थानों से प्रवाहित होती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन अग्नि सौम सौर कलाओं के सम्मि-श्रण विश्लेषण से बनता है, यद्यपि ये ३६० बताई हैं परन्तु ये असंख्य कलाए हैं सारे सौर जगत की प्रसव भूमि रूपा ये कलाए हैं इनका विशदी करण ३६ तथा ४१ श्लोक में आया है आज्ञा चक्र चतुष्षष्टी मयूखात्मक यहां से परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वेखरी, इन नामो से संकेत की गई शव्दमय सृष्टीका विकाश होता है ज्ञान शक्ति का उदय भी यहां ही से है, ज्ञान दो प्रकार—(१) निरालम्व (२) सालम्व तीन प्रकार का—ज्ञातृ ज्ञेय ज्ञप्तृ इसी प्रकार निरालम्व भी चार भेद—तुम, तुम्हारा, मैं, मेरा क्रिया सात प्रकार की होती है—ईष्ट, पूत, स्वाध्याय, यज्ञ, पूजा, तप, दान कुण्डलनी शक्ति पृथक २ भेद में चार नाम से कही जाती है—अन्वालय, प्रत्यावृत्ति, विश्रान्ति, मातृका अ, क, च, ट आदि वर्गाष्ट।

यथा कुब्जिकातन्त्रः—

आदौपरा चतुर्धास्यात् द्वितीयोचापि पञ्चधा।
तृतीये वेदनाज्ञाना चतुर्थे सप्तधा क्रिया॥

पञ्चमी कुण्डलीद्विर्द्धि षष्ठेस्यान्मातृकाष्टधा ।
परतो जायते हंसा सा च व्योमपतिस्मृता ॥
षट्त्रिंशत्स्थापकाप्रोक्ता कण्ठस्थान समाश्रिताः ।
इच्छज्ञजायतेज्ञानात् साचवायोरधीश्वरी ॥
सप्तविंशति रश्मीनां पतिसानाहताश्रया ।
ज्ञानात्भूतक्रियाव्यक्ताः साच वह्नीश्वरीस्मृता ॥
एकत्रिंशन्रश्मिपति स्वधिष्ठानं समाश्रिताः ।
क्रियात्कुण्डलनीव्यक्तासाम्यात्सलिलनायिका ॥
सप्तविंशति रश्मीनां मणिपूर समाश्रिताः ।
कुण्डल्यामातृकाजाताः सा क्षितीश्वरीभाविता ॥
अष्टाविंशति रश्मीनामधीपाद्धार माश्रिताः ।
शिवशक्ति विभागेन द्विविधा शाम्भवीक्रिया ॥
षष्ट्युत्तरंच त्रिंशन्मेवं शम्भोः मरीचयः ।
परादिशक्तिभिषड्भिः नायिकै सहितापुरा ॥
द्विसङ्ख्याधिकंत्रीणी शतान्याहुर्मनीषिणः ।
येषान्स्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो महींचरेत् ॥

उक्त श्लोकों में पार्थिवादि रश्मियों के शिवशक्त्यादि भेद से किये हैं। नाम वर्णनानुसार गुण भी है।

श्रीविद्यार्णव तन्त्रे रश्मिनां भेदाः :—

मन्त्रोद्धारं स्वयं कुर्यान्मातृका रश्मिबोधनात्।
प्रथमं मातृकारश्मि क्रमज्ञेयः सदाबुधैः॥
रश्मिक्रममविज्ञाय मन्त्रोद्धारं करोतियः।
अन्धकारेस्थितं वस्तुं द्रष्टुमन्वेषयत्ययम्॥
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन गुरूतः शास्त्रतोऽपिवा।
सम्यग् ज्ञात्वाविधानेन साधकोगत संशयः॥
मन्त्रस्वरूपं जानीयान्मन्त्रवीर्यस्य सिद्धये।
अनायासेन सिद्धिःस्यान्मन्त्रवीर्य प्रबोधनात्॥
मन्त्रवीर्यमविज्ञाय योमन्त्रं भजते नरः।
कल्पकोटिसहस्रैस्तु मन्त्रसिद्धिर्नजायते॥
वर्णानां रश्मयोज्ञेयाः श्वासरूपा न संशयः।
तेश्वासाः पूर्णरूपाःस्युः षट्शताधिकतोऽपिच॥
गुण सप्त सहस्राणि ह्यपूर्णाद्विगुणाकृताः।
तेश्वासाः द्विविधाःप्रोक्ता वाह्याभ्यन्तरयोगतः॥

सूर्यचन्द्र विभेदेन क्रूरसौम्य प्रभेदतः ।
पिङ्गलेडाविभेदेन येश्वासाश्वाधरूपिणः ॥
मूलाधारे नाभिपद्मे स्वाधिष्ठानेऽप्यनाहते ।
विशुद्धौतुभ्रुवोर्मध्ये षट्चक्रेषु व्यवस्थिताः ॥
प्रतिचक्रं त्रिसाहस्रं षट्शताधिकमेव च ।
मूलाधारं क्षितेःस्थानं स्वाधिष्ठानंतु तेजसः ॥
मणिपूरमपां स्थानंवायोः स्थानमनाहतम् ।
विशुद्धं नभसः स्थानमाज्ञाचक्रं तु मानसम् ॥
मूलाधारे महापद्मं चतुर्दलसमन्वितम् ।
वादि सान्तचतुर्वर्णैर्दलमध्येषु संयुतम् ॥
एकस्यैकस्य वर्णस्यरश्मीनां नवशत्यपि ।
पार्थिवा रश्मयस्तेषु चतुर्दश चतुर्दश ॥
प्रत्यक्षरं तु विज्ञेया वादिसान्ते यथाक्रमम् ।
मणिपूरे दशदले डादिफान्त समन्विते ॥
तत्राप्यारश्मयो ज्ञेयाद्विपञ्चाशद्विभागशः ।
स्वाधिष्ठाने रसदले बादिलान्ताक्षरान्विते ॥

द्वाषष्टी रश्मयो ज्ञेयास्तैजसाश्चात्रभागसः ।
अनाहते रविदले कादिठान्ताक्षरान्विते ॥
वायव्यारश्मयो ज्ञेयाश्चतुष्पञ्चाशदत्र वै ।
विशुद्धे षोडशदले षोडश स्वर संयुते ॥
नाभसारश्मयो ज्ञेया द्विसप्ततिर्विभागशः ।
आज्ञाचक्रं तु द्विदले हक्षाभ्यां संयुतेपरे ॥
मानसा रश्मयो ज्ञेयाश्चतुःषष्टिर्यथाक्रमम् ।
षडाधारेषुसंभूयत्रिशतं षष्टि रश्मयः ॥
एकस्यैकस्य वर्णास्य रश्मयो ये समाश्रिताः ।
तेषु रश्मिषु संप्रोक्ताः षड्विधाः पार्थिवादयः ॥

शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमकुटां ।
वरत्रासत्राणस्फटिकघुटिकापुस्तककराम् ॥
सकृन्न त्वां नत्वा कथमिव सतां संनिदधते ।
मधुक्षीरद्राक्षा मधुरिमधुरीणा भणितयः ॥१५॥

टीका:—

सरद कालीन चन्द्र रश्मीयों की तरह शुभ्र (चमकीले) चन्द्रमा युक्त जटाजूट मकुटा वर, अभय, स्फटिक माला पुस्तक

क्रमशः चार हाथों में धारण की हुई (इस विग्रह को) तुम्हारी मूर्ति को जिसने एकबार प्रणाम कर लिया उसकी वाणी में इतना मधुर रस आ जाता है जो सहद द्राक्षा दुग्ध में भी कदाचिद ही आ सकता है, अर्थात् इसके उपाशक के मधुर युक्तियों की तुलना सहद द्राक्षा आदि से भी कदाचिद ही हो सके।

भाष्य:—

वक्षमाण तीन श्लोकों में वागवादिनी विद्या का वर्णन सात्विक, राजसिक, तामसिक, प्रकार से आया है इन श्लोंको से भगवती के मन्त्रमय विग्रह का भी ज्ञान होता है "कुटत्रय कलेवरां" यह ललिता के वर्णन में आया है तथा "श्रीमद्वांग् भवकूटैक स्वरूप मुखपङ्कजा। कण्ठाधः कटि पर्यन्त मध्य कूट स्वरूपिणी। शक्ति कूटैकतापन्न कटयाधों भाग धारिणी।" मन्त्रमय विग्रह (शरीर) इस प्रकार है मुख वाग भव कूट, कण्टसे कटि पर्यन्त मध्य कूट, कटी से नीचे शक्ति कूट, नील तन्त्र में वागवादिनी नील सरस्वती की उपाशना में आया है। उस साधक की कवित्व शक्ति अपूर्व होजाती है काव्य धारा प्रवाह उसके मुखसे होती है। यहां इस श्लोकमें मधुरी मधुरीणा भणतयः पदसे वाणि में मधुर्य रस उसके भाषण में आकर्षकता जिस प्रस्ताव पर बात करे वह शब्दावली हृदय ग्राहीणी और चित्त में स्थान लेनेवाली हो "यथा किं कवे तेनकाव्येन किंकाण्डेन धनुष्मता परस्य हृदये लग्न नघूर्णयति यच्छिर:" कविता वही है जिसे सुनकर रसिक का शिर हिलने लग जाय। इस प्रकार की सरस गद्य, पद्य, मयी

भाषण शक्ति का विकाश साधक को भगवति की सत्व प्रधाना मूर्ति की उपाशना का फल है। पञ्चदशी विद्या के वाग भव कूट से जिह्वा की अधिष्टात्री क्रिया शक्ति रूपा वागवादिनी भगवती का ध्यानगम्य वर्णन इस श्लोक में आया है। शरद् ऋतु की चन्द्र किरणोंकी तरह चमकीले जटा जूट मुकुट में चन्द्रमा को धारण किए हुई चार हाथों में क्रम से वर अभय, स्फटिक माला और पुस्तक धारण की हुई भगवति की मूर्ति का ध्यान करने वाले उपावक की वाणी में इतना माधुर्य्य रस सञ्चार हो जाता है, जिस मधुरिमाकी तुलना द्राक्षा, मधु आदि से भी नहीं दीजा सकती है। यहां पर सात्विक ध्यानगम्य मधुर वाणी को कहने से प्रकट होता है, जिह्वा इन्द्रिय जल तत्व के सत्वांश से बनती है, रस ज्ञान की योग्यता जिह्वा में है अतः जिह्वाकी अधिष्ठात्री वागवादिनी क्रिया शक्तिरूपा भगवती सत्व प्रधाना का वर्णन पहले आया है। सकृन्नत्वा पद से जब पाप नष्ट हो जावै तभी माता के चरणों में झुकने की इच्छा होती है—जैसे श्लोक १ के भाष्य में आया है। "मधुरिणा भणतय" इस पद से देवता को प्रसन्न करने के लिये मधुर स्वर से स्तवन करना भी समझा जाता है स्तुती को जितना ही मधुर स्वर से करे वाणीके माधुर्य्यसे केवल संसार ही नहीं, अपितु दैविजगत भी अपने वश में आजाती है। मधुर भाषण साहित्य की बड़ी निधी है भारतवर्ष में अभीतक भी जिन घरानों में उच्चसंस्कृति बनी हुई है वे अष्टगन्ध में मधु मिलाकर नवजात शिशु के जिह्वा पर वागभव बीज लिखते हैं। जिससे उसकी बाणी में मधुरता

रहे कठोरता न आजाय। उच्चकोटी के घरौं में बालक को मधुरता से वार्ता कराने का अभ्यास कराना उच्चकोटी का विनयन है, कहा भी है "विनयं राजपुत्रेभ्य पण्डितेभ्यः सुभाषितम्" विनय और सुभाषित उच्च वंश की ख्याति हैं। कठोर भाषण हृदय को उद्वेग करनेवाली भाषा का व्यवहार निन्दित और पाप रूप है हृदय को उद्वेग करनेवाली कठोर वाणी को राक्षसी भाषा तथा अपशब्दमयी वाणी कहते हैं कठोर बाणी की चोट से जो मन पर प्रहार पड़ जाता है उस प्रहार के क्षत की पूर्ति कठिन हो जाती है कहा भी है "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् वाणी सत्य और प्रिय कहनी चाहिए। यह रसमयी सुन्दर बाणी का व्यवहार भगवती की उत्तम प्रकार की उपाशना की सिद्धि है।

तन्त्र में कहा हैः—

वाक्सिद्धि द्विविधा प्रोक्ता शापानुग्रहकारिणी।
महाकवित्व रूपा च भक्तस्तेन द्वयात्मक ॥

भगवति की उपाशना से बाणी में दो प्रकार की सिद्धियां आजाती है शाप और अनुग्रह करनेको तथा महाकवि वनने की सिद्धि आजाती है। दुर्वासाको शाप की सिद्धि शिवको वरदेने की सिद्धि श्रीविद्या की उपाशना से प्राप्त हुई। कालीदास मुरारि आदि को कविता सिद्धि इसी षोड़शाक्षरी कालिका से मिली।

कवीन्द्राणां चेतः कमल वनबाला तपरुचिं ।
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणा मेव भवतीम् ॥
विरिञ्चि प्रेयस्या स्तरुणतर शृङ्गारलहरी ।
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी ।१६।

टीका:—

कवीश्वरों के चित कमल रूपी बन में प्रभातकालीन सूर्य की कान्ति मय अरुण के स्वरूप में जो साधक तुम्हारो उपासना करते हैं उनके मुख से सज्जनों को रञ्जन करने वाली अभिनव शृङ्गार रस की लहरें (कविता) निकलती जाती हैं।

भाष्य:—

इसश्लोक में—इच्छ्रा शक्ति रजो गुण वाग भव कूट स्वरूपा भगवति का अरुणा के स्वरूप में ध्यान दिखाया है। यथा— "तरुणेन्दु भालनयना मरुणा करुणा रसेन परिपूर्णा वन्दे समन्द हसिता, मीषध्द्वासां, वराभयं दधतिं।" वाणीशक्ति का अधिष्टातृ दैवता ब्रह्मा के द्वारा वाणी का प्रवाह, बेदादि शब्द जगत का प्रादुर्भाव होने से "विरञ्चि प्रेयस्या" शब्द आया है। चेतः कमल बन से यह सिद्ध होरहा है इस स्वरूप का भजन साधक अनाहत चक्र में कर वहाँ पर वाणलिङ्ग के दर्शन सूसूम्णा के प्रभातकालीन प्रकाश का अनुभव करने से, कवित्व शक्ति को प्राप्त करे। भगवती अरुणा की उपाशनासे शृङ्गारस प्रधान कविता को अपूर्व शक्ति साधकमें आ जाती है। यद्यपि कविता

वीर करुणा वीभत्स हास्य शृङ्गार शान्त आदि सब रसों में होती है। परन्तु कविता में शृंगार रस को ही प्रधानता है महा-कवि कालीदास और भवभूती मुरारि आदि कविश्वरों ने अरुणा के स्वरूप में महाकाली की उपाशना से कविता का चमत्कार प्राप्त किया है।

मुरारि कवितके लिए कहा है "देविं वाच मुपासते हि वहव सारन्तु सारस्वतं जानिते नितरामसौ गुरु कुलक्लिष्टो मुरारिः कवि अब्धिलंघित एव-वानर भटै किन्त्वस्य गम्भीरता मापाताल निमग्न पीवर तनु जानाति मन्थाचल"॥ भगबती वाणीकी उपाशना बहुत उपशकों ने की है परन्तु सरस्वती के प्रसादरूपी सरस कविता के सार को मुरारि कवि ही जानता है। यतः मुरारि कवि ने विधिवत् गुरु के पास बैट कर गुरु भक्ति द्वारा विद्या को सिद्ध किया है।

इस श्लोक में भगवती इच्छा शक्ति रुपिणी के वागभव कूट का जो साधक हृदय कमल में सरस्वती को अरुणा के स्वरुप में सिद्ध करते हैं, उनमें यह विचित्र काव्य शक्ति का विकाश होता है।

कालिदास को भगवति के प्रसाद से कवित्व शक्ति शृंगार रस प्रधाना प्राप्त हुई थी प्रायः कालिदास के काव्यों में शृंगार रस की प्रधानता है। इस प्रकार रस भरी कविता शक्ति भगवति के प्रसाद बिना नहीं होती है। मेघदूत, कुमार सम्भवादि काव्य कालिदास के दिव्य शक्ति के चमत्कार हैं "तरुण तर

शृंगार लहरी" अर्थात नवीन शृंगार रस की सूक्तियों का प्रवाह उसकी वाणि से निरन्तर होता रहता है कालिदास को अलौकिक शृंगार रस कविता को देख संसार में कविमण्डल चकित हो जाता था। एक समय राजा भोज ने पण्डितों से कहा कि कालिदास सब समस्याओं की पूर्ती शृंगार रस में कर देते हैं, कविमण्डल मिलकर कोई ऐसी समस्या निकालें जिसमें शृंगार रस नआसके। दूसरे दिन राज सभा में कालिदास के आने पर यह समस्या रखी "अणो रणीयान् महतो महीयान्" भगवान् छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है। कालिदास को कहा इसकी पूर्ती करो, कालिदास ने तत्काल इस प्रकार पूर्ती की 'यज्ञो पवीतं परमं पवित्रं हस्तेगृहीत्वा शपथं करोमि योगे वियोगे दिवसं प्रियाया अणोरणीयान् महतो महीयान्" अर्थात् परम पवित्र यज्ञो पवीत को मैं हाथ पर रख कर शपथ करताहूं अपनी प्रिया के मिलनेपर बड़ासे बड़ा समय मुझे स्वल्प प्रतीत होता है प्रेयसी के दूर रहने के वियोग में छोटा समय भी बड़ा लगता हैं।

पूर्व कालकी शिक्षाशैली यह थी जिस विद्याको पढ़ना होता था पहले उस विद्या का जो देवता है विद्यार्थी उसकी उपाशना से उस देवता की सिद्धि द्वारा उस विद्या का चमत्कार प्राप्त करता था जैसे पाणिनीय ने शंकर की उपाशना से व्याकरण शास्त्र, कालिदास आदि ने अरुणा की उपाशना से, धन्वन्तरी ने अश्विनी कुमार की सिद्धि से नारद ने वागवादिनी कि सिद्धि से इत्यादि अर्थात् केवल पुस्तक मात्र के पढ़ने से विद्या का चमत्कार

नहीं मिल सकता है जबतक उस रूप में भगवति की उपाशना न करो।

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणि शिला भङ्ग रुचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयतियः ॥
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गिसुभगै-
र्वचोभि र्वाग् देवीवदन कमला मोद मधुरैः ॥१७॥

इस श्लोक में भगवती ज्ञान शक्ति और शक्ति कूट का आराधन सर्वरोगहर चक्र में वंशिनी आदि शक्ति और बारह योगनियो का ध्यान भूपृष्ट यंत्र पर साधक करते हैं।

टी०:—

हे जननी! (मातृका रूप धारिणी) मातृका स्वरूप चन्द्र कान्त मणि के कणों के समान चमकते हुए स्वरूपवाली वशिन्यादि शक्तियों के साथ जो तुमको चिन्तन करता है वह (पुरुष) महान काव्यों की रचना करने की शक्ति उत्पन्न करता है ऐसे काव्य जिनमें अनेक प्रकार की शब्द रचना वैदग्ध विशेषता हो सरस्वतो के मुख कमल की सुगन्धि से माधूर्य रस जिसमें है। (ऐसी रचना वह करता हैं)

भाष्य:--

इस श्लोक में रजोगुण सम्पन्ना मूर्ति अरुणा का ध्यान हैं। वागभव कूट का ध्यान इसमें है भगवति इच्छा शक्ति के रूप

में हैं और काम राज कूट भी है इसमें भगवति का ध्यान वशि-न्यादि शक्तियों के साथ है अर्थात् वशिनी कामेश्वरी मोदनी विमला अरुणा जयनी सर्वेश्वरी कौलिनी ये, शक्तियां श्रीचक्र के सर्व रोग हर चक्र में होती है जिनका श्रीचक्र के साथ सम्बन्ध है (श्लाक ११ में जो बताया है।) तथा जिनका सम्बन्ध या जो आठ वर्गों की अधिष्ठात्री देवता से हैं, आठ वर्ग अ, क, च, ट, त, प, य, ओर स वर्ग ये श्रोचक्र के भूप्रस्तार में हैं, और बारह योगिनी और ४ द्वारपाल भो भूगर्भ में होते हैं। वर्ण १६ स्वरों का स्वैत या शुभ्र रंग है तथा क से म तक स्पर्श बर्ण जिनको कहा है इनका रंग विद्रुम की तरह लाल है म से आगे के ६ अक्षरों का रंग पीत (पीला) है क्ष का धुम्र वर्ण. है ड से फ तक श्वेत वर्ण कोई कहते हैं और ल व रक्त वर्ण, ह क्ष विद्युत वर्ण इसलिए अक्षरों को वर्णमाला अर्थात् रंगों को पंक्ति कहते हैं शक्ति वीज सौः अनेक भिन्न २ रंगों की पंक्तिका है।

तनुच्छाया भिस्ते तरुणतरणि श्रीधरणिभि-
र्दिवं सर्वामुर्वो मरुणि मनिमग्नां स्मरति यः ॥
भवन्त्यस्य त्रस्य द्वनहरिणशालीन नयनाः ।
सहोर्वश्यावश्याःकतिकतिनगीर्वाणगणिकाः ।१८।

इस श्लोक में काम राज कूट भी निकलता है कपि से क' सालिन से लकार इकार और दिवं से अनुस्वार क्लीं—उपासक मूलाधार पृथ्वी तत्व से और दिवं (आकाश) विशुद्ध चक्र तक

ध्यानावस्था में प्रात.कालीन सूर्य का प्रकाश जब देखने लगता है तब उसमें स्वत: आ जाती है।

टीका—

प्रात.कालीन बालसूर्य के प्रकाश की लहरों के समान अरुणिमा से नभ और स्थल की लालिमा से आच्छादन करने वाले तुम्हारी मूर्ति को जो स्मरण करते हैं। घबराहट से चञ्चल नेत्र कान्तिवाले वन की हरिणों की दृष्टी के समान चञ्चल दृष्टी वाली कितने ही स्वर्गीय अंगना उर्वशी सहित उसके वशीभूत हो जाती है।

भाष्य—

इस श्लोक में भगवती कामाकर्षिणी शक्ति का वर्णन कामराजकूट इच्छाशक्ति में दिखाया है। भगवती कामाकर्षिणी अरुणा जिस मूर्ति का प्रकाश प्रातःकालीन सूर्य की अरुणिमा के सदृश सारी पृथ्वी और आकाश में लालिमा छा दी है। इस प्रकार तुम्हारी अरुणा मूर्ती की जो कामराज कूट इच्छाशक्ति रूपा की उपाशना करता है यथा "तरुणेन्दुभाल नयना मरुणां-करुणा रसेन परिपूर्णो वन्दे समन्द हसिता मीषद्धास्यां वरा-भयं दधतिम्।" उसमें कामाकर्षिणिशक्ति का विकाश इस प्रकार हो जाता है जैसे चुम्बक लोहे को आकर्षण करता है इस प्रकार उर्वशी सहित सर्व सौन्दर्यमयी कौन देवांगना है जो उसके वशीभूत न होती है। तब मानव ललनाओं का तो कहना ही क्या है। बन हरिण प्रायः मनुष्य जातिसे भयभीत

हो जाते हैं। इस शब्द से उपाशक का औरों पर प्रभावित हो जाना सूचित करता है तथा गीर्वाण गणिका गीर्वाण शब्द यद्यपि स्वर्गीय देवताओं का वाचक है परन्तु प्रायः इसका प्रयोग भाषा के साथ होता है यथा गीर्वाण भाषा अर्थात संस्कृत वेद भाषा इससे यह भाव भी निकलता है कामराज कूट की सिद्धि से अनेक भाषाओं पर उसका आधिपत्य अर्थात उन २ भाषाओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जैसे दैवि भाषा जिसमें वेद है, गान्धर्व भाषा, जिसमें कामशास्त्र और संगीत विद्या थी। राक्षस भाषा, रावण ने जिसे लिखा था, पैशाच भाषा, जिसमें जादू थे, प्रेत भाषा तथा काक भाषा, पशु भाषा, मनुष्य भाषा, सरिसृप भाषा, बृक्ष भाषा, जिनमें पृथक प्रकार के विषय थे। जिनका कुछ वर्णन कथा सरित् सागर में भी है, एक-एक विषय की पृथक २ भाषा थी।

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथ कलाम्॥
स सद्यः संक्षोभं नयति बनिता इत्यतिलघु।
त्रिलोकी मप्याशु भ्रमयति रवीन्दु स्तनयुगाम्।१६।

टीका :—हे हर महिषी !

बिन्दुस्थान मुख और आज्ञाचक्र में दो बिन्दु स्तनरूप (यह आदित्रिकोण बना) इसमें हरार्द्ध अधोमुख त्रिकोण (जो श्रीचक्रमें है) उसमें जो तुम्हारे कामवीज का ध्यान करता

है उससे स्त्रियों पर आकर्षण की शक्ति होनी एक छोटी सी बात है। वह सूर्य चन्द्रमारूपी स्तन युगोंवाली तुम्हारी विराट मूर्ति में (कामबीज केप्रभाव से) त्रैलोक्य को भी सञ्चालन कर सकता है।

भाष्यः—

इस श्लोक में भी कामकला का ध्यान है। एक बिन्दु को ईं इकार का ऊपरी भाग मुख मान कर उसके नीचे दो कुच भाग, दो बिन्दु, इसके नीचे हरार्द्ध (अधमुखी त्रिकोण) ये जो कामकूट का ध्यान करता है उस साधक में आकषण करने की महान शक्ति हो जाती है। मनुष्यों पर आकर्षण का प्रभाव डालना तो एक छोटी-सी बात है, वह त्रैलोक्य पर अपने प्रभाव को डाल सकता है। त्रिबिन्दु से कामकला का स्वरूप बनता है। सहस्रार में प्रथम बिन्दु, आज्ञा में दो बिन्दु, सूर्य, सोम रूपके उसमें हरार्द्ध अधोमुख त्रिकोण आज्ञाचक्र में ध्यान करे। भगवती की विराट् मूर्ति—आकाश आदि बिन्दु सूर्य, चन्द्रमा, दो बिन्दु इसके मध्य में हरार्द्ध शिवका वह अङ्ग जो आदि-शक्ति है। यह विराट् ध्यान हुआ। चतुःशतिमें कहा है—

बिन्दुसंकल्प वक्त्रंतु तदधोस्यात् कुचद्वयम् ।
तदधः स परार्धन्तु चिन्तयेत्तदधोमुखम् ॥
तद्बिन्दौ वक्त्रमारोप्य तदधोबाहु युगम्मकम् ।
तदधः कुच युग्मन्तु तदधोयोनि मेव च ॥

हरार्धं शिवयुति चक्र जो श्रीयन्त्र में दिखाया है उसमें भगवती की मूर्ति का ऊपर लिखे अनुसार ध्यान करे। बिन्दुस्थान को मुख उसके नीचे दो कोणों को दो स्तन उसके नीचे परार्ध में नीचे के बिन्दु में मुख, उसके नीचे दो भुजा, भुजा के नीचे दो स्तन,, उसके नीचे के त्रिकोण को योनि। इस प्रकार भगवती की मूर्ती श्रीचक्र में देखे।

रुद्रयामल में इस प्रकार आया है :—

नभो महाबिन्दुमुखी सूर्यचन्द्रस्तनद्वया।
सुमेरुहार्धं कलया शोभमाना महीयदा॥
पातालतल विन्यास त्रिलोकीयंतवांबिके।
काम राज कलारूपा जागर्ति सचराचरे॥

यहां पर हरार्ध शब्द से अधोमुखी त्रिकोणात्मिका योनी से तात्पर्य है। अथवा "हरोह ,अकार यद्व हरः शिव" ये दो अक्षर उसका अर्ध भाग श कार व कार का लोप करने से अवशिस्ट इ और अः रहा इनका व्यत्यय करने से ए बना, यह योनि हो गई। "यद्वा हरः रवि" उसका आधा रेफ व कार के लोप से ए रह गया, यही योनि है। रुद्रयामल में इस प्रकार इस भाव को स्पष्ट किया है—आकाश·महाबिन्दु भगवती का मुख सूय चन्द्र, भगवती के दो स्तन - सूर्यस्तन से उष्मारूप प्राण, चन्द्रस्तन सोमरूप अपान, 'अग्निसोमात्मकं जगत" इन दो स्तनों से सारे संसार को अग्नी सोमरूपी जीवन दे रही है।

"सुमेरु हरार्द्ध कलया" सुमेरु आधा अङ्ग और नीचे के कोण पाताल हैं, यही त्रिलोकात्मक भगवती की मूर्ति है, इसमें जो कामकला बोज है वह त्रैलोक्य को मोहन करनेवाला है। भगवती कालकला रूप से तीनों लोकों में व्याप्त हैं।

हरार्ध शब्द से अधोमुख त्रिकाणात्मिका योनियों का अर्थ है। उद्ध्र्वबिन्दु अग्निका नोचे के दो बिन्दु सूर्य चन्द्रमा के, ब्रह्मा रजोगुण विन्दु, विष्णु सत्यगुण विन्दु, रूद्र तमोगुण बिन्दु, ये त्रैगुणात्मक तीन बिन्दु हैं। या हरार्ध हं, सः, से ऐँ बना। या, मन्मथ कला कामवीज क्लीं, वीज के ऊपर का विन्दु मुख और क - ल दो विन्दु या हराध से योनी जो सब की प्रसवभूमि हैं। "यतोवा इमानिभूतानि जायन्ते" प्रथम बिन्दु ऊपरवाला "ये न जातानि जीवन्ति यं प्रयत्न्यविशंविशन्ति" ये दो बिन्दु नीचे के प्रथम बिन्दु उत्पत्ति नीचे दो बिन्दु, दाहिना स्थिति, बायां संहार का है। श्रीयन्त्र में ऊद्ध मुखो जो ५ योनी है, जिनको शिवयुवति कहा है, वह हरार्द्ध है। "यद्वाहर, हंसः।" इसमें ह स् का लोप करनेसे अः अं तीन बिन्दु ॰°॰ ाः। इस स्वरूप का ध्यान करे वही तन्त्रशास्त्र में श्रीविद्या के प्रकरण में अनुस्वार का बिन्दु भोगात्मक, विसर्ग बिन्दुः त्यागात्मक इन दोनों का ाः एकीकरण बताया है। जो अन्यत्र किसी भी शास्त्र में नहीं है। ह कार के ऊपर हं बिन्दु को मुख और विसर्गात्मक दो बिन्दु को स्तन इसके नीचे मन्मथकला योनी का ध्यान करे। यह कामकला अतिगोप्य है। "इति कामकला विद्या विदितायेन

स भवतिमहा त्रिपुरसुन्दरी रूप" "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" वह परा सिद्धि है।

इस प्रकार कामकला वीज ऐं, क्लीं, बने। ऐं—इसमें गुप्त सरस्वती का वीज है। तीसरा वीज सौंः, यह अक्षरी त्रिपुर सुन्दरी का मन्त्र ऐं क्लीं सौंः है। या, तीन बिन्दुओं से क्लीं वीज बनता है जिसे कामकूट कहा हैं। ऊपर का बिन्दु क अधोभाग के दो बिम्दु इ और ल अनुस्वार इसमें गुप्त है। इसी प्रकार गुप्त रूप से महासरस्वती का वीज ऐं निकलता है। संकेत पद्धति में कहा है—"एतत्कामकला ध्यानं गुह्यातगुह्यतरं महत्। नाशिष्याय प्रवक्तव्यं नाभक्ताय कदाचन॥ लोभान् मोहाचगर्व्वाद्वा वैदुष्पाद्वा प्रकाशयेत्। सोचिरान्मृत्युःमाप्नोतिशास्त्रघात विषादिभिः॥" वह कामकला विद्या अभक्त शिष्य को भी नहीं बतानी चाहिये। कोई लोभ से किसी राजा को बता दे तो उसमें बतानेवाले को हानि होती है।

तन्त्र शास्त्र में ६ प्रकार की सिद्धियों का रहस्य बिना गुरु कृपा साधन के नहीं ज्ञान प्राप्त होता है। मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, आकर्षण, वशीकरण, इन नामों से उन २ सिद्धियों का बोध है। इन सब को परिसमाप्ति "अहं ब्रह्मास्मि" इसमें होती है। 'तन्त्रानुमोदित योगशास्त्र के साधक में इन सिद्धियों का विकाश होता है। इस श्लोक में आकर्षण शक्तिका प्रयोग है।

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरण निकुरुम्बामृतरसं ।
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिवयः ॥
स सर्पाणाँ दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव ।
ज्वरप्लुष्टं दृष्ट्या सुखयतिसुधाऽऽसारसिरया ।२०।

टीकाः—

हे भगवती ! अङ्गप्रत्यङ्ग रश्मियों से अमृत रस वर्षाने-वाली तुम्हारी चन्द्रकान्तमय (शीतल) मूर्ति की जो साधक हृदय में उपाशना करता है वह सर्पों के अभिमान को पक्षीराज (गरुड़) की तरह शमन कर देता है। ज्वरग्रस्तो को अमृतमय दृष्टी (रश्मियों) से सुखी कर देता है।

भाष्यः—

इस श्लोक में भगवती के अमृतमय पिण्डस्वरूप का वर्णन है। उपाशक शक्तियोग द्वारा चन्द्रकला विद्या का जब अभ्यास कर लेते हैं, तथा सहस्रार से अमृत स्रवण की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। हृदय-कमल में भगवती का शीतल प्रकाशमय तेज का अनुभव होने लगता है। हृदय में भगवतो चन्द्रकान्त मणिमय शुद्ध भ्राजिष्णुमूर्ति जिस मूर्ति के अङ्गप्रत्यङ्ग की रश्मियों द्वारा सुधासार का चिश्वन हो रहा है। ऐसी मूर्ति का ध्यान स्थिर हो जानेसे साधक सर्प के विष दूर करने कीं सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। ज्बरादि से संतप्त रोगी को अपनी अमृतमय दृष्टी रश्मियों से

आरोग्य कर देता है। षोड़श नित्याओं में भगवती भेरुण्डा सब प्रकार के विष शमन करनेवाली है। "यस्यास्मरण मात्रेण त्रिविधं शमयेद्विषम्" भगवतो भेरुण्डा सब प्रकार के विष वाधाओं से मुक्त कर देतो है। "ॐ भ्रौं क्रौं भ्रौं म्रौं छ्रौं ज्रौं स्वाहा" प्रायः इस मन्त्र को सिद्ध कर इससे निर्विष हो जातो है। कही २ "छिप छिप स्वाहा" ऐसा भी मन्त्र आता है। सोमकला प्रधानात्मिका पञ्चदशी को उपासना विधि पूवक जो साधक करते हैं उनकी दृष्टि में सोमात्मक भगवती की अमृत रश्मियां आजाती है, वह रोगी को आरोग्य लाभ दे सकता है। जिनको कुछ इसका ज्ञान है, वे लोग इस समय भी रोगियों को भगवती के उपाशकों के पास ले जाकर आरोग्य लाभ प्राप्त कर लेते हैं। किस तरह रोगी विना औषधि के आरोग्य होता है, यह विना भजन के कोई नहीं समझ सकते हैं। इसे समझना चाहो तो भजन करने की स्थिति बनाओ।

संकल्प शक्ति और दृष्टी की शक्ति का चमत्कार प्रायः थोड़ा वहुत सभो जानते हो हैं, पर विशेष ज्ञान तो अभ्यास से होगा। यह अनुभव में आता भी तो है कि अमुक को दृष्टी लगने से बालक दुग्ध उल्टी कर रहा है उसकी दृष्टी से आनन्द आया इत्यादि। संकल्प का बल भी वे जान सकते है। जो मनोमय विज्ञान को समझते हैं। इसका सारांश यह है कि— मनुष्य जिसको उच्चभावना का अभ्यास और जिसकी सब पर मित्र दृष्टी रहती है उस अद्रोहात्मक दृष्टी और सद्भावनावाले को भगवतीकी कृपा से स्वल्प कालमें यह शक्ति प्राप्त हो जाती है।

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशि वैश्वानरमयीं ।
निषण्णांषण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम् ॥
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा !
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम् ।२१।

टीकाः—

महान् आत्मा मल और मायाको मार्जन किये हुए मनसे षट् चक्रों से ऊपर महाकमलबन (सहस्रदल कमलमें) सूर्य चन्द्रमा अग्निमयी, बिद्युत् रेखाके समान (अति सूक्ष्म) परमानन्द की लहरों से लहराती हुई तुम्हारी मोक्षकला को देखते हैं।

भाष्य :—

इस श्लोक में भगवती की मोक्षकला और उसके विकाश के साधन पर दृष्टी डाली है। इस मोक्षकला की प्राप्ति में महान शव्द से साधक की उच्चकोटि का संकेत हैं। महान शब्द का अर्थ ऊंचे का है। जब साधक चतुर्थ भूमिका से ऊपर हो जाता है तव महान् हो सकता है। "निषण्णांषण्णामुपरि" अर्थात् षट् चक्र भेदन कर, सहस्रार में कुण्डलनी का आरोह अवरोह मार्ग का अनुभव कर ले तब वह महान् साधक "मृदितमल मायेन मनसा" मन के मल विक्षेप और माया मिथ्या ज्ञान को (विचार यम नियम प्रायश्चित्त पूर्ण उपाशना से) हटाकर बिशुद्ध मन द्वारा सहस्रार में सूर्य चन्द्र वैश्वानर प्रकाशत्रयमयी परमा

नन्दरूपो मोक्षकला का अनुभव करता है। यही उपासना का परम ध्येय है। इस श्लोक में मन के मल ही मोक्ष के प्रतिरोध करनेवाले हैं, यह दिखाया है। मलविक्षेप के संस्कारों के रहते काम क्रोध लोभ मोहादि शत्रु बने रहते हैं। "यज्ञैर्यज्ञै महायज्ञै-र्ब्राह्मीयं क्रियते तनुः" ऋषि मुनी आदि उपाशकों ने यज्ञ और महायज्ञों द्वारा मन के पाप शुद्ध कर ब्रह्माकार वृत्ति बनाई है। अतः सब से पहले मन के पाप दूर करने का प्रयास करता है। तब विशुद्ध मन में उस मोक्ष लक्ष्मी का अनुभव स्वयं देखने लग जाता है। षट्चक्रके ऊपर शिवस्थानमें 'तव कलाम्" इस वाक्य से निर्वाण कला का तात्पर्य है, यही षोड़शी का सूक्ष्म स्वरूप है। जिसका वर्णन अन्यत्र ऐसा है। गीता—'येषांत्वन्तगतंपापं जनानां पुण्य कर्मणां तेद्वन्द्व मोह निर्मुक्ताः भजन्तेमांदृढ़व्रताः" जिनके पाप नष्ट हो गये हैं वे मोह से निवृत्त होकर भगवती के स्वरूप को देखते हैं। "निर्वाणाख्य कलापरापरतरा सास्ते तदन्तर्गताः" यह भगवती की निर्वाण कला है, इसीलिए "मृदित मलमायेन मनसा" यह आया है। मन के मल को दूर करने से यह प्रकाश आता है। षट्दल के ऊपर सहस्रार में ही यह कला है। कादिमत में कहा है—"इतिते कथिता कामकलयावा स्वभावतः पूर्वमेवाधुनावक्षे भावाना मन्त्रमालिकाम्"।

मूलादि ब्रह्मरंध्रांतं स्फुरत् विद्युल्लताकृति।
ध्यायेत् कुण्डलनीं देवीं विद्याक्षर स्वरूपिणीम्॥

षट्चक्र भेदिनिं ताञ्च विन्दुत्रय मयात्मिकाम् ।
तामेवार्द्ध कला रूपां चिन्तयेत् पद्मकानने ॥
एवं भावतया जुष्ट परमानन्दनिर्भरः ।
संसार सागरं धीमान् गोष्पदि कुरुतेशिवे ॥

"मूलादि ब्रह्मरंध्रांत" षट्चक्र को भेदन कर विन्दुत्रयात्मक तुमको अर्ध मात्रा में चिन्तन करते हैं, वे परमानन्द के आस्वाद को लेते हुए संसार सागर को गोस्पदी के समान पार कर लेते हैं। भगवती के इस स्वरूप के ध्यान से अविद्या और पापों का नाश हो जाता है। देवी के लिंग शरीर के (सूक्ष्म स्वरूप का) ध्यान निम्नलिखित अष्टादश स्थानों में होता है (प्रणव कुलपद्मन्तु) "मूलाधारं स्वाधिष्टानं मणिपूर मनाहतम् विशुद्धिमाज्ञा चक्रेषु विन्दुर्भू यः कलापदम् निवोधिका तद्वार्द्ध तदुर्ध्वेन्दो नादोनादान्त एवच उन्मनी विष्णु वक्त्रञ्च ध्रु वमाण्डलिकंशिवे इत्येतत्षोड़शाधारं कथितं योगी दुर्लभम्।

१ 'कुलपद्म' जिससे सहस्रार नाम से भी कहा जाता है, जो मूलधार के नीचे है, और ऊपर की ओर मूलाधार की ओर खुलता जाता है। २ विश्व यह कुलपद्म और मूलाधार के मध्य का है। ३ मूलाधार, ४ स्वाधिष्टान, ५ मणिपूर ६ अनाहत ७ विशुद्धि. ८ लम्बिकाग्र ९ आज्ञा १० इन्दु, ११ अर्द्ध चन्द्र १२ रोधिनी १३ नाद १४ नादान्त १५ शक्ति १६ व्यापिका १७ समना १८ उन्मनि, पञ्चदशा क्षरि विद्याके १५ अक्षर

कुलपद्मसे शक्ति तक १५ दलोंमें है शेष तीन दलोंमें वही पहले अक्षर लय हो जाते हैं ब्यापिकामें जो योनि हैं तीन विन्दु से बनी हुई है यह भी लय हो जाती है। सूर्य विन्दु अग्निके बिन्दुमें, सोम विन्दु सूर्यमें, सूर्य अग्निमें, सोम, समनामे, समना और सोम परार्द्ध कलामें जो उन्मनीकी कला है; जब ये सब योनि स्थानमें लय हो जाते हैं तब केवल शिवशक्ति शेष रह जाते हैं इन दोनोंका भी एक रूप शिवतत्व हो जाता है वही स्थिति जीवन्मुक्ति की है।

ऊपर जिन स्थानोंका वर्णन किया है वह समष्टि शरीरमें और व्यष्टि शरीर दोनोंमें हैं—"ब्रह्माण्डे ये समुद्दिष्टाः शरीरे ते व्यवस्थिताः" ब्रह्माण्डमें जितने स्थान हैं वे सब सूक्ष्मरूपसे शरीरमें है। एक स्थान दूसरे स्थानसे कई क्रोड़ योजन दूरीपर है। स्वच्छन्दतन्त्रसारमें इनका क्रम इस प्रकार दिखाया है—

"कण्ठोर्ध्वे परमेशानि लम्बिका चतुरंगुले।
इन्दौ तदूर्द्ध्वे बोधिन्यां नादे नादान्त एव च॥
तन्मध्येशन कोटीनां संख्या योजन पङ्कजम्।
विन्दुतत्वं समाख्यातं कोट्यर्बुद शतैर्वृतम्॥
अर्धचन्द्रं तदूर्ध्वे तु रोधिनि तस्य चोपरि।
रोधिन्याख्यं यदुक्तं ते नादस्तस्योपरिस्थितः॥
इन्दिकादीपिका चैव रोचिका मोचिकास्तथा।
ऊर्धगा मध्यगा तासां पञ्चमि परमा कला॥

इन पद्योंमें भगवतीका ध्यान निरालम्ब मुद्रासे होता है। यथा—

'त्यजेत् शैथिल्य मङ्गानां नासाग्रे रोपयेत् दृशौ ।
मुखं विवृणुयात् किञ्चित् दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥
रसना मन्तरा कुर्या दनङ्गे धारयेन्मनः ।
इयं सा परमा मुद्रा निरालम्बेति पञ्चमी ॥

अङ्गोंकी शिथिलता दूर कर पद्मासन सिद्धासनमें बैठ नेत्रों को नासाग्रमें लगावे मुख थोड़ा खुला रहे दांत नीचेके दांतोंपर स्पर्शन कर सके जिह्वाको तालुमूलमें सिकोड़कर कामबीजके प्रकाशमें मन लगावे। इस तरह निरालम्ब मुद्रा बांधकर निरन्तर अभ्यास करनेसे जो वायु धारण किया जाता है उसके बलसे अग्निके कण उसे दीख पड़ने लगते हैं पुनः उसके बीचमें प्रज्वलित दीप कला तदनन्तर प्रातःकालके सूर्यके प्रकाशमें ईश्वरका साक्षात्कार साधकको हो जाता है।

भवानित्वं दासे मयि वितरदृष्टिं स करुणा-
मितिस्तोतुंवाञ्छन्कथयति भवानित्वमिति यः ।
तदैवत्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्य पदवीम्
मुकुन्द ब्रह्मेन्द्र स्फुटमकुट नीराजितपदाम् २२

टीका–

हे भवानि! तुम मुझ दासपर दयाकी दृष्टि प्रसारित करो

इस प्रकार स्तुति करनेकी इच्छा करता हुआ जेसे ही "भवानित्वं" इतना उच्चारणं करते ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रके मुकुटमणिके ज्योतिसे निराजित (आरतो किए गये) चरणा भगवती भवानि वैसे ही उसे (साधकको) सायुज्य पदवो दे देती है।

भाष्य–

पूर्व २१ श्लोकमें वर्णित निर्माण कलाके साक्षात्कार होनेपर साधकपर भगवतीकी करुणामय दृष्टि होनेसे "तत्वमसि" महावाक्य बोधित आत्म साक्षात्कार हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र जिस भगवतीके चरणोंमें नत मस्तक रहते हैं उन देवताओं के मुकुटोंके रत्नोंकी चमक मानो भगवतीके चरणोंका नीराजन कर रहे हैं। इस कथनसे साधकको भक्तिभावसे भगवतीके पूजन करनेका निर्देश है भक्तिका विकाश विधिपूर्वक पूजन स्तोत्र पाठादिसे दिव्यभाव षोड़ा महाषोड़ा विन्यासपूर्वक मन्त्र पुरश्च-रणादिसे होता है साण्डिलने भक्तिका वर्णन करनेमें "सापरानु-रक्ति" सूत्रमें परा शब्द जो आया है उसका पराकलासे भी तात्पर्य हो सकता है पराकला (मोक्षकला) भक्तिसे विकाश होना इससे सूचित किया गया। "सायुज्य पदवी" कहनेसे सालो-क्यादि मुक्तिका भी बोध होता है यथा—सालोक्य एक ही लोकमें रहना उपास्य देवताके लोककी प्राप्ति सालोक्य मुक्ति जैसे भगवानके पार्षद जय विजय आदि पार्षदोंको मिली सामीप्य इष्टदेवके सामने रहना जैसे हनुमान आदियोंको, सारूप्य एकरूप हो जाना जैसे "त्वया हृत्वा वामं" इस पदमें

भगवतीके रूपमें हो जाना यही सायुज्य कैवल्य मोक्ष है जो तत्वमस्यादि वाक्य गम्य है। "भवानित्वं दासे" इस पदसे भगवतीके नामोच्चारणसे ही मुक्ति बताई है जैसे नारायण नमोच्चारण करते ही अजामिल आदियोंको मुक्ति हुई है।

'मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त्र समस्त दोषैः।

जिनके मनके मल मृदित हो गये ऐसे मुनिजनोंने मोक्षके लिए भगवतीकी उपासना की है।

मार्कण्डेय ऋषिने कहा है—

'सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।'

भगवती जब प्रसन्न होती है तब वर और मोक्ष उपासकको देती हैं इसलिए 'मृदित मलमायेन मनसा" इस पदमें मनके मल दूर कर भगवतीका भजन करनेका निर्देश किया है।

इस श्लोकमें 'त्वं' और 'मयि' तू और मै यह द्वैतभाव देहाध्यासजन्य जबतक रहें तबतक साधकको उपासना ही एक-मात्र अवलम्ब है, 'दासे' इससे दासभावका भी बोध होता है, साधक भगवतिकी कृपासे माताकी जैसे ही करुणामय दृष्टिसे सिञ्चित होता है वैसे ही उसे 'त्वं" पद कहते ही "तत्वमसि" महावाक्य बोधित आत्मज्ञानका अनुभव हो जाता है। "निज-सायुज्य पदवीम्" साधक देवीरूप हो जाता है अर्थात् उस परम पदको प्राप्त कर लेता है जिस कठ० में "तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये" तथा "सर्वे वेदाः यत्पद मामनन्ति" सम्पूर्ण वेदोपनिषन् विद्या जिस ब्रह्मपदका वर्णन करते हैं जिसके लिए "तद्विष्णोः परमं

पदम्" परमपद कहा है गीतामें जिसका वर्णन इस प्रकार है— "ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः" साधक भगवतोके उस पद जिसका मोक्षकला शब्दसे संकेत किया है उस पदको देखे यह वह पद है जिसकी प्राप्ति होनेसे फिर दुःखमय संसाररूपी कारागारमें नहीं भटकना पड़ता है "मकुन्द ब्रह्मेन्द्र स्फुट मुकुट नीराजन पदाम्" इससे उस पदका अनिर्वचनीय प्रकाश कहा गया है यथा गीतामें—"दिविसूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदस्थितिः" हजारों सूर्यकी चमक एक ही समय यदि आकाशमें हो तब भी उस पदके प्रकाशकी तुलना नहीं की जाती है। उस पदका प्रकाश बताया है जिसकी उपासना गायत्री जप करनेवालोंको सबके लिए वेदने बताई है— "भर्गो देवस्य धीमहि" यह वह तेजपुञ्ज भगवतीका है। नीराजन शब्दके कहनेसे साधकका ध्यान भक्तिभावसे उपासना करनेका कहा गया है, नीराजन पूजाकी समाप्तिपर होता है जिस समय स्तुति, पाठ किया जाता है अर्थात् नित्य प्रेमसे भगवतीकी स्तुति पूजा करना मोक्ष प्राप्तिका साधन है।

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा।
शरीरार्धं शम्भो रपर मपि शङ्के हृतमभूत्॥
यदेतत्त्वद्रूपं सकलमरुणाभंत्रिनयनम्।
कुचाभ्या मानम्रं कुटिलशशि चूडाल मकुटम्॥२३

टीका :—

हे भगवती ! तुमने शिवका वाम अंग तो ले लिया परन्तु तुम्हारा मन उससे तृप्त नहीं हुआ। मुझे संदेह है कि दूसरा जो अंग आधा शरीर बाकी है वह भी तुमने ले लिया है। तुम्हारा यह रूप जो रूप सारा लालिमा लिए है और तीन नेत्र तथा स्तनभारसे नम्र अर्द्ध चन्द्र शिरके मुकुटपर लगा हुआ है। इस प्रकार शिवकी छवि देख रहा हूं।

भाष्य :—

भगवतीने शिवका आधा अंग ले लिया तब अर्धनारीश्वर शिव हो गये थे परन्तु आधे अंगके लेनेसे भगवती तुम्हारा मन भरा नहीं था इससे सन्देह होता है कि अवशेष जो आधा शरीर शिवका रह गया था वह भी तुमने ले लिया है क्योंकि आधा शरीर लेने पर शिवकी एक आंख एक स्तन आधा शरीर स्वेतवर्ण अर्द्ध चन्द्र जटाजूटमें रहा अब उस मूर्तिको सारि अरुण और त्रिनेत्र दो स्तनोंसे नम्र देह तिर्छी रीतिसे अर्द्ध चन्द्र पहले इसका अर्द्धांश था अब पूर्ण अर्ध अष्टमीका चन्द्रमा, इन चिन्होंसे यह ज्ञात हो रहा है कि शिवकी सारी मूर्तिको तुमने अपनी मूर्तिमें मिला दिया। उत्तर कौलका भी यही सिद्धान्त है शिव शक्तिमें ही नित्य रहते हैं। वस्तुतः जिसकी तीव्र भावना जिस पर होती है उसका वही स्वरूष हो जाता है यथा "भावितं तीव्र वेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना पुमान् तद्धि भवेत् शीघ्रं ज्ञेयं भ्रमर कीटवत्" जैसे भ्रमर कीटको पकड़कर लाता है वह कीट भ्रमर पर टकटकी

लगाकर एक तारसे देखता रहता है थोड़े समयमें कीट भ्रमरके स्वरूपको अपना स्वरूप बना लेता है। श्रीयन्त्रमें ५ योनि तो भगवतिने पहले ले ली हैं शेष ४ शिवकी लेकर श्रीचक्र नव योनिका भगवतीका बन गया। "शरीरार्द्ध शम्भो रपिमपरशंके- तवहृतम्" इस पदसे स्पष्ट हो रहा है श्रीकण्ठके ऊर्द्ध मुखी ४ त्रिकोणको लेनेसे भगवतीका श्रीयन्त्र रूपो, सारी एक मूर्ति बन गई तथा मोक्षकलाके अनुभव होने पर साधकको अब द्वैताभास लय हो जाता है उसको एकमात्र ब्रह्मदृष्टि हो जाती है उसे शिवशक्ति भिन्न प्रतीत नहीं होती है यथा तन्त्रशास्त्रमें पूर्णाभिषिक्त साधकके प्रसंगमें आता है जब महाषोड़ा न्यास आदिसे उसे देवत्व प्राप्ति हो जाती है तब उसकी भावना "एवं चित्ताम्बुजे ध्याये दर्धं नारी श्वरं शिवम् पुरुषं वास्मरेद्देवी स्त्री रूपं वा महेश्वरी" अथवा "निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्द लक्षणम् सर्वं तेजोमयं ध्यायेत् सचराचर विग्रहम् साधना सम्पन्न साधक उस सच्चिदानन्दको पुरुषरूपमें ध्यान करे चाहे स्त्रीरूपमें ध्यान करे अथवा निष्कल कलना रहित सच्चिदानन्द लक्षणसे जो बोध होता है उसका ध्यान करे या सव तेजोमय प्रकाशमयी मूर्तिका ध्यान करे इनमेंसे जिस भावनाका भी ध्यान करे उन सबका एक ही ब्रह्मानन्दसे तात्पर्य है।

"सकल मरुणाभं" से हृदय पद्ममें अरुणाके प्रकाशसे तात्पर्य है "कुचाभ्यामानम्रं कुटिल शशिचूड़ा" भगवतीके तीन बिन्दु त्रिकोणके द्योतक है शशिचूड़ासे साधकको ब्रह्मरन्ध्रसे निष्पन्दित

अमृतका पान तथा उपासना योग्य हिमवत् प्रदेशका निर्देश किया गया है परम शान्ति प्राप्तिका संकेत शिरमें चन्द्र चूड़ासे है प्रायः परम शान्ति हैमो गिरि गुह्वराओंमें योगीको मिलती है।

इस श्लोकमें भक्तिकी पराकष्ठा दिखाई है भक्तिको पराकाष्ठा वही है कि तन्मय हो जावे हनुमानजीने भगवान् रामकी भक्ति में अपना परिचय दिया "देह बुध्या च दासोहं जोवबुध्या त्वदंशकः। आत्म बुद्ध्यात्वमेवाहंमितिमे निश्चलामिति" अर्थात् आत्मबुद्धिसे यह ही निश्चय किया है मैं राम ही हूं।

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते।
तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति॥
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव-
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः॥२४

टीका :—

ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है, विष्णु पालन, रुद्र संहार, इस क्रमको तिरस्कार करते हुए रुद्र स्वयं तिरोधान हो जाते हैं; सदाशिव तुम्हारी भ्रूलताके चलनेसे तुम्हारी आज्ञा लेकर इस सबको अपनेमें धारण कर लेते हैं।

भाष्य :—

इस श्लोकका तात्पर्य यह है भगवतीके क्षण भरमें भ्रूपंक्तियों के हिलते ही सृजन, पालन, संहार क्रिया होकर सब पीछे शिव

तत्त्वमें मिल जाता है, इस तरह भ्रूलतिकाके चलनेसे सारा सृष्टि क्रम ऐसा घूमता रहता है। शाम्भवदीपिकामें लिखा है :—

सृष्टिस्थित्ययः संसार विधानानुग्रहात्मकम्।
कृत्यं पञ्च विधंयस्य तं नमः शाश्वतं शिवे॥

सृजन, पालन, संहार, तिरोधान, अनुग्रह ये पांच कर्म जिसमें हैं उस शिवको नमस्कार करता हूं आज्ञा चक्रमें यह सिद्धि है, आज्ञा चक्रमें भगवतीके दो चरण हैं, यहांही दो नेत्र हैं। इस चक्रका नाम आज्ञा चक्र इसलिए है कि इसी स्थान पर भगवतीको सिद्ध करनेसे उसकी आज्ञा सारे कार्यों पर चलती है "इहस्थाने चित्तं निरवधि निधायत्तपधनो, यदिक्रुद्धोयोगि चलयति समस्तं त्रिभुवनम्। न च ब्रह्मा विष्णु हर रवि नवैशीत किरणः त्वदीयं सामर्थ्यं शमयितुमलं नापि गणपः" इस स्थानमें जिसका चित्त निरवधि निरन्तर लय हो जाय उसकी सामर्थ्य त्रिभुवनको हिलानेवाली हो जाती है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कोई भी उसकी सामर्थ्यको रोक नहीं सकता।

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे।
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता॥
तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे।
स्थिता ह्येते शश्वन् मुकुलितकरोत्तंसमकुटाः॥२५

टीका :—

हे शिवे तुम्हारे चरणोंकी जो पूजा रची गई है वह पूजा

तुम्हारे तीनों गुणों (सत्वरजतम) से उत्पन्न हुए तीनो देवता (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) की भी पूजा हो जाती है। तुम्हारी चरण-वाहिनी मणि पीठके समीप ये तीनों देवता निरन्तर हाथ बांध कर तुम्हारे चरणोंमें मुकुटको झुका कर खड़े हुए हैं।

भाष्य :—

इस श्लोकमें यह भाव दिखाया है कि निर्गुण की उपासनासे सगुणकी भी उपासना हो जाती है अतः गुणत्रय अन्तमें निर्गुण सत्तामें समावेश हो जाते हैं। तीन गुणोंका प्रादुर्भाव अव्यक्त बिन्दुसे होता है और पीछे उसीमें लय हो जाते हैं। उपनिषद्में आता है "योहवास्य राजसोंश सोसोयं ब्रह्मा" अर्थात् रजोंशसे ब्रह्मा, सत्वांसे विष्णु, तमससे रुद्र त्रिगुणांसे वे तीन देवता क्रमसे सृष्टि, पालन, संहार करनेवाले उत्पन्न होते हैं। इनसे ही स्थावर जंगम सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। भगवतीके चरणोंमें ये तीनों देवता हाथ जोड़कर मस्तक नवाकर खड़े रहते हैं। भगवतीकी पूजासे इनकी भी पूजा हो जाती है। आज्ञाचक्र द्विदलमें साधक ध्यान करनेसे अग्निके कणोंको देखता है वहांसे ही त्रिगुणात्मक प्रपञ्चका विस्तार होता है। श्रीचक्रमें पहले त्रिकोणके दो कोण आज्ञा चक्र हैं यहां पर त्रिपुर सुन्दरीका पूजन साधक अनेकों उपचारसे करते हैं। उससे ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री शक्तियां अनुकूल हो जाती हैं।

इसके २४ श्लोकमें जगतसूते धाता इत्यादिसे त्रिगुणात्मिक सृष्टिका विस्तार और प्रत्येक गुणके देवता बताकर अन्तमें

सबका सदाशिव तत्व (गुणातीत) में इच्छाशक्ति द्वारा समावेश होना बताया है, इसपर सगुणकी पूजा साक्षात रूपसे नहीं विदित होती है। देहाध्यासके रहते सगुण पूजा कल्याण-दायी है। इस श्लोकमें यह बताया है कि इन तीनों गुणोंका प्रादुर्भाव उसी गुणातीत शिवतत्त्वमें इच्छाशक्ति द्वारा होता है, अतः शिवतत्वात्मिक इच्छाशक्ति रूपा भगवतीके पूजन करनेसे त्रिगुणजन्य ब्रह्मादिका भी उसीमें पूजन हो जाता है। वे ब्रह्मादि देवता भी अञ्जली बांध कर भगवतीके मणिद्वीप रूपी पीटमें ही है, कुण्डलनी योग द्वार ामणिपीठ सहस्रदल कमलमें है। यहां पर ही सब प्रपञ्च उस अनन्त निर्विकार गुणातीत अव्यक्त विन्दुमें लय हो जाते हैं। मूल श्लोकमें पूजा शब्द आया है पूजा दो प्रकारकी होती है अन्तरंग पूजन, बहिरंग पूजन। अन्तरंग पूजन षट चक्रोंमें उन २ देवता और शक्तियोंका मानसिक पूजन जो जिस चक्रमें है और अन्तमें ब्रह्मरन्ध्र गुणातीतमें सबको लय कर देता है। बिहिरंग पूजा षोडष उपचारसे मन्त्र द्वारा पूजन, हवन, स्तोत्र, पाठ आदि जैसी विधि है।

विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं।
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्॥
वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि संमीलति दृशां।
महा संहारेऽस्मिन्विहरति सतित्वत्पतिरसौ॥२६

टीका :—

हे सति, हे पतिव्रते, इस महाप्रलयमें ब्रह्मा मृत्युको प्राप्त होता है, विष्णु भी प्राण त्याग करता है, यमका नाश हो जाता है, कुबेर परलोक चला जाता है, इन्द्र भी नित्यके लिए नेत्र बन्द कर देता है (परन्तु) यह तुम्हारा पति विहार करता रहता है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें भगवतिका सम्बोधन सति शब्दसे कर शिवको मृत्युपाशसे मुक्त बताकर सति धर्म (पातिव्रत) का महात्म्य दिखाया है। महाप्रलयमें ब्रह्मा, विष्णु, यम, कुबेर, इन्द्र इन सबके नष्ट होनेका अवसर दिखाकर केवल एक शिवका उस समयमें जीवित रहना यह सतीका प्रभाव है। इस सतित्व धर्म को देवताओंके अनन्तर भारतवर्षकी देवियोंने अपनाया था। जिस देश-जातिमें सतीत्व धर्म है वहां वैधव्य दुःख नहीं होता है; सावित्री विवाहके पूर्व सती धर्मके माहात्म्यको जानती थी नारदजी सत्यवानकी अल्पायुके कारण सावित्रीके पिताको सत्यवानके साथ सम्बन्ध करानेसे रोक रहे थे परन्तु सावित्रीको सती धर्मपर पूर्ण विश्वास था कि किसी भी सती स्त्रीको पति वियोग नहीं हो सकता है, इस पर उसने माता पिताके निवारण करने पर भी सत्यवानके साथ (जिसे पहले उसके पिताने कन्या देनेका संकल्प किया था) उसीको निश्चय कर सत्यवानसे ही विवाह किया, सतीत्व धर्मका प्रभाव था कि मृत्युके राजा यमने लाचार होकर उस सतीके पतिको मृत्यु पाशसे मुक्त किया।

भगवती सीता, सुकन्या, अरुन्धती आदि कितनी ही आदर्श सतियोंका वर्णन शास्त्रोंमें आया है: जिनके सतीत्वसे उनके पति दीर्घायु रहे। भारतवर्षमें स्त्रियोंको शक्ति कहते हैं। इनमें सतीत्वकी शक्ति होने से ये अबला नहीं कही जाती हैं भारतकी सतियोंको शक्ति कहते थे, अबला कहना पाप है। ये देवियां सभी श्री विद्या की उपासना करती थीं। श्री विद्याकी उपासना से ही षोड़स शृङ्गार शक्तियोंको मिले थे। षोड़सों कलाही सोलह शृङ्गार है जिन्होंने षोड़शीको सिद्ध किया है उनमें षोड़स नित्यकलाओंके विकाशसे वे सौभाग्यशालिनी पति पुत्रवती बनी रहती हैं। चूड़ाला राजपुत्री जिसका वर्णन योग वाशिष्ठमें आया है, यह उस परम सतीका चमत्कार था कि विषयग्रस्त अपने पतिको आत्मनिष्ठ धार्मिक बना कर दीर्घायु किया। एक सतीका इतिहास है "सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके नवोधयामास पतिं पतिव्रता, पतिव्रता शापभयेन राजन् हुताशन पङ्कज शीतलं गत:" वस्तुत: भगवती सतीकी उपासना जो कन्या करती है वह कभी विधवा नहीं हो सकती। जो जिसकी उपासना मनसे करता है उसमें उस उपास्य देवकी शक्तियों का विकाश हो जाता है जैसा पूर्व श्लोकोंमें बता चुके हैं। जिस स्त्रीने श्री विद्याकी उपासना की हो उसमें भगवती सतीका प्रभाव होनेसे उसका पति शिवकी तरह मृत्युके पाशमें नहीं फंस सकता है इसलिये मूल श्लोकमें कहा है भगवती तुम सती हो इसलिए महाप्रलयमें ब्रह्मा विष्णुके अन्त होने पर भी तुम्हारे

पति सदाशिव विहार करते रहते है अर्थात् शिवतत्व नित्य अपने स्वरूपमें रहता है। त्रिगुणात्मक संसार उत्पत्ति विनाशी है।

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥२७॥

टीका--

हे देवि जो मेरा विलास है वह तुम्हारी पूजा हो, भाषण जप हो, सारा शिल्प हस्त व्यापार हाथकी चेष्टा तुम्हारी मुद्राकी रचना हो स्वेच्छा चलना तुम्हारी प्रदक्षिणाका क्रम हो भोजन हवनकी आहुति हों, शयन या नीचे लेटना तुम्हारे लिये प्रणाम हो सारा सुख शयन आदि यह आत्मसमर्पण रूप हो।

भाष्य :—

इस श्लोकमें यह दिखाया है। उपासक का सारा जीवन षोड़ान्यासादि करनेसे भगवतीकी उपासनारूप हो जाता है उसकी देहकी सम्पूर्ण क्रियाओंमें पूजा ही उपाशकको प्रतीत होती है उसको सर्वत्र भगवती दीख पड़ती है उसके जीवनके अन्तर्वाह्य सब क्रिया पूजा रूप हो जाती है। वह आत्मक्रीड़ा आत्मरति हो जाता है उसको सारे शरीरमें भगवती दीख पड़ती है। "जित देखूं तित तोहीं" यह दशा हो जाती है सच्चा पुजारी वही है। उसका चलना, बोलना, भोजन, शयन सब पूजा है।

जो श्री चक्रका पूजन साधारणतः बाह्य पूजा या उच्च पूजन अन्तर्पूजा करता है, वह जीवन मुक्त हो जाता है जैसे भावनोपनिषद्में कहा है "स्वयं तत्पादुका निमज्जनं परिपूर्णध्यानं एव मुहूर्तत्रयं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, तस्य देवतात्मैक्य सिद्धिः चिन्तित कार्याण्य यत्नेन सिद्धन्ति स एव शिवयोगीति कथ्यते।" "कादि हादि मतोक्तेन भावना प्रतिपादिता जीवन् मुक्तोभवति।" उपासक भगवतीके पादुकारूपी आज्ञाचक्रमें मनको निमग्नकर इस प्रकार तीन मुहूर्त भी ध्यान करे तो जीवन मुक्त होता है। उसका देवताके साथ ऐक्यभाव हो जाता है। वह जिस कामकी चिन्तना करता है वह काम सिद्ध हो जाता है उसको शिवयोगी भी कहते हैं। कादि विद्या हादि विद्यासे उपासना द्वारा जीवन मुक्त हो जाता है। यद्वा अन्यत्र कहा भी है शिवयोगीके सम्पूर्ण कर्म पूजारूपी है। यथा—

आत्मात्वं गिरिजापतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्।
पूजाते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थिति॥
संचारः पदयो प्रदक्षिण विधिस्तोंत्राणि सर्वागिरः।
यद्यद्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भोस्तवाराधनम्॥

इस श्लोकमें श्रीविद्याकी उपासना तथा सिद्ध-साधककी स्थितिका बर्णन है। उसकी देहके जो स्पन्दन होते हैं वे सब भगवद्भजनरूपी कर्म होते हैं। वह आत्मक्रीड़ा आत्मरतिक्रियावान् "एष ब्रह्म विदां वरिष्ठः" वह ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो

जाता है उसपर देहके स्पन्दनोंको कोई पुण्य-पाप स्पर्श नहीं कर सकता है। "तीर्थे स्वपच गृहे वा नष्टस्मृतिरपि त्यजन्देहं ज्ञान समकाल दग्धः, कैवल्यं यातिहत शोकः", तीर्थ हो या चाण्डालगृह हो, चाहे स्मृति रहे या नष्ट हो जावे ज्ञानकी अग्नि जिसके अन्दर विकाश हो गयी है वह सब शोकोंको पार करके ब्रह्ममय हो जाता है। इस श्लोकमें जप शब्द आया है। अर्थात् श्रीविद्याके जप करनेसे ही साधकको सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती हैं। जप तीन प्रकारसे होता है। मानसिक, उपांशु और वाचनिक भेदसे कहा है।

तन्त्रशास्त्रमें लिखा है कि जो जप मुखसे उच्चारण किया जाता है वह निष्फल है और जो स्तोत्र मुखसे न उच्चारण किया जाय वह भी निष्फल है। इसलिए मनु भगवानने कहा है—"जप्ये नैव तु संसिद्धं ब्राह्मणोनाऽत्र शंसयः" अर्थात् ब्राह्मण को जपसे ही सिद्धि प्राप्त होती है। जपके विषयमें शास्त्रोंमें वर्णन आया है—

मानसिक, वाचिक भेदसे दो प्रकारका है। मानसिक मन से उस भावका चिन्तन, वाचिक तीन प्रकारसे प्रधानतया कहा गया है—(१) वाचिक (२) उपांशु (३) मानसिक। यथा पुराणे—

जपस्यादक्षरावृत्तिः वाचिको पांशु मानसः।
य उच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्ट दशाक्षरैः॥

मंत्र मुच्चारयेत् वाचा वाचिकः स जपःस्मृतः ।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्र मीषदोष्ठैच चालयेत् ॥
किञ्चिश्रवण योग्यस्या दुपांशुः स जपःस्मृतः ।
जिह्वाजप स विज्ञेयः केवलं जिह्वयाजपः ।
धिया यदक्षर श्रेणी पदवर्ण स्वरात्मिकाम् ॥
उच्चरेदर्थ संस्मृत्या स उक्तः मानसो जपः ।
उच्चैर्जपविशिष्टस्याद्यज्ञादि दशभिर्गुणैः ॥
उपांशुस्यात् शतगुणः सहस्रो मानसस्मृतः ।

नारदे—

वाचिकः सर्व कार्येषु उपांशु सर्व सिद्धिषु ।
मानसः मोक्ष कार्येषु ध्याये देवं च सर्वदा ॥

तन्त्रे—

मनसा यज्जपेत्स्तोत्रं वचसा यज्जपं क्षतं, तन्निस्फलमिति

मुद्रा—मुदं रातीति मुद्रा । मुद्राओंका वहुत बड़ा विस्तार है—"महामुद्रा नभोमुद्रा ओड्याणंच जलन्धरं । मूलवन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनः" । महामुद्रा, आकाश मुद्रा, ओड्याण बंध, जलंधर बन्ध, मूल बन्ध जो जानता है वह मोक्षका अधिकारी है । महामुद्राका लक्षण—"वक्षोभ्यस्त हनु प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामांघ्रिणा । हस्ताभ्यामनुधारयन् प्रसरितं पादं तथा दक्षिणं ॥ आपूर्यश्वसनेन कुक्षियुगलं लब्धवाशनैः रेचयेत । सेयं व्याधि विनाक्षिनि सुमहती मुद्रानृणां कथ्यते" एड़ीको छातीपर

लगा दे बायें पैरके तलुवेकी एडीको योनिस्थानमें दबा दे उसीके ऊपर दाहिनी एडी रखे दोनों हाथोंको खोलकर ऊपरसे दबा रखे दोनों ओरसे क्रमशः स्वास खींचे तब शनैः शनैः रेचक करे महामुद्राके अभ्याससे सब रोग दूर होते हैं "तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु यो भ्यसेत्" पूजामें आवाहनी मुद्रा, स्थापनी, सम्मुखी करणी धेनु, अमृती करणी महामुद्रादि प्रायः काममें आती है बत्तीस मुद्रा जपकी सम्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख आदि ३२ हैं शङ्ख चक्रादि इक्कीश मुद्रा विष्णु मुद्रा हैं।

दश शैवी मुद्रा हैं लिंग मुद्रा, योनि मुद्रा, त्रिशूल मुद्रादि।

तन्त्रराज और वामकेश्वर तन्त्रमें शक्तिमुद्राओंका वर्णन त्रिखण्डामुद्रा, सर्व संक्षोभणो, सर्व विद्राविणी, सर्वोन्मादकारिणी आदि ३६ मुद्रा हैं इनमें खेचरी मुद्रा परमावश्यक है यथा— "सव्यं दक्षिण देशेतु दक्षिणं सव्य देशके। बाहुं कृत्वा महादेवि हस्तौ संपरिवर्त्य च। कनिष्ठानामिके देवि बुत्तानेन क्रमेण तु तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्द्ध मपि मध्यमे। अंगुष्ठौ तु महेशानि कारयेत् सरलावपि। इयं साखेचरी नाम्ना मुद्रा सर्वोत्तमास्मृताः॥

प्रदक्षिणा—

एकाचण्ड्यां रवौ सप्त तिश्रो दद्याद्विनायके।
चतस्र केशवे देया शिवस्यार्ध प्रदक्षिणम्॥

भगवतीकी १ प्रदिक्षणा सूर्यकी ७ गणेशाकी ३ विष्णुकी ४

शिवकी अर्ध प्रदक्षिणा। प्रणाम, अष्टाङ्ग और पञ्चाङ्ग दो प्रकारसे होता है—

उरसा शिरसा दृष्ट्वा मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोष्टांग ईरितः॥
बाहुभ्यां च स जानुभ्यां शिरसा मनसाधिया।
पञ्चांगकः प्रणामस्यात् सर्वत्र प्रवरा विभो॥

संपर्या (पूजा) अनिर्माल्य, सनिर्माल्य या (बाह्य पूजा, आभ्यन्तर पूजा) दो प्रकारकी है। सन्यासियोंको आभ्यन्तर पूजा गृहस्थीको बाह्योपचारका अधिकार है।

परिव्राट् ज्ञान मात्रेण होमदानादिभिर्विना।
सर्व दुःखे पिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा॥
पुण्यस्त्रियो गृहस्थांच मंगलैर्मंगलार्थिनः।
पूजोपकरणैः कुर्युर्दद्यु र्दानादि चार्हणम्॥
नगृही ज्ञान मात्रेण परत्रेहच मंगलम्।
प्राप्नोति चंद्रवदने दानहोमादिभिर्विना॥
पूजा पंचविधाप्रोक्ता पंचरात्रादि तंत्रके।

अन्तर्पूजा (अन्तर्याग) मानसोपचारसे पूजन कुण्डलनो उत्थान बहिर्पूजा (षोड़शोपचार) अट्ठारह उपचार, पंचोपचार आदिमें होती है। १८ उपचार, १ आशन, २ आवाहन, ३ अर्घ्य, ४ पाद्य, ५ आचमन, ६ स्नान, ७ वस्त्र, ८ उपवीत, ९ भूषण,

१० गन्ध, ११ पुष्प, १२ धूप, १३ दीप, १४ नैवेद्य, १५ जल, १६ माला सुगन्धित द्रव्य, १७ नमस्कार, १८ विसर्जन षोड़शोपचार आशन स्वागत पाद्य अर्घ आचमन मधुपर्क स्नान वस्त्र भूषण गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य प्रणाम दशोपचार पाद्य अर्घ आचमन गन्ध पुष्प नैवेद्य धूप दीप प्रणाम—पञ्चोपचार गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य।

आशन —

सर्वसिद्ध्यै व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्ध्यै मृगाजिनम्।
वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं श्री विवर्धनम्॥
कौशेयं पौष्टिकं ज्ञेयं कम्बलं दुःख नाशनम्!

आशन मुख्य आठ प्रकारके हैं स्वस्तिक, गौमुख, पद्म, वीर, सिंहाशन, भद्राशन, मुक्ताशन और मयूराशन पूजाके लिए पद्माशन सिद्धाशन मुख्य हैं।

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभय जरा मृत्यु हरिणीं।
विपद्यन्ते विश्वे विधिशत मखाद्यादिविषदः॥
करालं यत्क्ष्वेलं कवलितवतः कालकलना।
न शम्भोस्तन्मूलं तवजननि ताटङ्क महिमा २८

टीका :—

हे जननी! ज़रा और मृत्यु भयको दूर करनेवाला अमृतपान करनेपर भी ब्रह्मा और इन्द्रादि देवता विलय हो जाते हैं।

मृत्यु लानेवाला, विष पान करनेपर भी शिवको मृत्यु नहीं हुई, यह तुम्हारे ताटङ्क (सौभाग्यभूषण जो कानमें पहना जाता है) की महिमा है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें उपाशकको आपत्तिसे रक्षा और दीर्घायु देनेवाले कामबीजके जपका माहात्म्य दिखाया है, देवता अमृतपान करनेपर भी अमर न हो सके शिवने समुद्र मथनसे विष पान किया तिसपर भी अजर अमरत्वको शिवने प्राप्त किया है। हे भगवति! यह तुम्हारे ताटङ्ककी महिमा है ताटङ्क सौभाग्य-भूषण जो सुमङ्गलिरूप विवाहपर वधूको पतिके हाथसे पहनाया जाता है। अर्थात् भगवती सतीके साथ विवाह होनेके कारण शिव अजर अमर हैं। भारतवर्षमें विवाह समयपर सुमङ्गलि भूषण वधूको विवाह वेदीमें पहनाया जाता है जिससे वह सौभाग्यवती रहे।

इस श्लोकका बड़ा गहन अर्थ है इसपर ध्यान देनेकी बात है एक तो इस आर्य देशकी वैज्ञानिक स्थितिका संस्कृतिका ज्ञान होगा, दो शब्द प्रायः सब शास्त्रोंमें आये हैं, योग-क्षेम, योग अप्राप्य वस्तुको प्राप्त करता है क्षेम प्राप्त वस्तुकी रक्षा करनेको कहते हैं, इस देशमें यह जानते थे स्त्रियोंमें सोमकलारूपी अमृत की प्रधानतासे क्षमसत्ता रहती है, इसलिए सब सम्पत्ति अपना शरीर तक स्त्रियोंकी रक्षामें रखते थे। सोमप्रधाना स्त्री कभी वैधव्य दुःख नहीं देखती है वात्स्यायन सूत्रोंमें इसका वर्णन है।

किरीटं वैरिञ्चं परिहर पुरः कैटभ भिदः।
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारि मकुटम् ॥
प्रणम्रे ष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनम् ।
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते ॥२६॥

टीका :—

नम्र हुए ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र कैलासमें तुम्हारे चरण कमलोंमें स्थित रहते हैं । जब शिवके आते ही अभ्युत्थानके लिये तुम उठकर आगेको दौड़ती हो, उस समय जब देवता तुम्हारे चरणों में प्रणाम करते है, देवताओंके मुकुट तुम्हारे पादतलोंमे लग कर चूर्ण न हो जायें, उस समय तुम्हारी सखियोंका उन देवताओं को सावधान करनेके निमित्त जो वाक्य निकलते हैं। उस उक्तिकी जय हो।

भाष्य :—

इस श्लोकमें शङ्करको देवाधिदेव और स्त्रीकी उच्चाति उच्च शक्ति होने पर भी पतिका आदर करनेका निर्देष किया गया है। भगवतीके चरणोंमें किरीट मुकुट धारण कर जब ब्रह्मादि देवता प्रणाम कर रहे थे, उस समय जैसे ही शिवका आगमन भगवती ने सुना तो वैसे ही उठकर महादेवके स्वागतके लिये वेगसे जा रही थी; तो द्वारपालिका शक्तियोंने ब्रह्मादि देवताओंको अपने अपने मुकुट सम्हालनेके अर्थ निर्देष किया कि कहीं शीघ्रतामें

तुम्हारे मुकुटों पर पांव न पड़ जायें। इसलिए तुम अपने-अपने मुकुटोंकी सावधानीसे रक्षा करो।

भारतवर्षमें यह सदाचार प्रचलित है कि जब पति घर आवें तो धर्मपत्नी उठ कर उसको अभ्युत्थान द्वारा स्वागत करे। यह दिव्याचार (Divine Courtesy) माना जाता है। यह उन स्त्रियोंका आचरण है जो धर्मपत्नी हैं।

इस श्लोकमें कितनी सुन्दरतासे भगवतीकी महिमाका वर्णन करतेहुए देह सम्बन्धसे पति-पत्नि भावके सदाचारका वर्णन किया गया है, इन श्लोकोंमें उच्चकोटिके देव मनुष्योंकी संस्कृति और व्यवहार अनुकरणीय है। योगमार्गमें कुल कुण्डलनी जब शिव तत्वमें मिलती है उस समय व्यवहार शून्य हो जाता है चेतनाशक्तिके प्रकाशसे आरोह अवरोह क्रमसे चक्रस्थ देवता और शक्तियोंके प्रकाशकी सावधानी, साधकको करनेका बोध दिया गया है।

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाऽद्याभिरभितो ।
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयतियः ॥
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयन समृद्धिं तृणयतो ।
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम् ॥३०॥

टीका :—

अपने शरीरमें उत्पन्न हुई रश्मियां-अणिमादि सिद्धियां

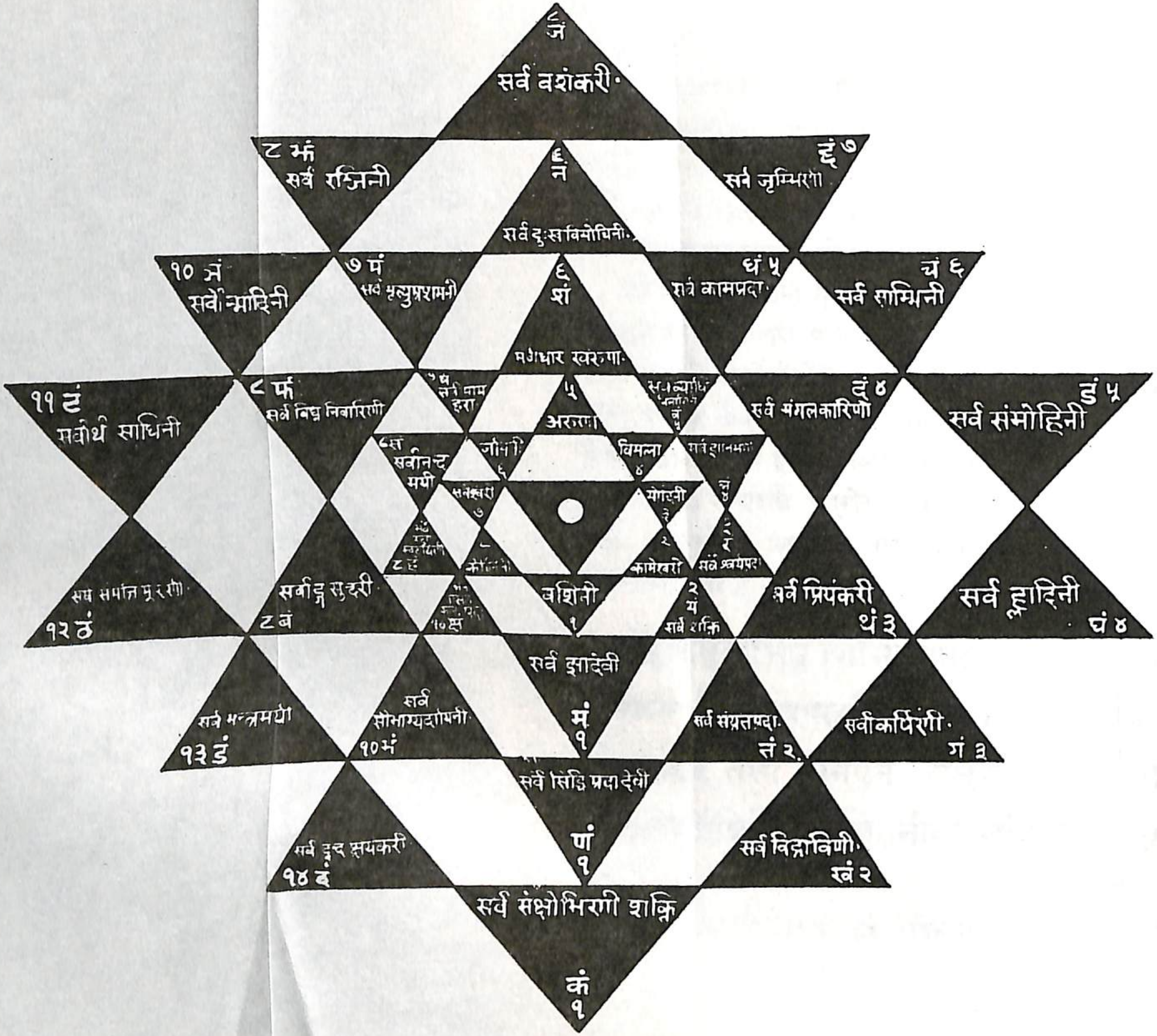

इस चक्र में ४५ कोष्ठ तथा उनके आवरण देवताओं के नाम दिये गये हैं। इसके बाहर अष्टदल और षोड़शदल है। इन दलों के देवताओं के नाम दूसरे चक्र में दिये गये हैं।

जिसको नित्य सेवन करती हैं। जो त्रैलोक्यकी समृद्धियोंको तृणके समान समझता है, तुममें "मैंश्रुहं" अपनी भावना करता है अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मीति" यह जिसकी भावना हो गई है इसमें आश्चर्य ही क्या है कि श्मशानकी प्रज्वलित अग्नि उसके लिये निराजन करनेवाली होती है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें नवयोन्यात्मक 'श्रीयन्त्रकी' पूजाका चमत्कार अर्थात् आत्मभाव होनेका निर्देश है। जो उपासक नित्य श्रीयन्त्र (नवयोन्यात्मक) का आवरण देवताओंके साथ पूजा करते हैं। भूगर्भ या भूप्रस्तारमें जो बृत्त हैं उनमें आठ सिद्धियां हैं यथा—(१) अणिमा, (२) लघिमा, (३) महिमा, (४) वशित्व, (५) ईशत्व, (६) प्रकाम्य, (७) प्राप्ति, (८) सर्व-कामप्रदायनीमें आठ सिद्धियां श्री यन्त्रके प्रथम चतुष्कोणमें हैं। और आठ मातृका—(१) ब्रह्मी, (२) माहेश्वरी, (३) कौमारी, (४) वैष्णवी, (५) वाराही, (६) माहेन्द्री, (७) चामुण्डा और (८) महालक्ष्मी—ये आठ द्वितीय चतुष्कोणमें हैं। आगे दश मुद्राएं—(१) सर्व संक्षोभिणी, (२) सर्व विद्राविणी, (३) सर्वाकर्षिणी, (४) सर्ववसंकरि, (५) सर्वोन्मादिनी, (६) सर्व महान्कुशा, (७) सर्व खेचरी, (८) सर्ववीजा, (९) सर्वयोनि और (१०) सर्वत्रिखण्डा—ये तीसरे चतुष्कोणमें हैं। अब सोलह देवता षोड़श दलोंमें है,—(१)

कामाकर्षिणी, (२) बुध्याकर्षणी, (३) अहंकाराकर्षिणी, (४) शब्दाकर्षिणी, (५) स्पर्शाकर्षिणी, (६) रूपाकर्षिणी, (७) रसाकर्षिणी, (८) गन्धाकर्षिणी, (९) चित्ताकर्षिणी, (१०) धैर्याकर्षिणी, (११) स्मृत्याकर्षिणी, (१२) नामाकर्षिणी, (१३) वीजाकर्षिणी, (१४) आत्माकर्षिणी, (१५) अमृताकर्षिणी, और (१६) शरीराकर्षिणी—ये १६ कमलोंमें आवरण देवता भ्रू प्रस्तार यन्त्रमें पूजे जाते हैं। अब आठ देवता—(१) अनङ्गकुसुमा, (२) अनङ्ग मेखला, (३) अनंग मदना, (४) अनंग मदनातुरा, (५) अनंगरेखा, (६) अनंगवेगिनी, (७) अनंग अंकुशा, (८) अनंगमालिनी—ये अष्ट दलमें पूजने योग्य वहांके अधिष्ठात्री देवता हैं। अब १४ देवता चतुर्दशारमें—१ सर्व संक्षोभिणी २ सर्वविद्राविणी, ३ सर्वाकर्षिणी, ४ सर्वाल्हादिनी ५ सर्वसंमोहिनी, ६ सर्वास्तम्भिनी, ७ सर्वाजृम्भिणी, ८ सर्ववशंकरी, ९ सर्वरञ्जनी, १० सर्वोन्मादिनी, ११ सर्वार्थसाधिनी, १२ सर्वसम्पत्तिपूर्णी १३ सर्वमन्त्रमयी और १४ सर्वद्वन्दक्षयंकरीये १४ चतुर्दशारमें आवर्ण देवता पूजे जाते हैं। अब बहिर्दशार में पूजे जानेवाले देवताके नाम ये हैं—१ सर्वसिद्धिप्रदा, २ सर्वसम्पत्प्रदा, ३ सर्वप्रियंकरी ४ सर्वमङ्गलकारिणी, ५ सर्वकामप्रदा, ६ सर्वसौभाग्यदायिनी, ७ सर्वमृत्युप्रशमनी, ८ सर्वविघ्ननिवारिणी, ९ सर्वाङ्ग सुन्दरी और सर्वदुःखविमोचिनी ये वहिर्दशारमें हैं। अब अन्तर्दशारमें—१ सर्वज्ञाना, २ सर्वशक्ति, ३ सर्वैश्वर्यप्रदायिनी, ४ सर्वज्ञानमयी ५ सर्वव्याधिविनाशिनी ६ सर्वाधार-

स्वरूपा, ७ सर्वपापहरा ८ सर्वानन्दमयी ९ सर्वरक्षास्वरूपिणी, १० सर्वेप्सितफलप्रदायिनी ये अन्तर्दशारके आवर्ण देवता हैं। अब आठ कोणके ८ देवता—१ वशिनी, २ कामेशी, ३ मोदिनी, ४ विमला, ५ अरुणा, ६ जयिनी, ७ सर्वेशी, ८ कौलिनी ये अष्टकोणमें पूजने योग्य हैं। अब त्रिकोणमें तीन देवता कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमाला ये त्रिकोणमें पूजनीया हैं। और बीचमें त्रिपुरा सुन्दरीका पूजन होता है। ये भगवतीकी रश्मियां हैं जिनका वर्णन १४ वें श्लोकमें किया गया है। ये योगिनी देवीके स्वरूपवाली हैं।

इस प्रकार जो त्रिपुरा सुन्दरीकी उपासनासे सिद्धि प्राप्त कर लेता है उसको आत्म साक्षात्कार अर्थात् उसको शिवत्वकी प्राप्ति हो जाती है। इसमें आश्चर्य ही क्या है। "त्रिनयनस्मृद्धिं" अर्थात् त्रैलोक्यकी विभूतिको वह तृणवत् समझता है। और वह जो महाप्रलयकी चितारूपी प्रलयाग्नि है वह उसके लिए निराजन अर्थात् (आर्ती) को विधिमात्र है अर्थात् वह साक्षात् शिवरूप हो जाता है। इस श्लोकमें 'प्रणव' ओंकार बीज निकलता है। "तृणयतो" से "ओ" और "विधिं" से अनुस्वार है। भगवती षोडशीका उपासक ब्रह्म साक्षात्कार "अहं ब्रह्मास्मि" तीन लोककी विभूतिको तुच्छ समझता है अर्थात् उसे पूर्ण त्याग हो जाता है वह अजर अमर ब्रह्मभाव प्राप्त कर चिताग्नि भी उसका नीराजन करती है अर्थात् वह मृत्युके पाससे छूट जाता है।

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकल मतिसन्धाय भुवनं ।
स्थितस्तत्तत्सिद्धि प्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ॥
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिल पुरुषार्थैक घटना -
स्वतंत्रंते तंत्रं क्षितितल मवातीतरदिदम् । ३१

टीका :-

पशुपतिने चतुषष्ठी तन्त्रोंसे चतुर्दश भुवनको सम्पन्न किया उनकी सिद्धि पृथक्-पृथक् जातिके तन्त्रमें रखी है पुनः तुम्हारे अनुरोध करनेसे सम्पूर्ण पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) जिस एक ही तन्त्रसे सिद्ध हो वह स्वतन्त्र तुम्हारा तन्त्र पृथ्वीमें प्रकट किया है।

भाष्य—

इस श्लोकमें पशुपति शब्द आया है। शैवागम और पाशुपत शास्त्रमें आठ प्रकारके पाश बताये हैं उनसे जबतक छुटकारा न हो तबतक पाशमें बद्ध होनेसे पशु संज्ञा होती है वेदोंमें और आगममें पशु शब्दका कितने ही स्थानोंपर प्रयोग आया है घृणा, लज्जा + + + + "अष्टौ पाशा प्रकीर्तिताः पाश बद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः" "पशूनांपतिं पावनं पावनानाम्" प्रायः शिवके नाममें पशुपति शब्द आता है अर्थात् जन्म मरणरूपी पाशसे छुटानेवाले इस प्रकरणमें जबतक उपासना द्वारा दैवी शक्तिका विकाश न हो तबतक मनुष्य पशु है।

अन्यत्र कहा भी है—"भोजन, शयन, भय, गृहस्थ ये भाव तो पशु में भी है केवल भागात्मक जीवन मनुष्य का पशु जीवन है। "धर्मो हितेषा मधिको विशेष: धर्मेण हीना: पशु भः समाना:।" एक मात्र धर्म हो एक विशेष भावना मनुष्य में मनुष्यत्व कहलाने की है। धर्म न होने से वह मनुष्याकृति होने पर भो पशु समान हैं। चतुषष्टी तन्त्रोंमें षट् कम की सिद्धियां होने से यह भ्रम होता है कि यह एक प्रकार अविद्या जाल का विस्तार है। सिद्धियां भोगात्मक जीवन के बन्धन को देनेवाली होती हैं। तन्त्र सिद्धि से भोगों की ओर ही झुकाव होता है। यह धारणा भ्रमात्मक है यतः पशुपति ने संसार के कल्याणार्थ इस विद्या का आविष्कार किया है। उपासना से मनुष्यों में देवत्व तथा शान्ति की प्राप्ति साधन है। उपासना का क्रम आदि काल से अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ से है। यथा गीता—

"सह यज्ञा: प्रजा सृष्ट्वा पुरो वाच प्रजापति।
अनेन प्रसविष्वध्वमेषवोस्तिष्ट काम धुक्॥

यज्ञ (उपासना) के साथ साथ ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की है और यह आदेश किया की, इस यज्ञकर्म के साथ संसार को चलाओ यह तुम्हारे अभिलाष को दुहनेवाली उपासना रूपी कामधेनु है, जो इच्छा हो इससे सफल हो जायगी। तन्त्र शास्त्र में भगवती की उपासना, दक्षिण, वाम, मिस्र तीन तरह से वर्णित की है। इन सब उपासनाओं के अर्थ का पयवसान अन्तर्याग में है, उपासना के मार्गों का विधान जाति, देश,

काल अवस्था, संकल्प पर निर्भर है। यह भेद त्रिगुणात्मक उपासना परक हैं। गुणातीत में भेद नहीं है। "स्वतन्त्रं ते तन्त्रं," से गुणातीत मोक्ष प्रतिपाद्य श्री विद्या की उपासना से तात्पर्य है; जो स्व (आत्मा) उसका (तन्त्र) विधान मोक्ष को प्रतिपादन करता है। पूर्व भाष्यकारों ने स्वतन्त्र से भिन्न अर्थ किये हैं, किसी ने वामकेश्वर तन्त्र किसी ने कुलार्णव इत्यादि परन्तु वस्तुतः भगवती के अनुरोध से जो सब के अन्त में शिव ने पृथ्वीतल पर जिस तन्त्र को प्रकट किया है वह आत्म दर्शन रूपी श्री विद्या का तन्त्र श्रेय (मोक्ष) प्रधान है। जैसा कि हादि विद्या में आया है। जो जो तन्त्र शिव ने संसार में प्रकट किये हैं उनके ६४ तन्त्रों के नाम ये हैं—"महामाया, योगिनी जाल सम्वरण, तत्व सम्वरण, सिद्धभैरव, वटुक भैरव, कङ्काल भैरव, काल भैरव, कालाग्नि भैरव, योगिनी भैरव महाभैरव, शक्ति भैरव इनमें आठ भैरव तन्त्रों में कापालिक सिद्धान्तका विस्तृत वर्णन है। जिससे भूमि में छिपे हुये धन का पता लगाने की विधि पूर्णतया लिखी है। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा शिवदूती, इन आठ तन्त्रों में आठ शक्तियों का वर्णन तथा श्री विद्या की उपासना और उसके तत्वके सम्बन्धमें सब रहस्य दिखाया है।

ब्रह्म यामल, विष्णु यामल, रुद्र यामल, लक्ष्मी यामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल, जयद्रथयामल इन आठ यामलों में काम्य अनुष्ठानों का विशदीकरण है। चन्द्रज्ञान,

इसमें षोड़श नित्याओं का वर्णन है। भेरुण्डा, भगमालिनी शिवदूती आदि। २६ मालिनी विद्या, ३० महा सम्मोहन, ३१ वाम जुष्टा, ३२ महादेव, ३३ वातुला, ३४ वातुलोत्तरा, ३५ कामिका, ३६ हृदय भेद तन्त्र, ३७ तन्त्र भेद, ३८ गुह्य तन्त्र, ३६ कलावाद, ४० कलासागर, ४१ कुण्डिका मत. ४२ मतोत्तरा, ४३ विनाख्या, ४४ तारोत्तला, ४५ तरोत्तलोत्तरा, ४६ पञ्चामृत, ४७ रूपभेद ४८ भूताड्डामरा, ४६ कुलसार, ५० कुलाद्दिशा, ५१ कुल चूड़ामणि, ५२ सर्व ज्ञानोत्तरा, ५३ महाकालिमता, ५४ अरुणेश्वर, ५५ मोदिनीशा, ५६ विकुण्ठेश्वर, ५७, पूर्वाम्नाय, ५८ पश्चिमाम्नाय, ५६ दक्षिणाम्नाय, ६० उत्तराम्नाय, ६१ निरुत्तरा-म्नाय, ६२ विमला, ६३ विमलोत्तरा, ६४ देवीमाता, अन्तिममाता तन्त्रों में जो तन्त्र हैं उनको जैनधर्म ने भी अपनाया है। इन ६४ तन्त्रों के नाम वामकेश्वर तन्त्र में है। सामयिक लोग शुभागम पञ्चक और वशिष्ठ संहिता, सुख संहितादि पांच संहिताओं का भो निर्देश करते हैं। "स्वतन्त्रं तेतन्त्रं" यह स्वतंत्र तन्त्र सब तंत्रों के अनन्तर पृथ्वीतल में शिव ने प्रकट किया है। भोगों को असार दुःख रूप अनुभव कर अन्त में वैराग्य हो जाता है, अन्तिम ज्ञान केवल आत्म ज्ञान है। इसी की प्राप्ति के लिये मनुष्य जन्म है; भोगादि तो पशु योनियों में भी है, परन्तु मोक्ष ही एक मात्र मानव संसार का ध्येय है। स्वतन्त्र तन्त्र शब्द से किसने वामकेश्वर तंत्रादि पृथक पृथक तंत्र बनाये हैं, परन्तु इस श्लोक में इदं ते स्वतन्त्रं तन्त्रा में इदम

शब्द से श्रीविद्या के तंत्र से ही तात्पर्य है अखिल पुरुषार्थ की घटना श्रीविद्या से ही होती है जो अग्रिम "शिवः शक्तिः कामः" इस श्लोक से दिखाई है।

शिवः शक्तिः कामः क्षिति रथ रविः शीत किरण
स्स्मरोहंसः शक्र स्तदनु च परा मार हरयः
अमी हृल्लेखा भिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता।
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामा वयवताम् ॥३२॥

टी०:—

हे जननि? तीन खण्डों के अन्तिम में हृल्लेखा बीज के संयोग से ये वर्णन शिव (ह) शक्ति (स) काम (क) क्षिति (ल) रवि (ह) शीत किरण (स) स्मर (क) हंस (ह) शक्र (ल) पर (स) मार (क) हरि (ल) तुम्हारे मन्त्रमय शरीर के अवयव रूप हैं।

"पूर्व श्लोक में जो स्वतन्त्रं ते तन्त्रं" से निर्देश किया गया है वही षोड़शी विद्या (श्री विद्या) जिसके लिए विद्ययामृतमश्नुते उपनिषद् में बताया है, उसीका वर्णन है, जो विद्या शिव इस शब्द से भगवत पादने प्रारम्भ की हैं, इस ग्रन्थ का प्रारम्भ भी शिव शब्द से ही हुआ है यथा "शिव शक्त्या युक्तः" और भक्ति योग दर्शक शक्ति का शिवतत्व में पिगल जाना भी ५१ श्लोक में शिवे "श्रृङ्गाराद्रा" शिव शब्द से दृष्ट वर्णन में दिखाया है, इत्यादि स्थलों पर विचार और ध्यान लगाने से यह निष्कर्ष निकलता है

कि भगवत पाद का सौन्दर्य लहरी में मोक्ष प्रति पाद्य श्रीविद्या की उपासना से तात्पर्य है। जो स्वतन्त्रं ते तन्त्रं से तात्पर्य है। भगवति के मन्त्रमय सूक्ष्म मूर्ति का वर्णन श्लोक के तीन खण्डों में प्रदर्शित किया है, शिव (क) शक्ति (इ) काम (ए) क्षिति (ल) यह प्रथम खण्ड हुआ। क इ ए ल। द्वयि खन्ड में रवि (ह) शीतकिरण (स) स्मर (क) हंस (ह) ह स क ह। अब तृतीय खण्ड, परा (स) मरा (क) हरि (ल) स क ल ह्रीं प्रत्येक खण्ड में हृल्लेखा ह्रीं लगाने से पञ्चदशाक्षरी विद्या हो गई इसमें रमाबीज श्रीं लगाने से यही पञ्चदशाक्षरी षोड़षी के रुपमें हो जाती है षोड़श नित्याओं का ज्ञान भी यहां से हो जाता है।

सहस्रदल में जो चन्द्रकला है उसे पराकला या शुद्ध ज्ञान कला कहते हैं। सहस्रदल से चन्द्रमा कि किरणें विशुद्ध चक्र में प्रकाशित होती है वही षोड़शदलों में षोड़श नित्या हैं, यही १५ कलाओं का मौलिक निदान है पञ्चदशा कलाओं में रमाबीज (स् र् इ् अनुस्वार) मिलाने से श्रीं-षोड़शी श्री विद्या बन जाती है। विशुद्धि चक्र में १६ नित्या है रमा और हृल्लेखा के पृथक करने से द्वादशाक्षरी हो जाती है। ये अनाहत द्वादश दलात्मक में द्वादशादित्य का बोधक है। जो द्वादश मासों से सम्वत्सर बनाते हैं।

मानव शरीर पर रात दिन सूर्य, चण्द्रमा का प्रभाव निरन्तर पड़ता रहता है। जिससे साधक को योग क्रिया में सहायता मिलती रहती है। यद्यपि संसार की रचनात्मिका शक्ति सौर

मण्डल से वर्णन की है परन्तु सूर्य शब्द से सूर्य तथा चन्द्रमा का अर्थ है यथा "अग्नि सोमात्मकं जगत्" सूर्य पिंगला द्वारा इस मानव शरीर रूपी यन्त्र को गरम कर क्रिया की ओर लेजाता है. चन्द्रमा ईड़ा नाड़ी के द्वारा सम्पूर्ण नाड़ीयोंमें सोम सञ्चार करता रहता है, जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों मूलाधार में मिल जाते हैं, अर्थात् अमा रूप में हो जाते हैं, उस काल में कुण्डलनी शक्ति सुषुम्ना के रन्ध्र में निश्चेष्ट रहती है। बैन्दव स्थान से जो अमृत निस्सरण होता जाता है वह सब कुण्डलनी के मुख में चला जाता है। कुण्डलनी की सुप्तदशा में अन्धकार कृष्ण पक्ष के समान हो जाता हैं। जब योगी पूरक रेचक की सीद्धि से ईड़ा पिंगला नाड़ी पर अधिकार कर लेता है तब कुम्भकी योग से सम्पूर्ण नाड़ीयों की गति को अवरोध कर कुण्डलनी को उल्टा कर वैन्दव स्थान से प्लावित अमृत को योगी स्वयं पान कर लेता है, जो अजर अमरता का कल्प है। कुन्डलनी का उत्थान यद्यपि पुस्तक मात्र के पढ़ने से होना असंम्भव है तथापि शास्त्र में जो कुण्डलनी का स्वरूप वर्णन किया है इस मार्ग के जिज्ञासुओं के लिए उसकी रुप रेखा प्रासंगिक रूप में दर्शाते हैं। "तस्योर्द्ध्वे विष्तन्तु सोदर कला सूक्ष्मा जगन्मोहिनी ब्रह्मद्वार मुखं मुखेन मधुरं सं छादयन्ति स्वयं शङ्खा वर्त निभानवीन चपला माला विलासास्पदं सुप्ता सर्प समा शिवोपरि लसत् सार्द्ध त्रिवृत्ता कृति। यह सूक्ष्माति सूक्ष्म कुन्डलनी साढ़े तीन आवर्त कर मूलाधार में शिव लिंग पर

लिपटी रहती हैं शंख के आवर्तों की तरह इसका रूप है, बिजली की चमक सी इसकी चंचल चमक है यह अपने मुख से ब्रह्म द्वार को ढके हुई रहती है और अमृत जो सहस्रार से निकलता है वह इसके मुख में चलाजाता है। मनुष्य के शरीर में नहीं टपक सकता है। योगी जन कुण्डलनी के जागरण करने से उसका मुख नीचे की ओर कर स्वयं अमृत को पान करते हैं। जैसे तन्त्र में कहा है "एव मभ्यस्य मानस्तु अहन्यहनि पार्वति जरा मरण दुःखाद्यै मुच्यते भव वन्धनात्" इस प्रकार नित्य अभ्यास कर योगी जन उस अमृत के पान करने से जरा मरण दुःख से छुटकारा पाकर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। या इस प्रकार देखिए जो मातृका वर्णमाला ५० अक्षरों की है, यह मूलाधार में आज्ञाचक्र तक ५० दलों में ५० अक्षरों की बनती है। यथा—मूलाधार चार वर्ण वं शं षं सं स्वाधिष्ठान में - बं भं मं यं रं लं ये ६ वर्ण प्रकट होते हैं। मणिपूर दशदलात्मक चक्रमें से—डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं द्वादशदलात्मक, अनाहत चक्रमें से—कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं, विशुद्ध में से—अं आं इ ई उ ऊं ऋ ॠं ऌ ॡं ए ऐं ओ औं अं अः षोड़श स्वर प्रादुर्भाव होते हैं। भ्रूमध्य आज्ञा में से—हूं क्षं, इन अक्षरों का जैसे भिन्न तरह से प्रकाश होता है वैसे भिन्न प्रकार के रंगों की अभिव्यक्ति इन में है। ये ५० वर्ण सोम अग्नि, सूर्य भेद से तीन प्रकार के हैं। शारदा तिलक में लिखा है—

विना स्वरैस्तु नान्येषां जायते शक्ति रञ्जसा।
शिवशक्त्यात्मकं प्राहु स्तस्मान्वर्णान्मनीषिणः॥

स्वर शक्ति के अक्षर व्यञ्जन शिवाक्षर हैं, विना स्वरों के संयोग से कोई व्यञ्जन अक्षर मुख से बाला नहीं जाता है। इन्हीं पचास वर्णों से पञ्च महाभूतों की सृष्टी हुई है। अतः पृथ्वी आदि पञ्च महाभूतों के पृथक् २ अक्षर हैं. जिनमें परस्पर मित्र-शत्रु, उदासीनता रहती है। मन्त्राक्षरों को साधक के नामाक्षरों के साथ जब गुरु मिलता है, उस समय बड़े विचार से यह देखना चाहिये, कहीं मन्त्र के अक्षर उपासक के नाम के अक्षरों के साथ शत्रु वर्ग के तो नहीं हैं, जिस मन्त्र के साथ अपने नाम के अक्षर शत्रु हों वह मन्त्र बहुत हानिकारक होता है। भूल से भी ऐसे मन्त्र को न जपना चाहिये। "वाय्वग्ने भूजलाकाशा पञ्चाशल्लिपयक्रमात्" वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, आकाश के अक्षर पृथक् २ हैं।

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं अः
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

अग्नि जल के अक्षर परस्पर शत्रु हैं, वायु अग्नि का मित्र, जल भूमि का शत्रु हैं, आकाश सब का मित्र हैं।

५० मातृका तीन ग्रन्थियों में विभक्त है। रुद्रग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि, ब्रह्मग्रन्थि। इस प्रकार मन्त्राक्षर और चक्र परस्पर सम्वन्धित हैं। हृल्लेखा और रमावीज विन्दु में त्रिकोण के रूप में हैं जो चार शिवचक्रों को प्रकट करते हैं। अ से क्ष तक जो वर्ण हैं वे प्रत्याहार के द्योतक हैं। और अर्धस्वर और उष्मवर्ण रमा वीज के विन्दु O में हैं। हृल्लेखा त्रिकोण △ में है। ४ अर्ध स्वर और उष्मवर्ण श्रीचक्र के अष्टकोण में हैं। क से म तक स्पर्शवर्ण अन्तदशार और बहिर्दशार (द्वि दशार) में हैं।

बारह स्वर अनुस्वार और विसर्ग ये १४ चतुर्दशार में है, जो भगवती का मन्त्रमय शरीर तीन भागों में ऊपर दिखाया है, इसी प्रकार श्रीचक्र में सोम, सूर्य, अग्नि, का समावेश है, और मन्त्रों में जो षोड़श सोमकला दिखाई है, वह वस्तुतः सोम का स्थान है, और २४ या १२ कला बताई है वे सौर्य खण्ड की कला है, यह सूर्य का स्थान है। इसी प्रकार मन्त्र में जो १० कलाओं का वर्णन है, ये आग्नेय कला है, अग्नि का स्थान है।

इस प्रकार मन्त्र, यन्त्र, कलाओंका पारस्परिक सम्बन्ध

कलाओं के नाम—१ दृश्य, २ द्रष्टा, ३ दर्शन, ४ विश्व, ५ रूपा ६ सुदर्शन, ७ आप्यमान, ८ आप्यायमान, ९ आप्या, १० सुन्तर, ११ ईला, १२ आमाना, १३ आपूरका, १४ पुरा, १५ पूर्णमासी, १६ चित्कला। इन कलाओं के अधिष्ठात्री देवता

षोड़शनित्या हैं। त्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता; कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिनी और चितकला। और तत्व इस प्रकार से है—"शिवशक्ति, माया, सुधा, बिद्युत्, जल, तेज, वायु, मन, पृथ्वी, आकाश, विद्या, महेश्वर, परातत्व, आत्मतत्व, सदाशिवतत्व, साधकतत्व ये षोड़श कलाओं में षोड़शतत्व क्रमसे हैं।

लोपामुद्रा विद्या जो पहले खण्ड में आई हैं। वह इस प्रकार है:—शिव - ह शक्ति - स काम - क क्षिति - ल। अन्य खण्डों में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। दुर्वासा ऋषि ने जिस त्रयोदशाक्षरी विद्या की उपासना की थी वह भी इसी श्रीविद्या के अन्तर्गत थी।

यह प्रायः हादिविद्या के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसका वर्णन त्रिपुरतापिनी उपनिषद् में इस प्रकार है:—

तान्होवाच भगवान् श्रीचक्रं व्याख्यास्याम :—त्रिकोणं-त्र्यस्तंकृत्वा तदन्तर्मध्य वृत्तमानयष्टि रेखा माकृष्य विशालं नीला-ग्रतो योनिं कृत्वा पूर्वयोन्यग्ररूपिणीं मानयष्टिंकृत्वा तां सर्वोर्ध्वां नीत्वा योनिंकृत्वाद्यं त्रिकोणंचक्रं भवति। द्वितीय मन्तरालं भवति। तृतीयमष्टयोन्यङ्कितं भवति। अथाष्टचक्रद्यन्त विदि-क्कोणाग्रतो रेखांनीत्वा साध्याद्याकर्षण बद्धरेखां नीत्वेत्येव मथोर्ध्वं संपुटयोन्यङ्कितं कृत्वा कक्षाभ्यऊद्र्ध्वगरेखा चतुष्टयंकृत्वा यथा-क्रमेण मानयष्टि द्वयेन दशयोन्यङ्कितं चक्रं भवति। अनेनैव प्रका-

रेण पुनर्दशारचक्रं भवति। मध्यत्रिकोणाग्र चतुष्टयाद्रेखा चाग्रकोणेषु संयोज्य तद्दशारांशतोनीतां मानयष्टिरेखां योजयित्वा चतुर्दशारंचक्रं भवति। ततोऽष्टपत्र संवृत्तं चक्रं भवति। षोड़श-पत्र संवृत्तं चक्रं चतुर्द्वारं भवति। ततः पार्थिवं चक्रं चतुर्द्वारं भवति। एवं सृष्टियोगेन चक्रं व्याख्यातम्।

श्रीचक्र का सृष्टिक्रम से निर्माण करने का विधान उपरोक्त वेद मन्त्रों में बताया गया है। बामा ज्येष्टा गौरी अम्बिका ये श्रीचक्र की चार शितिकण्ठरूपा योनियां है, इच्छा, ज्ञान, क्रिया शान्ता, परा ये पांच ऊपरवाली योनी शिवयुवति नामवाली है। यह नवयोन्यात्म श्रीयन्त्र आनन्दभैरव और महाभैरवी मिल कर हुआ। ये दोनों परमानन्द परमज्ञान में एकरस है। ये दोनों एक दूसरे से भिन्न नहीं एक मूर्ती ही हैं।

सृष्टी के सृजन पालन में शिवयुवति नाम की पांच योनियां श्रीयन्त्र के ऊपर की ओर रहती है। संहारकाल में शितिकण्ठ नाम की चार योनी ऊपर की ओर रहती है। इनका पारस्पर ऐक्य है, क्रोड़तन्त्र में आया है। श्रीयन्त्र में त्रिकोण के मध्य बिन्दु को भगवती त्रिपुरसुन्दरी का मुख, दो नीचे की रेखा या बिन्दु चन्द्र सूर्य बिन्दु स्तनयुग्म बताये हैं। यथा—"बिन्दु-द्वयन्तु तन्मध्ये विसर्गरूप मव्ययम्। तन्मध्ये शून्य देशेतु शिव परममव्ययः॥ तथान्यत्र—

माता मानं मेयं बिन्दुत्रय भावना तृतीये च। वीजत्रय योनित्रय शक्तित्रय मातृका तृतीयश्च॥ इति कामकला विद्या विदितायेन स भवति त्रिपुरसुन्दरी रूपः।

नवयोन्यात्मक श्रीचक्र का प्रतिलोम क्रम से वर्णन करते हैं :—

१ पहला चक्र त्रैलोक्य मोहन हैं:—इसमें अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं और सर्व संक्षोभिणि आदि दश शक्तियां भी प्राप्त होती है। इस चक्र में त्रिपुर सुन्दरी अधिष्ठातृ देवता हैं। यह प्रकटचक्र है।

२ सर्वाशा पूरक चक्र है—कामा कर्षिणी आदि १६ शक्तियां इसमें रहती हैं यह गुप्त चक्र है। इसका रहस्य गुप्त है। इस चक्र की त्रिपुरेश्वरी अधिष्ठातृ देवता है। इसका पूजन सर्व विद्रावणी मुद्रा से किया जाता है।

३ सर्व संक्षोभण चक्र—इसमें अनङ्ग कुसुमादि ८ आठ गुप्त रुप से रहते हैं। त्रिपुरा सुन्दरी अधिष्ठातृ देवता हैं। सर्वा कर्षिणी मुद्रा से इसका पूजन किया जाता है।

४ सर्व सौभाग्य दायक चक्र—सर्व संक्षोभिणी आदि ७२ शक्तियां इसमें रहती है। त्रिपुर वासिनी इसकी अधिष्ठातृ देवता हैं। सर्व वशंकरणी मुद्रा से इसका पूजन होता है।

५ तुर्य्यान्त चक्र है—इसका सर्वार्थ साधक नाम हैं। सर्व सिद्धिप्रदा आदि १० शक्ति इसमें रहती हैं। त्रिपुरा महा लक्ष्मी इसकी अधिष्ठात्री देवता है। मोहन मालिनी मुद्रा से इसका पूजन होता है।

६ सर्व रक्षाकर चक्र है—महांकुशा मुद्रा से इसका पूजन होता है।

७ सर्व रोग हर चक्र हैं—सर्व वशान्यादि अष्ट शक्ति इसमें है इसका पूजन रहस्यमय है त्रिपुरासिद्धि इसका देवता है, खेचरी मुद्रा से इसका पूजन होता है।

८ सर्वसिद्धिप्रद सायुध्यतुष्यम्भवति इसमें परा और अपरा का रहस्य है त्रिपुराम्वा इसको देव्री है। योग मुद्रा से इसका पूजन होता हैं।

९ सर्वानन्दमय चक्र —कामेश्वरी आदि तीन शक्ति इसमें हैं त्रिपुर सुन्दरी अधिष्ठात्री देवता है। योनि मुद्रा से पुजन होता हैं।

योग कुण्डलि उपनिष्द् में कुण्डली के उत्थान कि विधि इस प्रकार कही है :—

शक्ति कुराडलनी नाम विसतन्तु निभाशुभा।
मूलकन्दं फणाग्रे ण दृष्ट्वा कमल कन्दवत् ॥
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्र समन्विता।
पद्मासनगतेः स्वस्यः गुदमाकुञ्च्य साधक ॥
वायु मुर्द्ध गतं कूर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।
वाटूवाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठान गतोज्वलम् ॥
ज्वलना घात पवनाघातै रुन्तिद्रितोहिराट्।
ब्रह्मग्रन्थि ततोभित्वा विष्णुग्रन्थि भिन्यतः ॥

रुद्रग्रन्थिं चभित्वैव कमलानि भिनक्तिषट् ।
सहस्र कमलेशक्तिः शिवेन सह मोदते ॥
सैवावस्था पराज्ञैया सैवनिर्वृत्ति कारिणी ।

तथाच—

आधार पश्चिमे भागे चन्द्रसूर्यौस्थिरौ यदि ॥
तत्र तिष्ठति विश्वेशो ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ।
आधारे पश्चिमं लिंगं कवाटं तत्रविद्यते ॥
तस्योद् घाटन मात्रेण मुच्यते भव बन्धनात् ।
आधार पश्चिमे भागे मूर्तिस्तिष्ठति संज्ञया ॥
षट् चक्राणि च निर्भेद्य ब्रह्मरन्ध्राद्बहिर्गतम् ।
वाम दक्षेनिरुन्धति प्रविश्यन्ति सुषुम्णया ॥
ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्यान्त स्तेयान्ति परमां गतिम ।
गंगायांसागरेस्नांत्वास्नात्वाचमणिकार्णीकाम् ॥
मध्यनाड़ि विचारस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ।
श्रीशैल दर्शनान्मुक्तिः वाराणस्यां मृतस्यच् ॥
केदारोदक पानेन मध्यनाड़ी प्रदर्शनात् ।
अश्वमेध सहस्रस्य वाजपेय शतस्य च ॥

सुषुम्णा ध्यानयोगस्य कलांनार्हन्तिषोड़शीम् ।
ब्रह्मरन्ध्रे महा स्थाने वर्तते सततं शिवा ॥
चिच्छक्ति परमादेवि मध्यमे सुप्रतिष्ठिता ।
माया शक्ति ललाटाग्रे भागेऽयो माम्बुजंतथा ॥
नादरूपा पराशक्ति र्ललाटस्यतु मध्यमे ।
भागे लिन्दुमयीशक्ति ललाटस्या-परांशके ॥
विन्दुमध्ये चजीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्तते ।
हृदये स्थूलरूपेण मध्यमेन तुमध्यमे ॥

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मना-
र्निधायैके नित्ये निरवधि महा भोग रसिकाः ॥
भजन्तित्वां चिन्तामणि गुण निबद्धा क्षवलयाः ।
शिवाऽग्नौ जुह्वन्तःसुरभिघृतधाराऽऽहुतिशतैः ।३३।

टी०:—

हेनित्ये भगवति तुम्हारे मन्त्रके पूर्व स्मर (क्लीं) योनी (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) इन तीन (वीजाक्षरों) को लगाकर चिन्तामणी (मनका) से बनी हुई अक्ष :माला से यद्वा स्मर क कार योनी ए कार लक्ष्मी हैं इन तीन वीजों को तुम्हारे मन्त्र के पूर्व योग

करने से महान् भोगों के रसिक (उपाशक) इस मन्त्र से गोघृत की शतशः आहुती देते हुए तुम्हारा भजन करते हैं।

भाष्य:—

पूर्व कहे गये (शिवशक्तिः कामः) ३२ श्लोक में जो मन्त्र तीन खण्डों में बताया है, उन मन्त्रों के क्रमशः तीन खण्डों के प्रथम में स्मर कामबीज (क्ल) योनी (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) यद्वा स्मर क, योनो ए, लक्ष्मी ई यह कामराज कूट तुम्हारे मन्त्र के साथ अनुलोम विलोम से लगाकर जप करते हैं। इस श्लोक में कामराज विद्या का उद्धार किया है, "अथर्व वेद में आया है" कामोयोनि कमला 'तथा' इन्द्रो माया भिपुरुरूप इयते" इन्द्र ल, माया हृल्लेखा के योग से ३, ४, ५, ६ भेद होते हैं।

स्मरं यानो लक्ष्मी, क, ए, ई, इस मंत्र का हादि विद्या में वर्णन किया गया है। ह, स, क, इन अक्षरों में उक्त अक्षर बदल देने से कादि विद्या बन जाती है। हादि विद्या मोक्षदात्री होने से कादि से श्रेष्ठ मानी जाती है। इस श्लोक में चिन्ता-मणिगुण निबद्धा क्षवलया यह पाठ है, इससे यह भी तात्पर्य निकलता है कि शब्द ब्रह्म जो चित् कला पर स्थित है जिसमें तोन गुण हैं, सत्व, रज, तम, भगवती के यह मातृका रूपी वर्ण जिसके हाथों से जप कर सिद्ध हो गये हो, उसकी जो कामना हो, सिद्ध हो जाती है। जो मन्त्र माला से जपे जाते हैं उनमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मेरु जो माला का ऊपर का मनका होता है उसे उल्लंघन नहीं करना चाहिए। माला जहां पूरी हो

फिर बदल कर जप करना। हवन करने को गोघृत भगवति के मन्त्रके हवन में बताया है, यहांपर सुरभि शब्द का प्रयोग करने से यह तात्पर्य है जिस प्रकार कामधेनु की सेवा से सब कामना सफल हो जाती है उसी प्रकार भगवति के मन्त्र जप करने अन्तर घृताहुती से उन मन्त्रों द्वारा हवन करने से साधक की सब कामना सफल हो जाती है।

हर बिन्दु समष्टि पांच' से बागभव बनता है। ''यद्वा-हर त्रिबिन्दु समष्टि ६ से कामराज वीज बनता है। 'यद्वाहर' ई विन्दु ४ से शक्तिकूट बनता है। तीन से पञ्चदशी का उद्धार होता है। इस विद्या का पञ्चदशाक्षरी रूप मानसोल्लास में है। यथा—''दशापञ्चक भेदेन प्रपञ्चस्य विलाशिनः। साक्षि पञ्चाक्षरीयस्य तस्मात् पञ्चदशाक्षरी॥" जायते, बर्द्धते, अस्ति, परिणमते, नश्यतीति पञ्चदशा। इन पांच दशाकी बोधक पञ्च-दशाक्षरी है। स्मर (क) का अर्थ मदन अर्थात् क्लीं योनि, भुवनेश्वरी वीज (ह्रीं)। लक्ष्मी रमा (श्रीं) कादिविद्याके अनुसार प्रथम श्लोक में से यह अर्थ निकलते हैं। इन तोन अक्षरों को मन्त्र के पूर्वमें मिला कर, हे नित्ये! एके-कोई श्रेष्ठ साधक तुम्हारे मन्त्र का जप करते हैं। जिससे "निरवधि महाभोग रसिका" जिन सुखों की भोग की अवधि नहीं है अर्थात् निरन्तर याहिक और आमु-ष्मिक भोगों के रस को चाहनेवाले चिन्तामणि के मनकों से बनी हुई माला को धारण कर तुम्हारा मन्त्र जपते हैं। यद्वा चिन्तामणि मातृका वर्ण ककार से हकार तक इनके लोम विलोम

से बने हुए मन्त्रों को जप कर गोघृत से हवन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं। यद्वा चिन्तामणि एक प्रकार का रत्न होता है, जिसके हाथ में यह रत्न रहता है उसको जिस काल में जो इच्छा होती है वह इच्छा पूर्ण हो जाती है। चिन्तामणि के चमत्कार की तरह जो ऊपर दिखाये हुए तुम्हारे मन्त्र हैं उसमें गुण "निवद्धाक्षवलया" मन के तन्तुरूपी गुणों में मन्त्राक्षरों को ओतप्रोत करके जो कोई जपते हैं, "सुरभिघृतधारा" सुरभी कामधेनु गौ का नाम है। जो मन के संकल्प के अनुसार सब पद र्थों को तत्काल दे देती है, उसका यहां पर संकेत किया है। राजयोग से मनमें जो तुम्हारे संकल्प स्फुरते है उनकी प्रत्यक्ष सिद्धि हो जाती है। मातृकाके योगसे 'स्मरं योनी लक्ष्मी' काम लज्जा, रमावीजको जपते हैं उनकी सम्पूर्ण कामना सफल हो जाती है। मन्त्र के जपने के अनन्तर गोघृतसे शताहुतियां या अनुष्ठान क्रमसे तद्दशांश आहुती देकर जो तुम्हारा भजन करते हैं वे धन्य हैं। इस श्लोक में निरवधि महाभोग और एके तथा नित्ये (भगवतीका सम्बोधन) इन पदां से निरवधि महाभोग से मोक्षरूपी परमानन्द का वोध है। यतः—इन्द्रियों के भोग स्वर्गादि सब अवधि के अनन्तर नाश होनेवाले होते हैं। "तेतंभुङ्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति" पुण्यके फल समाप्त होने पर फिर मर्त्यलोकमें दुःखके भोगनेको जीव आ जाता है। इन्द्रियोंके भोग जितने भी होते हैं वे आपात रमणीय हैं, भोगैश्वर्यमें चिपट जाना यही अज्ञान है। अतः इस श्लोक में जो महाभोग शब्द आया है वह आत्मानन्दरूपी भोगका द्योतक है। और एके एक शब्द "एक-

मेवाद्वितीयं ब्रह्म" का बोधक है। 'नित्ये' यह भी मोक्ष लक्ष्मीका वाचक भगवती का सम्बोधन इस श्लोक में आया है। अतः भगवती के इस मन्त्र जप से ब्रह्मानन्दरूपी महाभोग, जिसकी अवधि नहीं नित्य आनन्द मोक्ष की प्राप्ति बताई है।

अथैतस्मिन्नन्तरे भगवान् प्राजापत्यं वैष्णवं विलयकारणं रूपमाश्रित्य त्रिपुराभिधा भगवती त्येवमादिशक्त्या भूर्भुवः स्व स्त्रोणि स्वर्ग भू-पातालानि त्रिपुराणि हरमायात्मकेन ह्रीं कारेण हृल्लेखाख्या भगवती त्रिकूटावसानेनिलये विलयेधाम्नि महसाधारेन प्राप्नोति। सैवेयं भग-वती त्रिपुरेतिव्यापठ्यते ॥

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में भी—कादिविद्या लोपामुद्रा भिधा पञ्चदशाक्षरी भोगैश्वर्य प्रदात्री, श्रीविद्या की महत्ता को बड़े ही दार्शनिक रूप से वर्णन किया है। जैसे—सम्पूर्ण कर्मकांड भाग का वर्णन करनेके अनन्तर अष्टैश्वर्य सम्पन्न, संसार की स्थिति रक्षक, सत्वगुणसम्पन्न व्यापक, तमःप्रधान एकीकरण समर्थ अर्थात् सर्व जगतको अपने ही विग्रहांतरित करनेवाली शक्तिका आश्रय लेकर "त्रिपुरा" नाम से विख्यात भगवती जो आदिशक्ति नाम से "भूः" भुवः" स्वः" अर्थात् स्वर्ग, भू, पाताल—आत्मक शिव-शक्त्यात्मक भुवनेशी बीज हृल्लेखा नाम से भगवती त्रिपुरी

अ, उ, म, । जागृत्, स्वप्न, सुषुप्ति । विश्व - तैजस - प्राज्ञ । क्रिया - इच्छा - ज्ञान आदि के अवसान में स्थित अमात्रात्मक-नादात्मक रूपसे महा तम (घोरान्धकार) रूप—' तमसाद्विकुर्वाणात्" को प्राप्त होती है, उसी को भगवती त्रिपुरा नाम से कहा जाता है ।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धीयोयोनः प्रचोदयात् । परोरजसे सावदोम् । जातवेदसे सुनवाम सोममारीतीयतो निदधाति वेदः, सनः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वानावैवसिन्धुदुरितात्यग्निः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।। शताक्षरिपरमाविद्या त्रयीमयी साष्टा त्रिपुरा-परमेश्वरी आद्यानि चत्वारिपदानि परब्रह्मविकाशिनि द्वितीयानि शक्त्याख्यानि तृतीयानि शैवानि तत्र लोकाः, वेदाः, शास्त्राणि, पुराणानि, धर्माणि वै चिकित्सितानि ज्योतिष शिवशक्तियोगादित्येवं घटनाव्यापठ्यते ।।

अथै तस्य परं गहरं व्याख्याश्यामो महामनु समुद्भवं। तदिति ब्रह्म शाश्वतम् । परो भगवान् निर्लक्षणो निरंजनो निरुपाधि राधि रहितो देवः । उन्मीलते पश्यति विकासते चैतन्य भावं कामयते इति, स एको देवः शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते ।

कामं जायते। स एष निरञ्जनोऽकामत्वेनो ज्जृम्भते। अकचटतपयशान्सृजते। तस्मादी-श्वरः कामोऽभिधीयते। तत्परिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति। काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते। तस्मात्तत्पदार्थ इति य एवं वेद।

इसी ब्रह्म विद्या का परम गह्वर परम मंत्र की व्याख्या "धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां" को "तत्" के द्वारा व्याख्यायित किया जाता है, तत्—शब्द, निष्कल, अनादि, अविनाशी, ब्रह्म का द्योतक है। वह जब "एकोहम् वहुस्याम:" शक्त्यात्मक भाव से भावित होता है तब वह निरंजन-शिवरूप सम्पूर्ण जगत में यति-योगी यज्ञों में "यज्ञेन यज्ञ मयजन्तदेवा:" व्याप्त होजाता है। अर्थात् बिना ही कारण बिना उपादान के प्रकट हो जाता है। उसी समय "नाद" रूपमें अ क च ट आदि वर्ग उत्पन्न होते हैं, इसीलिये—एक अद्वय निरञ्जन में काम शक्ति के प्रादुर्भाव होने से ईश्वर आत्मा ब्रह्म काम कहा जाता है, इस परिभाषा से काम ककार का द्योतक है, तथा यह दृश्यमान जगत भी (तत्) ब्रह्म रूप कामात्मक होनेसे ककार का प्रतिपादक है, अतः तत्पदार्थ-क—

सवितुर्वरेण्यमिति षूङ् प्राणि प्रसवे सविता प्राणिनः सूते-प्रसूते शक्तिम्। सूते त्रिपुरा

परमेश्वरी महाकुण्डलिनी देवी। जातवेदस मंडलं योधींते सर्वव्याप्यते। त्रिकोण शक्ति-रेकारेन महाभागेन प्रसूते। तस्मादेकार एव गृह्यते। वरेण्यंश्रेष्ठं भजनीयमक्षरं नमस्कार्यम्। तस्माद्वरेण्य मेकाराक्षरंगृह्यते इति य एवं वेद।

जात वेदस मंडल द्वारा प्रतिपादित शक्ति महा कुंडलिनी देवी त्रिपुरा (त्रिकोणात्मिका) "एकार' द्वारा समस्त जगत् निर्माण करती है, इसलिये यह 'ए" कार अक्षर श्रेष्ट भजनीय उपासनीय नमस्करणीय है, अतएव "ए"—सवितुर्वरेण्यम्।

अकार-हकार, शक्ति-शिवरूप। अ ह विसर्ग रक्त शुक्ल दो विन्दु, इसका उच्चारण अहं। इनके बीच में समस्त संसार या मातृका यही ब्रह्म रूप है।

'एकोहं वहुस्याम,' इच्छुक ब्रह्म अर्ध शक्ति को देखता हुआ विन्दु रूप हो जाता है। शुक्ल-ब्रह्म, रक्त-शक्ति।

दोनों बिन्दु हकार वाच्य है। दोनों की समष्टि मिश्र बिन्दु। यही काम रूप, या सूर्यबिन्दु अ वाच्य है तीनों बिन्दु सोम, सूर्य, अग्नि, मय अहं से तुरीय, प्रणवपद वाच्य है।

यही एकादश स्वर एकार विद्या का प्राण है। इसी से सर्व जगत का प्रादुर्भाव होता है, शास्त्रयोनित्वात्, इसीको जगद्योनि त्रिकोण शक्ति कहा है।

भर्गोदेवस्य धीमहि इत्येवंव्याख्यास्यामः। धकारोधारणा। धियैवधार्यते भगवान्परमेश्वरः। भर्गोदेवस्य मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात् तुरीयं सर्वं सर्वान्तभूतम्। तुरीयाक्षरमीकारंपदानां मध्यवर्तीत्येवंव्याख्यातंभर्गोरूपं व्याचक्षते। तस्माद्भर्गोदेवस्यधीमहीत्येवंईकाराक्षरंगृह्यते।

बुद्धि द्वारा ही ब्रह्मत्व की धारणा होती है, यो बुद्धे परतस्तुसः 'ध" से ही धारणा का ज्ञान होता है इसी धारणार्थ द्योतक "ध" में ही सर्व जगत अंतर्हित होता है। यही आत्मा–जागृत् १ स्वप्न २ सुषुप्ति ३ अवस्थायों से परे तुरीयमें बुद्धि गम्य अर्थात् (ऋतंभरा) बुद्धि द्वारा धारित होने से शब्द ब्रह्मात्मक तुरीयाक्षर "ई" कार ही भर्गोरूप कहा गया है, अतः भर्गोदेवस्य ध—ई।

महीत्यस्य व्याख्यानं महत्वं जड़त्वं काठिन्यं विद्यते यस्मिन्नक्षरे तन्मही लकारः परंधाम। काठिन्यं ससागरं सपर्वतं ससप्तद्वीपं सकानन मुज्वलद्रूपं मंडलमेवोक्तं लकारेण। पृथ्वीदेवी महीत्यनेन व्याचक्षते। स्थाणु भूतेनलकारेण ज्योतिर्लिंगमात्मानं धियोबुद्धयः परेवस्तुनि

ध्यानेच्छरहिते निर्विकल्पके प्रचोदयात्प्रेरयेदि-
त्युच्चारणरहितंचेतसैवचिन्तयित्वा भावयेदिति ।

बड़ा, जड़, कठिन, ये धर्म संपन्न "मही" है, मही के अन्दर कठिनता, सागर, पर्वत, सप्तद्वीप, वन सबका अन्तर्भाव होता है अत एव पृथ्वी देवी 'मही" कही जाती है। इसी को मंडल कहा हैं "वही" "ल" है स्थाणु भूत लकार से ज्योतिर्लिङ्गात्मक आत्मा को वुद्धि, ध्यान इच्छा रहित निर्विकल्प आत्मा में संयोजित करें इस प्रकार मन से (चित्त) चिन्तित करता हुआ भावना करें। अतः मही—"ल" यहां पर त्रिपदा गायत्री से जो सूक्ष्म आत्मतत्व का ज्ञान वर्ण रूप में इस प्रकार प्रदर्शित किया है "तदेतन्मंडलं तपति" ।

(क) ईश्वर की कामना द्वारा ।

(ए) उत्पन्न होनेवाला श्रेष्ठ उपासनीय महाशक्ति कुंडलिनी त्रिपुरा (ज्येष्ठा,वामा,रौद्री) (जागृत्, स्वप्न, सुषुप्ति) (अ, उ, म,) (विश्व, तैजस, प्राज्ञ,) (उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय) रूप त्रिपुरी त्रिकोण अथवा योनी-उत्पति स्थिति प्रलय का केन्द्र ही उपासनीय होने से—

(ई) वुद्धि गम्य आत्मज्ञान—

(ल) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मंडल देदीप्यमान जगत् में विभक्त मनको एकी कर ब्रह्म के अन्दर प्रवेशित करें आत्मत्व भावनासे देखे "ईशावास्यमिदंꣳ सर्व"।

परोरजसे सावदोमिति तद्वसाने परं ज्योतिरमलं हृदिदैवतं चैतन्यं चिल्लिंगं हृदयागारवासिनी हृल्लेखेत्यादिना स्पष्टं वाग्भवकूटं पञ्चाक्षरं पंचभूतजनकं पंचकलामयं व्यापठ्यत इति। य एवं वेद।

चतुर्थ पाद द्वारा पूर्वो भावना के अन्दर यह धारणा हो कि वह ज्योतिर्मय देव इस हृदय पुंडरीक में चिति रूप हृल्लेखा से स्थित हैं।

इस प्रतिपाद्यार्थ द्वारा पांच अक्षर मय पंचभूत जनक पंच कला मयहृल्लेखा भुवनेशी वीज प्रतिपादित होता है।

ह—तत् आत्मा परोक्ष र—सविता ई—भर्ग ँ—नाद ं—विन्दु	वाग्भवकूट

आकाशादि पंचभूतों को उत्पन्न करनेवाले पांच वर्ण ह, क, र, स, ल, यह विद्या पंच भूतमयी है। प्रथम विमर्श शक्ति से ह, प्रकाश शक्ति से आकाश

क	वायु
र	अग्नि
स	जल
ल	पृथ्वी

गुण भी इनके १।२।३।४।५ सब १५ हुए। इसी तरह इस विद्या में भी १५ ही अक्षर हैं।

अथतु परं कामकलाभूतं कामकूटमाहुः। तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि द्वात्रिंशदक्षरीं पठित्वा तदिति परमात्मा सदाशिवोऽक्षरं विमलं निरुपाधितादात्म्य प्रतिपादनेन हकाराक्षरं शिवरूपं निरक्षरमक्षरं व्यालिख्यत इति। तत्परागव्यावृत्तिमादाय शक्तिंदर्शयति। तत्सवितुरिति पूर्वेणाध्वना सूर्याधश्चन्द्रिकांव्यालिख्य मूलादिब्रह्मरन्ध्रगं साक्षरमद्वितीयमाचक्षत इत्याह भगवन्तंदेवं शिवशक्त्यात्मकमेवोदितम्॥

शिवोयं परमं देवं शक्तिरेषातु जीवजा।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगा हंसस्तत्पदमुच्यते ॥१॥
तस्मादुज्जृम्भते कामः कामात्कामःपरः शिवः।
कर्णोयं कामदेवोयं वरेण्यंभर्गउच्यते ॥२॥

तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवः क्षीरं सेचनीयमक्षरं समधुद्रमक्षरं परमात्मजीवात्मनोर्योगात्त-

दिति स्पष्ट मक्षरं तृतीयं ह इति तदेव सदा-
शिव एव निष्कल्मष आद्योदेवोऽन्त्यमक्षरं
व्याक्रियते ।

अत्र कामकूट का व्याख्यान गायत्री की द्वितीयावृति द्वारा कहते हैं ।

ह = तत्	पंच तत्वात्मिका भुवनेशिका संयोग शेष मंत्र भाग द्वारा पूर्ववत् ।
स= सवितुः	
क= वरेण्यं	
ह = भर्गो देवस्य	
ल= धीमहि	

परं पदं धीति धारणं विद्यते जडत्वं धारणं
महीति लकारः शिवा धस्तात्तु लकारार्थः स्पष्ट
मन्त्यमक्षरं परमं चैतन्यं धियो योनः प्रचोदयात्
परो रजसे सावदोमित्येवं कूटं कामकलालयं
षडध्वपरि वर्तको वैष्णवं परमं धामेति भगवां-
श्चैतस्माद्य एवं वेद ।

पंचदशी के संबन्ध में योगिनी हृदय में प्रकाश की अंशभूत तीन शक्तियां वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, पुंरूप में ब्रह्मा विष्णु, रुद्र

इन सब की समष्टि शान्ता तुरीया शक्ति हैं। विमर्श की अंश-भूता इच्छा, ज्ञान, क्रिया यह तीन शक्तियां हैं। जो उनकी भार्या रूप से प्रसिद्ध भारती, पृथ्वी और रुद्राणी हैं, जो स्त्री रूपा हैं। इनकी समष्टि अम्बिका शक्ति तुरीया है।

प्रथम द्वितीय तृतीय मिथुन क्रम से तीनों कूटों का अर्थ है। इसमें ई, का अर्थ चतुर्थ मिथुन हैं। शाक्तार्थ में १।१ कूट में रेफात्र ६ वर्णों का मिथुन त्रय अर्थ ग्रहण किया हैं उक्त अर्थ में और इसमें यही थोड़ासा भेद है। शिव शक्ति के योग से ही यंत्रराज की उत्पति हुई हैं। तथा-भारती आदि योगिनी तथा ब्रह्मा आदि वीरेन्द्रों का कूटत्रय से ग्रहण कर तथा-शिवशक्ति मिथुन की समष्टि ई, कार से लक्षित कर यंत्रराज की वीरगण भावना करते हैं। सकल, निष्कल, सकलनिष्कल, उपासक ही वीर है। परा पंचाशिका में भी वीर यह साधक परक है उपासक श्रेष्ठ ब्रह्मादियों का वीरेन्द्र कहा है। अतः—भारती आदि योगिनी, तीनों सकलादि साधक, तीनों ब्रह्मादि वीरेन्द्र पद क्रम से ह्रीं कार रहित कूटत्रय से प्रतिपादित हुए। ह्रीं कार से शिव शक्त्यात्मक चतुर्थ मिथुन को ग्रहण किया। इन ६ अक्षरों से तथा तीन कूटों से ब्रह्मा-भारती, हरि-लक्ष्मी, रुद्र-रुद्राणी को लिया। काम कला व ह्रीं कार से चौथा मिथुन लिया जो शिव शक्त्यात्मक हैं इस तरह ७ अक्षरों की ३ आवृत्ति से यंत्रराज का प्रादुर्भाव हुवा। इनकी समष्टि श्री माता है। विद्या है। जो स्वयं पर देवता है।

अथैतस्मादपरंतृतीयं शक्तिकूटं प्रतिपद्यते । द्वात्रिंशदक्षर्यागायत्र्या तत्सवितुर्वरेण्यं तस्मादात्मन आकाश आकाशाद्वायुः स्फुरति तदधीनं वरेण्यं समुदीयमानं सवितुर्वा योग्यो जीवात्म परमात्मसमुद्भवस्तं प्रकाशशक्तिरूपं जीवाक्षरं स्पष्ट मापद्यते । भर्गोदेवस्यधीत्यनेनाधाररूप शिवात्माक्षरं गण्यते । महीत्यादिनाशेषं काम्यं रमणोयं दृश्यं शक्तिकूटं स्पष्टीकृतमिति । एवं पञ्च दशाक्षरं चैपुरं योधीते स सर्वान्कामानवाप्नोति। स सर्वान्भोगानवाप्नोति। स सर्वाल्लोकांजयति । स सर्वावाचो विजृम्भयति । स रुद्रत्वंप्राप्नोति । स वैष्णवंधामभित्वा परंब्रह्मप्राप्नोति। य वं वेद

अब तृतीय शक्तिकूट का प्रतिपादन करते हैं :---

स=तत्सवितुः ।

क=वरेण्यंभर्गोदेवस्य

ल=धीमहि

ह्रीं=पंचभूतजनक पंचकलामय ।

यह त्रिपुरा का पंचदशाक्षर मंत्र भोग ऐश्वर्य, स्वर्ग ईश्वरत्वका प्रदायक है। यही अकल तुरीयातीत में षोड़शी ब्रह्मत्व प्रदायिका है।

विद्या ब्रह्मत्वदायिका है।

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुह युगम्।
तवात्मानं मन्ये भगवतिनवात्मान मनघं॥
अतः शेषःशेषीत्ययमुभय साधारणतया।
स्थितः संबन्धोवां समरस परानन्दपरयोः॥३४॥

टीकाः—

हे भगवती! तुम शिवकी मूर्ति हो। चन्द्र सूर्य ये दो तुम्हारे स्तनयुग्म हैं। मेरी धारणा है कि तुम निमल नवयोन्यात्मक शिव की मूर्ति हो। अतः तुम्हारा अङ्गाङ्गी भाव पारस्परिक सम्बन्ध एक रूप है और दोनों का अखण्डानन्द एक रस में है।

भाष्यः—

हे भगवती! तुम शिव की शरीररूपा हो। चन्द्र सूर्य तुम्हारे दो स्तनयुग्म हैं। यथा—चन्द्रसूर्यौस्तनौयस्या तावेव नयनेस्मृते। उभौताटंक युगुलेत्येषा नैगमीश्रुतिः॥ यह तुम्हारा शरीर नव ब्यूहात्मक भैरव रूप है। यद्वा नवयोन्यात्मक जो श्रीचक्र है वह तुम्हारा शरीर है। तन्त्रशास्त्र में नव व्यूहका वर्णन आया है। "१ काल व्यूह, २ कुल ब्यूह, ३ नाम व्यूह, ४ ज्ञान

व्यूह, ५ चित्र व्यूह, ६ नाद व्यूह, ७ बिन्दु व्यूह, ८ परानन्द व्यूह, ९ परात्मक व्यूह" यह भोग मोक्षदायक नव व्यूहात्मक भैरव रूप है। परानन्द, पराशक्ति चिदरूप, आनन्द भैरवी इनकी ऐक्यता होने से ही सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है। कालव्यूह एक निमेष से कल्पान्त कालसमूह है, कुलव्यूह नील रूपादि भेद से है। नाम व्यूह संज्ञा नामों का समुदाय, ज्ञान व्यूह विज्ञान स्कन्द है। चित्रव्यूह अन्तकरण की भावनाएँ हैं। आत्म व्यूह आत्मा अन्तरात्मा प्रत्यगात्मा परमात्मा रूप है। जीव व्यूह मनुष्य पशु पक्षी आदि ८४ लक्ष योनियां, अतः हे भगवती ! तुम दोनोंके गुण एक ही है, दोनोंका सम्बन्ध परानन्दपरक है, अर्थात उत्कृष्ट निवृत्तिपरक होने से समान रस हो। अभिन्न अखण्डानन्द-रूपा हो। इस श्लोक में श्रीविद्यारूपी श्रीचक्र में शितिखण्ड और शिवयुवति नाम से जो त्रिकोण कहे हैं, उन दोनों के समरस का वर्णन आया है। यह नवव्यूहात्मक श्रीचक्र भगवती की मूर्ती है।

मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि ।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा ।
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन विभृषे ॥३५

टीका :—

हे भगवती ! तुम मन (अन्तःकरण का ज्योतिरूपा) हो, तुम व्योम (आकाशरूपा) हो, तुम वायु रूप से सर्वत्र सञ्चार करने

वाली हो, तुम जल रूप से आप्यायन करनेवाली, तुम पृथ्वी रूप से सब को धारण करनेवाली; समस्त ब्रह्मांड रूप में परिणत होने से तुम से परे और कोई रूप नहीं है, तुम ही अपने को विश्व के स्वरूप में बदलती हो। तुम चित्शक्ति आनन्द रूपा अपने को शिवयुवति भावना से धारण करती हो।

भाष्य :—

इस श्लोक में शिव शक्तिके एकात्मा का वर्णन आया है और भगवती की सव व्यापकता को निर्देश किया गया है। अन्तः-करण की सञ्चालिका तथा चिति रूप तुम हो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये सब तुम्हारे ही परिणाम हैं। पृथक कोई वस्तु नहीं है। तन्त्र में आया है "त्रिपुरा परमाशक्ति राद्या जाता महे-श्वरी स्थूल सूक्ष्मस्वभावेन त्रैलोक्योत्पत्ति मातृका" कवली कृत निः शेष तत्तज्ज्ञान स्वरूपिणी यस्यां परिणतायान्तु न किञ्चिद वशिव्यते। अर्थात् त्रिपुरा परमा शक्ति विश्व की आदि जननी है स्थूल, सूक्ष्म कारण स्वभाव से त्रैलोक्य को उत्पन्न किया है।

इस श्लोक में भगवति की अष्टमूर्ति का वर्णन जैसे शिवजी की मूर्ति का आया है वैसा ही यहां आया है। पुष्यदन्ताचार्य ने शिव की अष्टमूर्ति का जैसा महिम्नमें वर्णन किया है। "त्वमापस्त्वं सोमत्वमसि पवनस्त्वं हुतवहत्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणि-रात्मा त्वमिति च" इसी प्रकार कालिदास ने शिव की अष्टमूर्तिका वर्णन किया है—"यासृष्टी सृष्टु, राद्या वहति विधिहुतं या हवि याच होत्री ये द्वे कालं विधत्तेश्रुति विषयगुणान्या स्थिता व्याप्यविश्वम्"।

इस प्रकार भगवति अष्टमूर्ति का वर्णन करने से शिवशक्ति में अभेद भावना का निर्देश किया गया है। मन शब्द से यजमान का भी ज्ञान होता हैं मनमें ही प्रथम यज्ञ का संकल्प या जगत का संकल्प स्फुरता है चन्द्रमा भी मन की ही स्फुरणा है यतः "चन्द्रमा मनसो जात" यह वैदिक प्रमाण है। अग्नि सूर्य का ही रूपान्तर है, इस प्रकार मन और पञ्चभूत भगवती के आवरण देवता अष्ट स्वरूप है। ज्ञान आनन्द यह ब्रह्म का स्वरूप है "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" ब्रह्म सब में ओत प्रोत है, हे भगवती! तुम मन स्वरूप से आज्ञाचक्र में प्रकाश देती हो, तुम आकाश तत्वमयी होकर विशुद्ध-चक्र में स्थान रखती हो, तुम वायु रुपा अनाहत में निवास करती हो, अग्निरूपा मणिपूर में प्रकाश देती हो, तुम जल स्वरूपा स्वाधिष्टान में और पृथ्वी रूप से मूलाधार में रहती हो यथा "आधार भूता जगतस्त्वमेका महीश्वरुपेण यतः स्थितासि" इत्यादि, हे भगवती! तुम विश्व तैजस प्राज्ञ रूपसे जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति की साक्षी हो विराट् स्वरूपा (हिरण्यगर्भ) इच्छाशक्ति से स्थूल शरीराभिमानी देवता हो जाती हो। तुम्हारा स्थूल स्वरूप महाप्रलय में शिव में लय हो जाता है, पुनः सृजन काल में शिवशक्ति एक्यभाव नत्रयोन्यात्मक स्वरूप से संसार बनने लगता है। यतः सृजना का कारण शिव-शक्त्यात्मक ऐक्य प्रलय का कारण शिवशक्ति का पार्थक्य जो ब्रह्माण्ड दीख पड़ता है यह सम्पूर्ण शिवशक्ति के ऐक्य का परि-णाम है, जितने प्रकार की आकृति और नाम हैं यह सब शक्ति तत्व मायात्मिक हैं सत्ता-भास यह शिव तत्व है! यथा 'अस्ति-

भाति प्रियं रूपं नान चेत्यंश पञ्चकम् आद्य त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्ररूपंततोद्वयम्" अस्ति भाति प्रियं, ये नित्य ब्रह्म स्वरूप हैं, नांम आकृति अनित्य संसार का स्वरूप है। अर्थात अस्ति, भाति, प्रिय, हे भगवती! यह तुम्हारा नित्य स्वरूप है। भगवती छः रूपों में षट्चक्र में प्रकाश देती है इनका संमिश्रण संसार की उत्पति स्थिति विश्लेषण, संसार का लय है। भगवती का यथार्थ स्वरूप चित् शक्ति है, यह शक्ति स्थूल सूक्ष्म में परिणत होकर प्रकट होती है। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" धर्म की रक्षा के निमित्त भगवती प्रकट होती है, यथा मार्कण्ड पुराण—"इत्थं यदा यदा वाधा दानवोत्था भविष्यति तदा तदा वतीर्याहं करिष्याम्यरि संक्षयम्"।"

षट्चक्र षट्तत्व

तत्व	लोक	देव	चक्र
०	सत्यम	पराशक्ति	सहस्रार
मन	तपः	शिव	आज्ञा
आकाश	जनः	सदाशिव	विशुद्धि
वायु	महः	महेश्वर	अनाहत
तेज	स्वः	रुद्र	मणिपुर
जल	भुवः	विष्णु	स्वाधिष्टान
पृथ्वी	भूः	ब्रह्मा	मूलाधार

तवाज्ञा चक्रस्थं तपनशशि कोटि द्युतिधरं ।
परं शंभुं वन्दे परिमिलित पार्श्वं परचिता ॥
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये ।
निरातंके लोको निवसति हि भालोकभवने ॥३६॥

टीका–

कोटि सूर्य चन्द्रमाके प्रकाश धारण किए वामपार्श्वमें चिदम्बा के साथ तुम्हारे आज्ञाचक्रमें स्थित परम शम्भुको मैं प्रणाम करता हूं, भक्तिसे जिसकी आराधना करनेसे सूर्य चन्द्र अग्निका भी जहां विषय नहीं, ऐसे निर्भय प्रकाशमय लोकमें निवास करती हो।

भाष्य :–

३२ श्लोकमें भगवतीके मन्त्रात्मक विग्रहको दिखलाया है इस श्लोकसे यन्त्रात्मक मूर्तिका बर्णन और भगवतीके अधिष्ठानों का निरूपण है। तवाज्ञा "चक्रस्थं", षटचक्रोंमेंसे एक चक्र आज्ञा चक्र है। आज्ञाचक्रस्थं इस प्रकारका पाठ होना था, परन्तु यहांपर तब तुम्हारा आज्ञाचक्र कहनेसे भगवतीके यन्त्रात्मक स्वरूपका निर्देश है, जैसे पहले दिखा गये हैं। श्रीयन्त्रका कौन स्थान किस चक्रमें है इन सब चक्रोंके योगसे नवयोन्यात्मक श्रीचक्र बनता है जो भगवतीकी मूर्ति है। ये चक्र ज्योतिर्मय हैं षटचक्रमें जो वर्णन आया है वह आधिभौतिक चक्रोंका है

ये ज्योतिर्मय चक्र भगवतीके स्वरूप हैं। इनके ही आश्रयपर आधिभौतिक चक्रोंमें क्रिया शक्तिका सञ्चार होता है। मनुष्य शरीर भी एक यन्त्र है जो प्रधानतया छ चक्रोंसे चलता है। पूर्व श्लोकमें "मनस्त्वं" से भगवतीको मन कहा जो आज्ञाचक्रमें है इस श्लोकमें उसका विशदीकरण किया गया है।

यहांसे अग्रिम ६ श्लोकों तक षटचक्रोंका वर्णन है। अर्थात् आज्ञाचक्रसे प्रारम्भ कर अवरोहक्रमसे मूलाधार तक दिखाया है समष्टि व्यष्टि रूपसे यन्त्रात्मक, भूतात्मक भगवतीके स्वरूप को दिखाया है आज्ञाचक्रकी अधिष्ठातृ भगवती हैं आज्ञाचक्र द्विदल भ्रूमध्यमें "मनोपिभ्रूमध्ये" मनका स्थान भी यही है।

'आज्ञा संक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम्।'

इसी स्थानकी सिद्धिसे साधक अपनी आज्ञाका प्रभाव सब पर दिखा सकता है। मायातन्त्रमें लिखा है—

'आज्ञाख्यं द्विदलं शुभ्रम् कर्णिकायां मनोलयम्।'

यही स्थान है जिसको पूर्व श्लोकमें 'मनस्त्वं' कहा है। इसी स्थानका प्रकाश श्रीक्रममें आया है "भ्रूमध्ये अन्तरात्मान मरूपं सर्व कारणम् ॐकारज्योति रूपन्तु प्रदीपाभं जगन्मयम्" भ्रूमध्यमें सर्वकारण ॐकार ज्योतिरूप आत्मा ज्वलित दीपप्रभा के समानका ध्यान करे। इसीलिए "तवाज्ञा चक्रस्थं" कहा है यह भगवतीका स्वरूप आज्ञाचक्र है। षटचक्र निरूपणमें आया है—"आज्ञानामाम्बुजं तद्धिमकर सदृशं ध्यान धाम प्रकाशं हं क्षां भ्यां वैकलाभ्यां परिलसत वपुः" यह आज्ञाचक्र ध्यानसे

प्रकाशित होता है। इस दु:ख रहित प्रकाशमय लोकमें परम शिव चिदम्बाके साथ विराजते हैं, जहां सूर्य, चन्द्र, अग्निका भी प्रकाश नहीं जा सकता है। इसी स्थानका उपनिषद्में इस प्रकार वर्णन किया है। "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारके नेमा विद्युतो भाति कुतोऽमग्निः, तमेव भान्त मनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिद विभाति" यह वह निरातङ्क स्थान है जहां सूर्य, चन्द्र, तारक, अग्नि, विद्युत्का प्रकाश नहीं जाता है अपितु इसी आलोकके प्रकाशसे सूर्यादि प्रकाशित होते हैं।

गीतामें इस परम शम्भूके प्रकाश लोकका वर्णन इस प्रकार आया है—"न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" सूर्य, चन्द्र, अग्नि जिसे प्रकाशित नहीं कर सकते हैं जहां जानेपर फिर जन्म-मरणको आवृत्ति नहीं होती वह भगवतीका प्रकाशमय स्थान है। वहींपर परम शम्भुका साक्षात्कार होता है।

आज्ञाचक्रमें परम शम्भुका प्रकाशमय स्थान है जिसे "तपन शशिकोटिद्युतिधरं" कहा है कोटि सूर्य चन्द्रमाके प्रकाशको धारण करनेवाला अर्थात् अनन्त प्रकाशमय षटचक्रोंमें पृथक्-पृथक् छः शिव हैं उनमेंसे आज्ञाचक्रमें परम शिव हैं। यथा—

'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिव।
ततःपर शिवो देवी षट्शिवा परिकीर्तिता ॥'

उक्त मानस रश्मियां आज्ञाचक्रसे लहराती हैं इनके नामके अनुरूप इनके धर्म हैं। सम्मोहन तन्त्रमें आज्ञाचक्रमें जितने

मूलाधारादि छ चक्रोंमें क्रमशः उपरोक्त शिव होते हैं। इसी शिव चिदम्बाकी कामेश्वर कामेश्वरी नामसे आराधना करते हैं, इसको कहीं "निरालोके लोके" ऐसा पाठ कहा गया अर्थात् जो स्थान नेत्रादि ज्योतिका विषय नहीं है स्वयं प्रकाश है वहीं मातृका रूपा महामायाकी रश्मियां रहती हैं। मन अपनी रश्मिपुञ्जके साथ सूक्ष्मरूपमें यहांपर रहता है। "एतद् पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धम्" आज्ञाचक्रमें मन सूक्ष्मरूपमें रहता है। यहांसे ही मनोमय रश्मिपुञ्जोंका प्रसारण होता है ४० श्लोकमें जो विभिन्न तत्वोंकी रश्मियोंका प्रकाशन बताया है उनमेंसे ६४ रश्मि मनसे प्रवाहित होते हैं उनके नाम ये हैं—

१ पर २ परा ३ भर ४ भरा ५ चित ६ चितपरा ७ महामाया ८ परा सृष्टी ९ सृष्टीपरा १० इच्छा ११ इच्छापरा १२ स्थिति १३ स्थितिपरा १४ निरोध १५ निरोधपरा १६ भुक्ति १७ भुक्तिपरा १८ ज्ञान १९ ज्ञानपरा २० सत २१ सतपरा २२ असत २३ असत्परा २४ सदसत २५ सदसत्परा २६ क्रिया २७ क्रियापरा २८ आत्मा २९ आतमपरा ३० इन्द्रिय ३१ इन्द्रियपरा ३२ गोचर ३३ गोचरपरा ३४ लोकमुख्य ३५ लोकमुख्यपरा ३६ वेदवत् ३७ वेदवत्परा ३८ सम्वित ३९ सम्वित्परा ४० कुण्डलनी ४१ कुण्डलनीपरा ४२ सुषुम्णा ४३ सुषुम्णापरा ४४ प्राणसूत्र ४५ प्राणसूत्रपरा ४६ स्पन्द ४७ स्पन्दपरा ४८ मातृका ४९ मातृकापरा ५० स्वरोद्भुव ५१ स्वरोद्भुवपरा ५२ वर्णजा ५३ वर्णजापरा ५४ वर्गजा ५५ वर्गजापरा ५६ सम्भोगजा ५७ सम्भोगजापरा ५८ मन्त्रविग्रह ५९ मन्त्रविग्रहपरा

और पद्म हैं जो उससे ऊपरकी ओरसे हैं उनका प्रमाण दिया है—

इन्दुर्ललाट देशच तदूर्द्धे बोधनी स्वयं ।
तदूर्द्धे भाति नादोऽसा वर्द्ध चन्द्राकृतिपरः ॥
तदूर्द्धे च महानाद लांगलाकृतिरुज्वलः ।
तदूर्द्धे तु कला प्रोक्ताः आज्ञीति योगिबल्लभा ॥
उन्मनी तु तदूर्द्धे तु यद्गत्वा न निवर्तते ॥

भ्रूमध्यमें आज्ञाचक्र, इससे जरा ऊपर चन्द्रस्थान, इसके ऊपर बोधनी है। बोधनोसे ऊपर नाद जो अर्धचन्द्रकी तरह प्रतीत होता है तब महानाद जो हलकी आकृतिवाला है उसके ऊपर आज्ञीकला योगियोंका परम धन, उसके ऊपर उन्मनी जहां जानेसे फिर नीचे नहीं गिरता है इसको तन्त्रशास्त्रमें शिवशक्ति संयोग त्रिपुर सुन्दरीका रूप कहा है। यथा—

'शिवशक्ति समायोगात् अव्यक्तात् परमेश्वरात् ।
आद्या भगवती देवी सैव त्रिपुर-सुन्दरी ॥'

अव्यक्त शिवतत्वमें जो प्रथम शक्ति (विमर्श) का योग होता है वह त्रिपुर सुन्दरीका रूप है आज्ञाचक्रमें ध्यान करनेका फल इस प्रकार है—

'ध्यानात्मा साधकेन्द्रो भवति परपुरे शीघ्रगामी मुनीन्द्रः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शीः सकल हितकरः सर्वशास्त्रार्थ वेत्ता ॥

अद्वैता चारवादी विलसति परमा पूर्वसिद्धः प्रसिद्धः।
दीर्घायुः सोपि कर्ता त्रिभुवन भवने संहृतौ पालने वा' ॥

आज्ञाचक्रमें ध्यान लगानेसे साधक सारे संसारका हितकर्ता सब शास्त्रोंका ज्ञाता लोकत्रयको पालन संहार करनेकी शक्ति-वाला तपस्या करनेके लिए दीर्घायु प्राप्त करता है यहींपर ध्यान लगानेसे उन्मनी तकको गति हो जाती है।

"उन्मन्या सहितो योगी न योगी उन्मनी बिना" योगकी सिद्धि तब है जब उन्मनी दशाको प्राप्त कर ले, यहां आज्ञाचक्रमें ध्यानकी सिद्धि होनेसे परम शिवका साक्षात्कार योगीको होता है।

'ज्वलद्दीपाकारं तदनु च नवीनार्क बहुल।
प्रकाशं ज्योतिर्वा गगन धरणीमध्य मिलितम् ॥
इहस्थाने साक्षात् भवति भगवान् पूर्णविभव।
व्ययो साक्षी वह्नेः शशिमिहरयोर्मण्डल इव ॥

आज्ञाचक्रमें ध्यानावस्थित योगीको प्रथम प्रज्वलित दीपकका प्रकाश तब प्रातःकालके बादलमें छिपे सूर्यकी लालिमाका भास होता है तब धरणी मध्य मिलितम् विशुद्ध चक्रसे मूलाधार पृथ्वी तत्व तक उसे प्रकाशका भान होने लगता है। यथा गीता—"सर्व द्वारेषु येनैक प्रकाशमुपजायते" सारे शरीरमें प्रकाशका

अनुभव होता है तब रविशशि अग्निके प्रकाशपुञ्ज शिव अव्यय का साक्षात्कार होता है अन्तमें शिवतत्वमें लय हो जाता है। इस आज्ञाचक्रमें प्रयाणकालमें मन स्थिर करनेसे विष्णु पदमें मिल जाना है यथा गीतामें "प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योग बलेन चैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् सतं परं पुरुष मुपैतिदिव्यम्।

निश्चल मन या भक्तिसे या योग बलसे इस आज्ञाचक्रमें ध्यान लगानेसे परम पुरुष आत्मामें मिलता है यथा—"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्" ओम् यह शब्द उच्चारण करते भ्रूमध्य हुये ध्यान लगानेसे प्राणोंक्त क्रान्ति (मृत्युकाल) समयमें मोक्ष पाता है। यथा—

'इहस्थाने विष्णो रतुल परमा मोद मुदरे।
समारोप्य प्राणान् प्रमुदित मना प्राण निधने॥
परं नित्यं देवं पुरुष मजमाद्यं त्रिजगताम्।
पुराणं योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्तविदितम्॥

अन्तिम समयमें प्रसन्नतासे भ्रूमध्यमें ध्यान लगाते हुए जो प्राण त्यागता है, वह जीव परम पुरुष जो वेदान्त वेद्य "अयमात्मा ब्रह्म" "अहं ब्रह्मास्मीति" "तत्वमसि" वाक्योंसे जिसका ज्ञान हो जाता है वह आत्मतत्व (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। आज्ञामें जप करनेका परमेश्वर मन्त्र इस प्रकार है—

तारपंचक मुद्धृत्य सरहं स्रौं वागभवस्ततः !
फ्रूयें वीजंच ततो लेख्यं परमेश्वर मनुर्मतः ॥
आज्ञायां कर्णिका मध्ये परमेश्वर मनुंन्यसेत् ।

विशुद्धौते शुद्ध स्फटिक विशदं व्योमजनकम् ।
शिवं सेवेदेवोमपि शिव समान व्यवसिताम् ॥
ययोः कान्त्या यान्त्या शशिकिरण सारूप्य सरणिं
विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती ॥३७॥

टीका :—

हे भगवति ! षोड़श दलात्मक विशुद्धचक्रमें शुद्धस्फटिकके समान उज्वल आकाशतत्वके कारणस्वरूप व्योमेश्वर और व्योमेश्वरी माताकी पूजा करता हूं, जिनके प्रभाके प्रसारणमें (जगत) संसार परम्परा चकोरीकी भांति विलाश करती हैं। अन्तःकरणके अन्धकारको दूर कर चन्द्रमाके प्रकाशकी तरह सुषुम्णा मार्गमें प्रकाशित करते हुए व्योमेश्वर व्योमेश्वरीकी पूजा करता हूं।

भाष्य :—

इस श्लोकमें आकाशतत्वके अधिष्ठातृ देवता व्योमेश्वर व्योमेश्वराम्बाका पूजनका वर्णन आया है यथा व्योमेश्वरनाथ श्री पादुकां पूजयामि व्योमेश्वरी अम्बा श्री पादुकां पूजयामि ।

३६ श्लोकसे अन्तर्यागका प्रकरण चल रहा है, भ्रूमध्यसे जो अमृत निष्पन्दन होता है वह क्रमसे षटचक्र मार्गसे सारे प्रपञ्च को सिञ्चन करता जाता है सृष्टिका आविर्भाव विशुद्ध पद्मस्थ व्योमेश्वरसे होता है, यही षोड़श नित्याओंका स्थान है इसी व्योमेश्वर शिवको हिरण्यगर्भ नामसे भी कहा है सबसे प्रथम व्योमतत्व प्रकट होता है यथा आत्मनः आकाश सम्भूतः आकाद्वायुः वायो इत्यादि क्रम है, यहांपर व्योमेश्वर ध्यान योगगम्य है, यथा षटचक्र भेदनकुला कुलमार्ग हठयोगगम्य ईड़ा पिंगलाकी गति सञ्चरण गतिरोध (कुम्भक) निर्भर है इस विशुद्ध दलमें व्योमेश्वरका पूजन ध्यान योगगम्य आया है, ईड़ा पिंगला साधककी गति निरोध नहीं कर सकती है। व्योमेश्वर मन्त्र "व्योमातीतं नाथ पदं (नाथ) परापर पदं ततः व्योमातीत पदं व्योमेश्वरी पद समुद्धरेत्।" विशुद्ध चक्रका स्वरूप तन्त्रमें आया है—

'विशुद्ध तनुते यस्मात् जीवस्य हंस लोकनात्।
विशुद्धं पद्ममाख्यातं आकाशाख्यं महत् परम्॥

यहांपर षोड़शीका पूर्ण विकाश होता है। षटचक्र निरूपणमें

'विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिज ममलम् धूमधूम्रावभासम्।
स्वरैः सर्वैः शोणैः दल परिलसितैः दीपितं दीप्त बुद्धेः॥

विशुद्धमें अकारसे अः पर्यन्त षोड़श वर्ण षोड़शीकी कलाएँ हैं। इसे मोक्ष द्वार भी कहा है—

'सुधांशोः सम्पूर्णं शशपर रहितं मण्डलं कर्णिकायाम् ।
महामोक्ष द्वारं श्रीय मभिमतशीलस्य शुद्धेन्द्रियस्य ॥

यहांपर शश चिह्नके विना शुद्धपूर्ण चन्द्र प्रकाश दीखता है।

इहस्थाने निरवधि निधायात्म सम्पूर्ण योग कविर्वाग्मी ज्ञानी, इस स्थानपर निरवधि चित्त लगनेसे ज्ञाननिष्ठा हो जाती है।

आकाश तत्वसे ७२ (बहत्तर) रश्मियां निकलती हैं अर्थात् आकाशतत्वकी ७२ किरणें हैं ।

१ हृदय २ कौलिकी ३ धर ४ कान्ता ५ भोग ६ विश्वा ७ भय ८ योगिनी ९ महा १० ब्रह्म ११ सारा १२ शिवदूती १३ शवरी १४ कालिका १५ रस १६ जुष्ट चाण्डाली १७ मोह १८ अघोरेशी १९ मनोभय २० हेला २१ केका २२ महारक्ता २३ ज्ञानगुप्ता २४ कुब्जिका २५ खर २६ डाकिनी २७ ज्वलता २८ शाकिनी २९ महाकुल ३० लाकिनी ३१ साधिनी ३२ तेजा काकिनी ३३ तेजस ३४ राकिनी ३५ मूर्द्धनी ३६ हाकिनी ३७ वासुका ३८ साधिनी ३९ कुल ४० सिंही ४१ सन्नार ४२ कुलम्बिका ४३ विश्वम्भर ४४ कामा ४५ कौटिला ४६ कण ४७ गालव ४८ कंटकी ४९ व्योम ५० व्योमा ५१ शबशन ५२ नाद ५३ खेचरी ५४ महादेवी ५५ वाहुल्य ५६ महत्तरी ५७ तात ५८ कुण्डलनी ५९ कुलातीत ६० कुलेशी ६१ अज ६२ इन्धिका ६३ अनन्त ६४ दीपिका ६५ ईशा ६६ रेचीका ६७ शिखा ६८ मोचिका ६९ परम ७० परा ७१ पर ७२ चित ७२ मयूख नाम है ।

समुन्मीलत्संवित् कमलमकरन्दैकरसिकं।
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्॥
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति-
र्यदादत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्भ्यः पय इव॥३८॥

टीका :—

समुन्मीलत्संवित्। विकाश होते हुए ब्रह्मज्ञानरूपी कमलके परागके रसिक योगियोंके मानस सरोवरमें चलनेवाले एक अनिर्वचनीय हंस युग्मको प्रणाम करता हूं (हंस सोहं) जिस हं-स-युग्मके आलाप करनेसे अठारह विद्याओंका प्रकाश होता है और जो दोषोंसे गुणको अलग कर देता है हंस जैसे जलसे दुग्धको पृथक् कर देता है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें हंसेश्वर हंसेश्वरीका ध्यान बताया है तन्त्रशास्त्रमें इस प्रकार—परम हंस हंसेश्वरी नाथ श्री पादुकां पूजयामि स्वाहा "हंस सोहं" यद्वा हंस इत्यक्षरद्वयं यही मन्त्र है यदालापात्—हंसः इस मन्त्रके जप करनेसे १८ विद्याओंका विकाश हो जाता है। हंसके जपसे आत्म साक्षात्कार हो जाता है इस मन्त्रके प्रभावसे दोष—पाप दूर हो जाते हैं जैसे हंस पक्षी दुग्ध और जलको पृथक्-पृथक् कर देता है उसी प्रकार इस मन्त्रके जपसे पाप पृथक् हो जाते हैं। शुभ संस्कार रह जाते हैं। हं-शिव स-शक्ति इनके योगसे हंस हुआ यही हंस युग है—

"हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंसेति द्वक्षरं मन्त्र जीवो जपति नित्यशः"।

२१६४२ स्वास प्रश्वास अहोरात्रमें स्वभावतः आते-जाते हैं इसी (हसेश्वर हंसेश्वरी) के यन्त्रको जीव जपता है। उपासक हंस मन्त्रमें पूर्ण निष्ठा करनेसे परम हंसताको प्राप्त कर लेता हैं। उसमें विवेक ख्याति होनेसे मल विक्षेप दूर कर लेता है जैसे हंस जलमेंसे दुग्धको पृथक् कर देता है वैसे अन्तःकरणमेंसे मल विक्षेपको पृथक् कर देता है। तब उसके अन्तःकरणमें अनेक प्रकारकी विद्याशक्तियोंका विकाश हो जाता है। योगाभ्यास सम्पन्न उच्च भूमिकाओंको प्राप्त किए हुए योगीजनोंके हृदय "महतीमानस" में विद्याओंका विकाश होता है इस श्लोकमें १८ विद्या जो कहीं हैं उनके नाम-शिक्षा, कल्प व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, ऋग्, यजु, साम, अथर्व, मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद गान्धर्व शास्त्र, नीतिशास्त्र ये १८ हैं इस श्लोकमें परिणति समाधत्त पदसे तात्पर्य साधकको हंस मन्त्रकी योग सिद्धिसे विद्याओंका विकाश होनेसे तात्पर्य है। हंसेश्वर मन्त्र—

तार पंचक मुच्चार्य हस्त्रं वाग्भव मुद्धरेत्।
कुब्जिकायै पदं चैव हसफ्रं विच्चै तथैव च ॥
हंसेश्वर महामन्त्रस्त्वनाहत पदे स्थितः।

हृदयमें अनाहत चक्र है यहांपर हंसका ज्ञान होता है— "यदालापा विद्या दशगुण" यहां हंसके योगसे शब्दमय जगतका

प्रादुर्भाव होता "शब्द ब्रह्मणि निष्णत परब्रह्माधि गच्छति" शब्द-मय मूर्ति यहांसे प्रकट होती है जैसे वेदमें—"चत्वारि श्रृङ्गा-त्रयोस्यपादा द्वे शीर्षे सप्ताहस्तासो त्रिधाबद्धो वृषभोरोरवीति महा-देवोमर्न्यां आविवेश" यजुर्वेद तन्त्रशास्त्रमें लिखा है—शब्द ब्रह्ममय: शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते अनाहताख्यं पद्मं तत् मुनिभिः परिकीर्तितम्" जहांपर बिना ताड़नके शब्द (ध्वनि) निकलता है। वह अनाहत स्थान है यहांपर वाणलिंग रहता है द्वादश सूर्य विद्या और द्वादशाक्षरी विद्या भी यहांसे प्रकट हुई है सौर मण्डलकी रचना यहांसे प्रारम्भ होती है षटचक्र निरूपणमें आया है—

'तस्योर्के हृदि पंकजं सुललितं बन्धूक कान्त्युज्वलम्।
काद्यै द्वादशवर्गकै रुपहितं सिन्दूर रागान्वितम्॥
नाम्ना नाहत संज्ञकं सुरतरुं वांछाति रिक्तप्रदम्।
वायोर्मण्डलमत्र धूम्र सदृशं षटकोण शोभान्वितम्॥
तन्मध्ये करुणा निधान निलयं हंसाभमीशामिदम्।
पाणिभ्यामभयं वरंच विदधत् लोकत्रयाणामपि॥

हृदयकमल रक्तवर्ण ककारसे ठकार तक द्वादस वर्णोंका अनाहत चक्र वायुका मण्डल षटकोणवाला यहांपर है यहां इच्छा से भी अधिक सफलता मिलती है इस चक्रके मध्यमें हंसेश्वर हंसेश्वरी संसारकी रक्षाके निमित्त अभय वर लेकर विराजमान रहती हैं।

कूटं हंसेश्वरस्याथ धूम्राभंहृदिभावयेत् ।

वायव्य किरणे ५४ ।

खगेश्वर, भद्रा, कुर्मा, आधार, मेसा, कोषा, मीना, मालिका, ज्ञाना, विमला, महानन्दा, सर्वरो, तीव्रा, लीला, प्रिया, कुमुदा, कालिका, मेणका, डामरा, डाकिनी, रामा, राकिनी, लाम्रा, लाकिनी, काम्रा, काकिनी, साम्रा, शाकिनी, हाम्रा, हाकिनी, आधारेश, राका, चक्रीश, विन्दु, कुकुर, कूला, मायाश्रीश, कुब्जिका, हृदीशा, कामकला, सिरस, सिखेश, सर्वेशा, वर्मन, वहुरूपा, असलेखा, महत्तरी, परगुरु, मंगला, पराधीगुरु, कोष, पूज्यगुरु, रामा, कुलदीपिका ।

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतम् ।
तमीडे संवर्तं जननि महतीं तांच समयाम् ॥
यदालोके लोकान्दहति महति क्रोध कलिते ।
दयार्द्रा यद्दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ।३६।

हे जननि !

तुम्हारे अधिष्ठान रूपी स्वाधिष्ठान में अग्नि के ऊपर रहने वाली महा समया नाम्नि शक्ति के साथ सम्वर्तेश्वर को मैं स्तवन करता हूं, जिसके क्रोध की ज्वाला से जलते हुये संसार को तुम दया की दृष्टि से शीतल उपचार को रचती हो ।

भाष्यः—

इस श्लोक में समया शब्द आया है—

"श्री विद्या वगला चैव कालरात्रिस्तथैव च।
जयदुर्गा छिन्नमस्ता समया पञ्चकीर्तिता॥"

श्रीविद्या, वगला, कालरात्रि, जयदुर्गा, छिन्नमस्ता यह पांच समया हैं। यहां मणिपुर को स्वाधिष्ठान कहा, केवल नाम परस्पर बदले हैं शेष सब समान हैं।

इन प्रत्येक चक्र का वर्णन पहले भी आ चुका है। कोई इस भाष्य में पुनरुक्ति समझेंगे परन्तु पुनरुक्ति नहीं है। आगे के श्लोक में भी ये नाम आवेंगे। भगवती का ध्यान कहां कहां पर किया जाता है, उस गणना में १८ स्थान बताये हैं। किस किस स्थान में किस किस देवता और किस उपचार और किस भावना से भगवती का ध्यान होता है। एतदर्थ षट् चक्रों का पृथक् २ वर्णन आया है। नाभि स्थान दश दलात्मचक्र से प्रकट हुई। सम्वर्त नाम की अग्नि चतुर्दश भुवन को जलाने लगती है उस काल में भगवती की दयामय दृष्टि से समया रूपा देवी शीतल उपचार से जगत को रक्षा करती है। इस चक्र का स्वरूप तन्त्र शास्त्र में बताया है—"तस्योर्द्धं नाभि मूले दशदल ललिते पूर्ण मेघ प्रकाशे नीलाम्भोज प्रकाशै रुपहितजठरे, डादि फान्तःसचन्द्रैः, ध्यायेद्वैश्वानरस्यारुण मिहर समं मण्डलं तत्रिकोणम, तद्बाह्यै स्वस्तिकाद्यै त्रिभिरभि लसितं तत्र वह्नेः स्वबीजम्।"

नाभी में दशदलात्म यह चक्र है। मेघ के समान नीला वर्ण है। ड-कार से फ-कार तक दश अक्षरों की ध्वनि यहां से निकलती है। यह अग्नि का स्थान है, त्रिकोण के भीतर "रं" बीज के रूप में अग्नि रहता है। नाभी कमल में संहारेश्वर संहारेश्वरी के योग से संवर्त नाम की अग्नि-ज्वाला धधकती है, जिसे प्रलयाग्नि भी कहते हैं। "यदा-लोका" जिसकी लपक से संसार जलता जाता है। उस समय भगवती की दयामय दृष्टि किरणों से शीतल उपचार होता है। इस स्थान में भगवती का ध्यान करने से देह में जितनी प्रकार की ज्वलन या उत्ताप होता है, वह शमन हो जाता है। "संसार ताप तप्तानां त्वमेव शरणं विभो।" संसार के दुःखों से संतप्त प्राणी को इस स्थान पर ध्यान लगाने से शान्ति मिलती है।

यथा—पञ्चसमया श्री-विद्या बगला—"ॐ ह्लीं बगला मुखी सर्व दुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा" कालरात्री। †

---

† तैजस ६२ रश्मी इनके संमीश्रण विश्लेषण कर पिण्ड बनाने से अनेक अद्भुत प्रलयाग्नि के शस्त्र बनते हैं।

परापरा, चण्डेश्वर, परम्, चतुष्मति, तत्परा, गुह्यकालिका, अपरा, सम्बर्त, चिदानन्द, नीलकुब्जा, अघोरा, गन्धा, समरा, रसा, ललिता, स्मरा, स्वच्छ, स्पर्श, भूतेश्वर, शब्दा आनंद, डाकिनी, आलस्या, रत्नडाकिनी, प्रभानन्दा, चक्रडाकिनी, योगानन्दा, पद्मडाकिनी, अतीत, कुब्जडाकिनी, स्वाद, प्रचंडडाकिनी, योगे-

बगला ध्यानम्—

मध्ये सुधाब्धि मणिमंडपरत्नवेद्यां सिंहाशनोपरिगतां परिपीतवर्णां।
पीतांवराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवींभजामिधृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्॥

कालरात्री—

अस्य श्री कालरात्रि मंत्रस्य. भैरव ऋषि. अनुष्टुप् छंदः श्रीकालरात्रि देवता ह्रीं बीजं, स्वाहा शक्ति, हूं कीलकम्, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ह्रों षड्दीर्घ मायाबीज से ध्यान करे।

ध्यानम्—

आरक्त भानुसदृशीं यौवनोन्मत्त विग्रहाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनाम भीषणां चन्द्रशेखराम्॥
प्रेताशन समासीनां भजतां सर्व कामदां।
दक्षिणे चाभयं पाशं वामे भुवन मेव च॥
रक्त दंड धरां देवीं कालरात्रीं विचिंतयेत्॥

मंत्र—ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं कालेश्वरि सर्वजन मोहनि सर्वमुख स्तम्भनि सर्वराजवशंकरि सर्वदुष्ट निर्दलिनी सर्वस्त्रीपुरुषा कर्षिणी वंदिश्रृङ्खलां स्त्रोटय स्त्रोटय सर्वशत्रून् जम्भय जम्भय द्वेषं निर्दल

श्वर, चंडा, पीठेश्वर. कोसला, कुल-कौलेश्वर, पावनी, कुक्षेश्वर, समय; श्रीकंठ, कामा, अनन्त, रेवती, समयका, ज्वाला, पिङ्गला. कराला, मदाख्या. कुब्जिका. करालरात्री गुरु, परा. शान्ता शिवगुरु शान्त्यातीत, रत्नगुरु, सिद्धगुरु, विद्या मेलगुरु प्रतिष्ठा समयागुरु. निवृत्ति ये ६२ रश्मी तैजस है।

निर्दल सर्वं स्तम्भय स्तम्भय, उच्चाटय उच्चाटय सर्ववश्यं कुरु कुरु सर्व कालरात्रि कामिनि गणेश्वरि हूं फट् स्वाहा ॥

अथ जय दुर्गा– अस्य जय दुर्गा मंत्रस्य नारद ऋषिः गायत्री छंदः जय दुर्गा देवता ॐ बीजं, स्वाहा शक्तिः. रक्षिणी कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा। इति षडंगन्यास मंत्राः। ध्यानम्—

कीलालाभं कटाक्षैररि कुलभयदां मौलिबद्धेन्दुखंडाम्।
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखिमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्॥
सिंहस्कंधाधिरूढ़ां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयंतीं।
ध्यायेद्दुर्गांजयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा।

अथ छिन्नमस्ता—अस्य त्रिशक्ति मन्त्रस्य भैरव ऋषिः सम्राट् छन्दः श्री वज्र वैरोचनीय देवता ह्रीं वीजं, स्वाहा शक्ति, षट् कीलकं श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः।

षडंगमन्त्रा—ॐ खड्गाय स्वाहा, ॐ सुखड्गाय स्वाहा, ॐ ऊं श्रीविद्या रागाय स्वाहा, ॐ ऐं पाशाय स्वाहा, ॐ अं अंकुशाय स्वाहा, ॐ अः असुरान्तकाय स्वाहा। ध्यानम्—

स्वनाभौ नीरजं ध्यायेत् शुद्धं विकसितं सितम्।
रजः सत्व तमोरेखा योनिमण्डल मण्डितम्॥
मध्येतु तां महादेवीं सूर्य कोटिसमप्रभाम्।
छिन्नमस्तां करे बामे धारयन्तीं स्वमस्तकम्॥
प्रसारित मुखां भीमां लेलिहानोग्रजिह्विकाम्।

पिवन्तीं रौधरीं धारां निजकण्ठ समुद्भवाम् ॥
विकीर्ण केश पाशां च नाना पुष्प समन्विताम् ।
दक्षिणे च करे कर्त्री मुण्डमाला विभूषिताम् ॥
दिगम्बरां महाघोरां प्रत्यालीढ पदस्थिताम् ।
अस्थिमाला धरां देवीं नाग यज्ञोपवीतिनीं ॥
रतिकामोपविष्टां च केचिद् ध्यायन्ति मन्त्रिणः ।
सदा षोड़शवर्षीयां पीन्नोन्नत पयोधरान् ।
विपरीत रतौ सक्ताः ध्यायेद् रति मनो भवौ ।
योनिमुद्रा समारूढां विचित्राशन संस्थिताम् ॥
वर्णिनी डाकिनी युक्तां बामदक्षिण योगतः ॥

मन्त्र—ॐ क्लीं ह्रीं ऐं बज्र वैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ।

यह पञ्च सामयिका का पूजन कर, पीछे गायत्रीका पूजन जप श्रीचक्र में यह पूजन होता है। इस नाभि चक्र में सम्बर्तेश्वर का मन्त्र भी जपते हैं। सम्बर्तेश्वर मन्त्र—तारपञ्चक मद्धृत्य, ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं तथैवच ह्स्रौं क्ष्रां क्ष्रीं तथैव छ्रीं किणिद्वन्दमतःपरम् इत्यादि । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्स्रौं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रौं किणि किणि हस् फ्रैं हस्फ्र्यैं हस्क्षमलवरयूं ॐ हस्क्षमलवरयीं, हस्क्षमलवरयूं, ह्रीं ऐं ह्स्रौं ह्स्रूं ह्स्रां ह्रौं ह्रूं ह्रां ह्रां ऐं ऐं नित्ये भगवती हस्फ्रैं कुलेश्वरी ह्रां ह्रूं ह्रीं ह्रां ह्रूं ह्रैं ह्रौं ङ ञ ण न क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रूं क्ष्रैं श्रीं फट् हस्रौं फ्रैं अघोरमुखि कुब्जिकायै छ्रां छ्रीं छ्रूं घोरे अघोरे वं शं सं हं किणि किणि महाकिणि विच्चे। यह सम्बर्तेश्वर का मन्त्र है।

तडित्वन्तं शक्त्या तिमिर परिपन्थिस्फुरणया ।
स्फुरन्नानारत्नाभरण परिणद्धे न्द्रधनुषम् ॥
तव श्यामंमेघं कमपि मणिपूरैक शरणम् ।
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिर तप्तम् त्रिभुवनम् ॥४०॥

टीका:—

हे भगवती ! मणीपुर ही एक मात्र कमल जिसका स्थान है । श्यामवर्णके मेघेश्वर और मेघेश्वरीकी उपाशना करता हूं यद्वा (अमरेश्वरम्) सौदामिनी विद्युत् रेखाकी चमक से अंधकार या अज्ञान को दूर करनेवाली अमृतेश्वरी प्रकाश रूपा जिसकी स्फुरणा है । अनेक प्रकार के रत्नों से खचित इन्द्र धनुष की चमकवाली मेघेश्वर मेघेश्वरी हरमिहर सूर्य और सम्वर्तेश्वर से संतप्त त्रैलोक्य को बर्षा से शीतल कर रही है, ऐसे अमृतेश्वर का मै भजन करता हूं।

भाष्य:—

इस श्लोक में मणिपुर नाम से जिसका उद्देश्य किया गया है अन्यत्र योग शास्त्र में इस चक्र को स्वाधिष्ठान कहते हैं । यहां पर भगवती अमृतेश्वरी या मेघेश्वरी के स्वरूप में रहती है इस कमल का स्वरूप इस प्रकार है ।

"सिन्दूरपूररुचिरारुण पद्म मन्यत्, सौषुम्ण मध्य घटितं ध्वज मूलदेशे, अंगच्छदैः परिवृतं तड़िदाभ वर्णैवाद्यैः सबिन्दु

लसितैश्च पुरन्दरान्तैः। तस्योपरि प्रविलसद्विषद प्रकाश-मम्भोज मण्डलमथो वरुणस्य तस्य, अर्धेन्दु रूप लसितं शरदेन्दु शुभ्रं, वंकार वीजममलं मकराधिरूढ़म्। स्वाधिष्ठानाख्य मेतत् सरसिज ममलं चिन्तयेत् योमनुष्यः। तस्याहंकार द्योषादिक सकल रिपुः क्षीयते तत् क्षणेन। योगीशः सोपि मोहाद्-भुत तिमिरचय भानु तुल्य प्रकाशः। गद्यैपद्यैसमस्तै विरचयति सुधा काव्य सन्दोह लक्ष्मी॥

यह षट् दलात्मक नाभिचक्र में मणीपुर (जिसे स्वाधिष्ठान अन्यत्र ग्रन्थों में कहा है) यहां राकिनी देवी व-कार से ल-कार तक षट् वर्णात्म चक्र में ध्यान करने से योग-शक्ति, ज्ञान-शक्ति रचना-शक्ति का विकाश होता है, मेघेश्वरी रूप में भगवती का ध्यान होता है। आप्य रश्मि ५२ प्रकार की निकलती हैं। श्याम रंग का निर्देश अज्ञान तिमिर को दूरकर शान्ति प्राप्ति परक है। इस स्थान में द्वीपेश्वर का मन्त्र जपा जाता है। तारपञ्चकमुच्चार्य स ह क्षमल वेतिच रयूं नमो भगवती हस्फ्रैं वीज मतः परम् कुब्जिकायैततो ह्रां ह्रें ह्रीं ङ ञ ण नमः, अघोरमुखी छ्रां छ्रें छ्रूं।

जलकी रश्मियां उनके नामानुसार उनकी शक्तिका प्रयोग जान लेना।

सद्योजात, माया, वामदेव, श्रो, अघोर, पद्म, तत्पुरुष अम्बिका, अनन्त, निवृत्ति, अनाथा, प्रतिष्टा, जनाश्रिता विद्या, अचिन्त्या, शान्ता, शशि शेखरा, उमा, तीव्रा, गंगा, मणिवाहा,

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया ।
नवात्मानं मन्ये नवरस महाताण्डव नटम् ॥
उभाभ्यामेताभ्यामुदय विधिमुद्दिश्य दयया ।
सनाथाभ्यां जज्ञे जनक जननीमज्जगदिदम् ॥४१॥

टी०:—

हे भगवती ! तुम्हारे अधिष्ठान मूलाधार में लास्य श्रृङ्गार रस के नृत्य में परायण समया अम्बा के साथ नवयोन्यात्मक नवीन देह धारी नवरसात्मक महा ताण्डव के नट शिव को मैं जानता हूं यद्वा स्तुति करता हूं. उदय-विधि संसार की पुनः रचना में दया से जिन्होंने मातृ-पितृवान संसार को बनाकर सनाथ किया है ।

भाष्य:—

इस श्लोक में मूलाधार जहां से सारी समष्टि और व्यष्टि की उत्पत्ति होती है, उसका वर्णन आया है । कुण्डलनी स्थान

सरस्वती, अम्बुवाहा, कमला, तेजोदिशा, प्रवाती, परावती, विद्या वागीश्वरा, चित्रा, चतुर्विद्यै श्वरी, सुकमला, उमा गंगेश्वरा, मन्मथा, कृष्णेश्वरा, श्रीया, श्रीकण्ठा, लया, अनन्ता सती, समकरा, रत्नमेखला, पिंगला, यशोवति, साध्याख्या, हंसानंदा, परा-दिव्यौघा, वामा, मारदिव्यौघा, ज्येष्ठा, पीतोघा, रौद्री, सर्वेश्वरा, सर्वमयी ये ५२ जल की रश्मियाँ हैं ।

सब का आधार है, इसलिए इसे मूलाधार कहते हैं। "अथाधार पद्मं सुषुम्णाख्य लग्नं ध्वजाधो गुदोद्ध्वं चतुष्कोण पत्रं, अधोवक्त्र मुद्यत्सुवर्णाभ वर्णैः वकारादि सान्त्यैर्युतैर्वेद वर्णैः।" मूलाधार चतुष्कोण वृत्त में पश्चिमाभि-मुख स्वयम्भू-लिंग और डाकिनी शक्ति का निवास है। कुण्डलनी के उत्तोलन में जो क्रिया होती है वही ताण्डव नृत्य है, और डाकिनी शक्तिका लास्य, यही संसार की प्रसव मातृका है। श्री क्रम में लिखा है, "कर्णिकायां स्थिता योनी कामाख्या परमेश्वरी। अपानाख्यश्च कन्दर्प आधारे तत्त्रिकोणके। स्वयम्भू लिंग तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं प्रिये। भ्रमन् योनि गतं ध्यायेत् कामं वन्धूक सन्निभम्।" तथाच "मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छा ज्ञान क्रियात्मिके मध्ये स्वयम्भू लिंगस्तु कोटि सूर्य सम प्रभम्" मूलाधार में नवात्मेश्वर ॐ सह क्षमलं वरयूं नमो भगवति हस्फ्रें कुब्जिकायै ह्रां ह्रूं ह्रीं ङ ञ ण नमः अघोर मुखि छ्रां छ्रीं छ्रूं किणिकिणि विच्चे।

इस प्रकार मूलाधार चतुष्कोण के मध्य से पृथ्वी वीज 'लं' है, इसके भीतर त्रिकोण ("इच्छा, ज्ञान, क्रियात्मक") के मध्य में स्वयम्भू लिंग है, जिसका सञ्चालन काम वीज से होता है। साधक; पूरक, कुम्भक रेचनात्मक प्राणायाम सिद्धकर अपान को पूरक की सहायता से आकुञ्चन कर मूल बन्ध को बांधता है। सिद्धाशन में बैठा हुआ खेचरी मुद्रा द्वारा हूं हूं हूं इस प्रकार कुण्डलनी को जागृत कर उद्ध्वंगति करता है, उस समय स्वयम्भू लिंग पर सार्द्ध त्रिवृत्ता कुण्डलनी परा शक्ति को उच्छालन में

जो क्रिया होती है वही लास्य है अर्थात् शक्ति का नृत्य है। उस काल में स्वयम्भू लिंग में जो स्फुरणा होती है वह ताण्डव नृत्य है। स्वयम्भू लिंग और कुण्डलनी शक्ति का सञ्चालन रूपी कर्म या आदि माता पृथ्वी की ५६ रश्मियों के बीच में उसकी अधिष्ठातृ देवता जो तुम आदि जननी हो, जिसने चतुर्दलात्मक मूलाधार को अधिष्ठान किया है उसका यह नृत्य है। तुम्हारे शृंगार रस के विकाश करने वाला अभिनया (प्रकाशन) ही नव रसात्मक नृत्य है, या जो नव व्यूहात्मक यन्त्र या नव कूटात्मक जो मन्त्र विग्रह है या जो नवखन्डात्मक पृथ्वी तत्व हैं या जो नव योन्यात्मक जो श्री चक्र है या नवरसात्मक जो बसुधा इसको सञ्चालन करनेवाले जो तुम्हारे शिव शक्त्यात्मक लास्य ताण्डव नृत्य है, मैं उसको प्रणाम करता हूं। मार्कण्डेय ऋषिने इस पृथक् चक्र को आधार ही नहीं कहा है। अपितु भगवतीका स्वरूप बताया है, यथा—"आधार भूता जगतस्त्वमेका मही श्वरूपेण यतः स्थितासि" इस लास्य प्रिया भगवती और ताण्डव प्रिय शिव से ही सारे प्रपञ्च का विकाश हुआ है। अतः माता पिता की तरह यह संसार तुम दोनों से सनाथ हुआ "उदय विधि शब्द" से संहार के अनन्तर दया की रश्मियों के प्रसारण से जो संसार का पुनः सृजन (जीवन) हुआ है, उसमें शिव शक्ति का जो हर्ष वही लास्य तथा ताण्डव नृत्य है। प्रायः सन्तान के होनेपर माता पिता हर्षित होकर आनन्द के प्रमोद में नृत्यगीत करते हैं या कराते हैं। "तवाधारे मूले"

मूलाधार जिसमें तुन्हारा निवास है यही कुण्डलनी महाशक्ति की विश्रान्त स्थली है श्री चक्र में यह वैन्दव स्थान है यहां जो आदि त्रिकोण है वह भगवती त्रिपुरा का स्थान है, जब इसमें कुण्डलनी जागृत रहती हैं तब इसे मोक्ष स्थान भी कहते हैं। श्रीचक्र में जिस प्रकार षट् चक्र पृथक् है उनके आवरण देवता तथा वशिन्यादि शक्ति षोड़श नित्या तथा पञ्चाशत मातृकाओं का स्थान है जिनका विवरण प्रसंगानुसार इस पुस्तक के भाष्य में स्थान २ पर आचुका है, वे सब इस स्थान पर स्थित है! योग मार्गानुसार षट् चक्र मनुष्य के शरीर में विभिन्न स्थानों पर है इनका प्रारम्भिक त्रिकोण वैन्दव स्थान से चलता है वैन्दव स्थान जहां अमृत का क्षरण होता हैं, जिसे सुधासिन्धु या सहस्रार भी कहा है। तवाधारे से तात्पर्य भगवती का यह मूल स्थान है, कोई २ भाष्यकार इस प्रकार भी इसका अर्थ करते हैं। नाद के चार अंगों में से श्रीचक्र का जो त्रिकोण हैं वह परा है, श्रीचक्र के अष्टकोण पश्यन्ति हैं। अन्तर्दशार और वहिर्दशार मध्यमा है, चतुर्दशार वैखरी है! शिवचक्र जो दो दलवाले है, वह मेखला और भू बृत्त हैं।

देह में मूलाधारादि षट् चक्र बिन्दु स्थान से कहे जाते हैं। कला ५० तथा ३६० का जो वर्णन आया है, वह पञ्चतत्व और २६ मानस तत्वों से नीचे हैं। अतः भगवती नाद-विन्दु, कला से परे हैं। सुधा सुन्धो में जो वर्णन आया है, भगवती का स्थान उससे भी परे हैं। जिसको शास्त्र ने "सुगुप्तम् तद्यत्नात"

अतिशय परमामोद सन्तान राशेः परं कन्दं सूक्ष्मं सकल शशि-कला शुद्धरूप प्रकाश" यह भगवती का शुद्ध स्वरूप चितकला रूप साधक गुण द्वारा महावेध महाबन्ध तथा खेचरी मुद्रा को सिद्ध कर भगवती के मन्त्र को जपने से ही मूलाधार में उसे कुण्डलनी के विकाश का अनुभव होने लगता है। मूला-धार और स्वाधिष्ठान के मध्य में ब्रह्म ग्रन्थी को भेदन कर मणिपुर में प्रकाश होता है। मणिपुर अनाहत में भगवति का पूजन मानसोपचार से होता है। तब विशुद्ध में षोड़श नित्या का पूजन षोड़शी के दर्शन कर आज्ञा और सहस्रार में जाता है, सहस्रार में कल्पपादपों के बीच मणीद्वीप में भगवती का साक्षात्कार पाकर पुनः अवरोह मार्ग से मूलाधार में कुण्डलनी को लेजाना यही भगवति का लास्य है! लास्य प्रायः स्त्रीयों नृत्य होता है लास्य में श्रृंगार करुणा-रस की प्रधानता है। ताण्डव पुरुषों का नाच इसमें वीर, वीभत्स अद्भुत-रस की प्रधानता है, परन्तु जब शिव शक्ति में मिल जाते हैं, तब शिव का नृत्य भी लास्य है, जब शक्ति शिवतत्व में मिलती है तब शक्ति का नृत्य भी ताण्डव है। शिवशक्ति तत्व जब मिलते हैं तब संसार बनता है, जब शक्ति शिव तत्व में लय होती है तब संसार का लय हो जाता है लास्य की प्रधानता शिव शक्ति योग, ताण्डव की प्रधानता शक्ति शिव योगः, श्मसानमें महाकाली महाभैरव का भयानक अद्भुत रस सूचक ताण्डव नृत्य होता है, प्रायः शंकर का स्वतन्त्र नृत्य ताण्डव है, भगवती का

लास्य, श्री भगवान कृष्ण का नृत्य रास, "रसोहवै लब्ध्या "आनन्दी भवती" ये तीन प्रकार के नृत्य भगवती के पृथक्-पृथक् हैं।

गतै र्माणिक्यत्वं गगन मणिभिः सान्द्र घटितं ।
किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः ॥
सनीडेयच्छायाच्छरणशबलं चन्द्र शकलम् ।
धनुःशौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणाम् ।४२।

टी०—

हे हिमगिरि सुते! तुम्हारा स्वर्णमय मुकुट जिसमें आकाश के देदीप्यमान सूर्यादि मणि जिसमें जड़े हुए हैं, तथा जिस माणिक्य मुकुट की चमक से नाना प्रकार के रंगों की छटा

उड्डीश्वर, उड्डीश्वरी, जलेश्वर जलेश्वरी, पूर्णेश्वर, पूर्णेश्वरी कामेश्वर, कामेश्वरी, श्रीकंठ गंगा, अनन्त, रसमा, समकर मतीनंगला, पातालदेवी, तारलाख्या, नादा, आनन्द डाकिनी, आलस्या, शाकिनी, महानन्दा, लाकिनी, योग्या, काकिनी, अतीत, साकिनी, पाद हाकिनी, आधारेश्वरी, रक्ता, चक्रशीश, चंडा, कुरंगी, कुरंगीणा, कराला, मदद्दष्टा, जहोच्छुष्मा, अनादि, पिंगला, मातंगि, सर्वजनविमला, पुलिका, योग विमला, शाम्भरीं, सिद्धीउर्मिळा, वचावरा, श्याम विमता, कुलालिबा, मित्रेशा, कुवजा, अहश्या, लध्वी, षष्टीश, कुलेश्वरी, पर्याधीश और अजा।

अर्ध चन्द्राकृति इन्द्र धनुष को भ्रान्ति वुद्धि में आतो है, उस मुकुट को मैं वन्दना करता हूं।

भाष्यः--

भगवति की मूर्ति की शोभा मुकुट से चरण तक का वर्णन इन श्लोक में आ रहा है। पूर्व वर्णित श्लोकों में भगवति की मन्त्रात्मक मूर्ति दर्शाई है। इन श्लोकों में सुन्दरता के समुद्र का वर्णन आया है। इसीसे इसका नाम सौन्दर्य लहरी (सुन्दरता का सागर) है। तथा आत्मज्ञान के विकास से आध्यात्मिक आनन्द की तरंगों का वर्णन होने से इसे आनन्द लहरी भी कहा है। भगवती के पाद-पद्म की ३६० रश्मियों का विकाश इसमें दिया है। भगवती के मुकुट की सहस्रशः मणियों की कान्ति की तुलना द्वादशादित्य रश्मि पुञ्ज से नहीं कर सकते हैं। इन मुकुट मणियों के सहस्त्रों रंग को तुलना इन्द्र धनुष के अनेक रंगों से नहीं की जा सकती हैं। इस रचना का नाम सौन्दर्य लहरी और आनन्द लहरी भी कहा है, इसमें विश्व की सुन्दरता दिखाई गई है। वास्तविक सौन्दर्य क्या है सुन्दरता रूपी रस का समुद्र तथा आनन्द का महान सागर (आत्म निष्ठा) इस रचना में दिखाई है, भगवती के सौन्दर्य का वर्णन श्लोक १२ में "त्वदीयं सौन्दर्यं × × × × × तपोभिदुष्प्राप्यं × × × × गिरिशसापुज्यपदवीं" उस दिव्य सौन्दर्य जो कि पार्वती के स्वरूप में है "तुहिन गिरिकन्ये" कहा है वह अवर्णनीय वना कर भगवती के मन्त्रात्मक मूर्ति ३२ श्लोब

"शिवः शक्तिः काम" में बताया है। यन्त्रात्मक मूर्ति "चतुर्भिः श्रीकण्ठैः" श्लोक ११ में कुण्डलनी स्वरूप श्लोक २१ "तड़िल्लेखा" कहकर इस स्वरूप को परमानन्द का समुद्र बताया है। इस श्लोक ४२ से "गतैर्माणिक्यत्वं" भगवती हिमगिरिसुता पार्वती की मूर्ति का प्राकृत सौन्दर्य का वर्णन हुआ है। यहां से षोड़श शृंगार की रचना स्त्रीयों को अपने दिव्य स्वरूप बनाने का निर्देश है। भारतवर्ष में सब से उच्च हिमालय की राजपुत्री भगवति उमा का सुन्दर स्वरूप और षोड़श शृंगार का वर्णन यही प्रकृति के सुन्दरता का समुद्र है। इस देश की शृंगार रचना देवियों में उनके दिव्य भाव को प्रकट करनेवाली है। जो कन्या ४२ श्लोक में वर्णित् शृंगार नित्य करती रहती हैं, उनके मन की पवित्र भावना उनके दिव्य स्वरूप को विकाश कर उनमें देवी की शक्ति का सञ्चार होता है। इस श्लोक में कालिमा में स्वेत रंग का वर्णन कर उस स्वरूप के ध्यान से अन्तःकरण का अन्धकार दूर होना बताया है, प्राकृतिक सौन्दर्य यह दिखाया है। कालिमा छादित नभो मण्डल में स्वच्छ तारा मण्डल के चमक से जिस प्रकार विभावरी (रात्रि) की सुदन्रता अनुपमेय हैं। इसी प्रकार भगवती के केश कलाप में पुष्पस्तव की शोभा कमनीय हैं। इस वर्णन से भगवती पावती का सहज सौन्दर्य और सुकुमारता का पूर्ण प्रकाश दिया गया है। हिमालय पुत्री भगवती पार्वती इतनी सुन्दर सुकुमार होती हुई समय पर शत्रुओंके विध्वंश करनेमें कालिका स्वरूपसे प्रकट हुई।

ओर आत्म ज्ञान देने में उमा के स्वरूप से जैसे केनोपनिषद में आया है। अतः पुत्री को पिता का कर्तव्य उसके सम्मान और शान्तिमय जीवन चलाने को सबसे प्रथम समर साहित्य का विकाश कराना है। यदि पार्वती को संसार पाण्डित्य नहीं होता तो महिषासुर आदि आतंककारियों से संसार में शान्ति स्थापन कैसे कर सकती। "खड्गं चक्र गदा" तलवार बंदूक आदि शस्त्रास्त्रों का व्यवहार कैसे कर सकती थी। भगवति पार्वती के (महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती) तोनों स्वरूपों के ध्यान में शस्त्र अस्त्र धारण की हुई मूर्ति बताई है, इस प्रकार को मूर्ति का ही साधक उपाशना में ध्यान करने से विजयी होता है। केवल सैन्य कुशलता ही नहीं, अपितु अध्यात्म ज्ञान भी इसो भगवती उमा ने दिया है, जैसे केन-उपनिषद में आया है। "सतस्मिन्ने वाकाशे स्त्रियमाजगाम वहुशोभमाना उमां हैमवतितांहोवाच" × × इससे साधक भगवती की शत्रु पर विजय कारी शक्ति कालिका स्वरूप, आत्म ज्ञानदात्री सरस्वती स्वरूप आदि का अनुभव कर सकता है।

धुनोतु ध्वान्तंनस्तुलित दलितेन्दीवर वनं।
घन स्निग्धश्लक्ष्णं चिकुरनिकुरुम्बं तव शिवे ॥
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो ।
वसन्त्यस्मिन्मन्ये वलमथनवाटी विटपिनाम् ।४३।

टीका:—

हे शिवे ! विकसित नील कमल बनके सदृश स्निग्ध चमकीले तुम्हारे सिर के सघन केश पुञ्ज हमारे अज्ञान तिमिर को दूर करें। इन्द्र वाटिका के पुष्पस्तवक, इन स्निग्ध कोमल केशों में इनकी सहज सुगन्धीके प्राप्त करने को निरन्तर बास करते हैं। अर्थात् (पुष्पों में सुगन्धी भगवती के केश-कलाप से प्राप्त होती है)।

भाष्य—

इस श्लोक में भगवती के केश-कलाप को सुगन्धी के ग्रहण करने को इन्द्र की प्रधान वाटिका के पुष्प भगवति के केशों में निवास करते हैं और उन पुष्पों का जो सौरभ्य है वह भगवती की ही सुगन्धी है अर्थात "यद्यद्विभूति" जो भी जिस पदार्थमें विभूति है वह सब भगवती की है। पुष्पों में सुगन्ध भगवती की है। यथा="पुण्योगन्धः पृथिव्यां" (गींता) प्रायः स्त्रियां सौन्दर्य विकाश यद्वा सिर में शिवशक्त्यात्मक योग होने से पुष्प रचना सिर में करती है, उसका समुदाचार इससे दिखाया है। श्वेत पुष्पों की कृष्ण केशों में रचना का तात्पर्य कृष्ण वर्ण आकर्षक होने से श्वेत वर्ण को खींचता हैं। जैसे राधिका के श्वेत वर्ण पर कृष्ण वर्ण का आकर्षक संयोग है, उस भाव का द्योतक है। अर्थात् भगवती के केश कलाप की रचना में जिस प्रकार स्वेत पुष्प को रचना प्रकाशवती होती है इसी तरह

साधक के अन्तः करण का अन्धकार इस स्वरूप के ध्यान से दूर हो जाता है।

वहन्ती सिन्दूरं प्रबल कबरी भारतिमिर–
द्विषां बृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवीनार्क किरणम्।
तनोतु क्षेमं नस्तव वदन सौन्दर्यलहरी–
परीवाहस्त्रोतः सरणिरिव सीमन्त सरणिः ॥४४॥

टी०—

हे भगवती! तुम्हारी सीमन्त (मांग) रेखा (सिन्दूर को धारण करती हुई) तुम्हारे मुख सौन्दर्य की धाराओं के निस्सरण मार्ग केश-पुञ्ज के मध्य में प्रवल कवरी भार अर्थात् केश कलाप अन्धकार रूपी शत्रु समूह द्वारा बन्दि (अवरुद्ध) किए प्रातः-कालीन सूर्य रश्मियों की भांति सिन्दूर पराग धारण किये तुम्हारे मुख की सुन्दरता की लहरें हमारे कल्याण का विस्तार करें।

भाष्यः—

सीमन्त सरणी मांग के बीच में सिन्दूर स्त्रियों के सौभाग्य चिह्न हैं। विवाह के दिनसे मांगमें सिन्दूर लगाने की प्रथा भारत-वर्ष में है। स्त्रियोंके केशोंको (सिरके मध्य) समान दो विभाग कर मध्यमें सिन्दूर लगाना यह शिक्षित हिन्दू समाज का आचार है। इसीसे स्त्रियोंको सीमन्तनी भी कहते हैं, शिरकी केश-पंक्तियों के मध्य भाग में शृङ्गार करना सौभाग्य चिह्न है, इसका रहस्य

काम शास्त्र में लिखा है। इसमें उत्प्रेक्षालंकार है। भगवती की स्थूल मूर्ति का ध्यान पूजन इस श्लोक से प्रारम्भ होता है। पूर्व श्लोकों में भगवती का मन्त्रात्मक विग्रह और अन्तर्याग वर्णन हुआ है। सिरसे वर्णन का सबसे प्रथम केशों की कालिमा और उनके मध्य में सीमन्त रेखा और उसमें सिन्दूर धार से मंगलमय भगवती के मुख का वर्णन है। प्रथम केश कालिमा के वर्णन से तात्पर्य आदि में "तमआसीत् तमसा गुह्यमग्र्यम्" सृष्टी के पूर्व में अन्धकार था, वही काली स्वरूप है, यहां से यही आदि बिन्दु है, यहां से विमर्श सीमन्त रेखा (मध्यवर्ति रेखा) का वर्णन आया है, और उसमें सिन्दूर की लालिमा जीवन सत्ता का स्पन्दन वताया है। "द्विषां वृन्दैर्वन्दी कृत" शब्द से न केवल अलंकार की उपमा है। इस स्वरूप की उपाशना (ध्यान) करनेवाले साधक के सब विघ्न बाधायें दूर हो जाती हैं। इसका यह तात्पर्य है, उपाशक को प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश की तरह ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। सून्यागार श्मशान, गिरिकन्दरामें एकान्त अन्धकारमें जब साधक बैठता है उसे प्रातःकालीन सूर्यकी भांति भगवतींका प्रकाश होने लगता है।

अरालैः स्वाभाव्यादलि कलभस श्रीभिरलकैः ।
परीतं ते वक्त्रं परिहसति पंकेरुहरुचिम् ॥
दरस्मेरे यस्मिन् दशन रुचि किञ्जल्करुचिरे ।
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरदहन चक्षुर्मधुलिहः ॥४५॥

टीः—

हे भगवती ! तुम्हारा मुख कमल भ्रमर पंक्ति सदृश कालिमा एवं स्वभाव से कुटिल (मुड़े हुए) अलकावली से परिवेष्ठित कमल के सौन्दर्य का उपहास करता है। (जिस मुखारविन्द में) इषत् हास्य दन्तपंक्ति और सुगन्धित पराग युक्त (मुख कमल) कन्दर्प को दहन करने वाले महादेव का तृतोय नेत्र रूपी भ्रमर उस मुखारविन्द के माधुर्य और सौन्दर्य पान करने में मत्त हो रहा है।

भाष्यः—

अराल कुटिल (मुड़े हुए) अलिकलभ (भ्रमर-पंक्ति) दरस्मेरे (इषत् हास्य स्मर) लिहचक्षु शंकर का तृतीय ज्ञान नेत्र से तात्पर्य ज्ञान सम्पन्न तुम्हें देख सकते हैं। कुन्तल से परिवेष्टित तुम्हारे मुखारविन्द की शोभा इस समय कमलों की कान्ति को भी तिरस्कार कर रही हैं अर्थात् कमल पुष्प के सौन्दर्य से अधिक तुम्हारे मुखार विन्द की शोभा बनी हुई है। तुम्हारे घुंघराले केशों की शोभा भ्रमर की पंक्ति के सौन्दर्य से भी अधिक कमनीय है, तुम्हारे मन्द हास्य से दन्त पंक्ति की शोभा तथा मुखारविन्द की मधुर सुगन्धि को भगवान् शिव (जिन्होंने कामदेव को भस्म किया है) भी टकटकी लगाकर तुम्हारे मुखारविन्द की शोभा को देख मस्त हो रहे हैं। शिवका तृतीय नेत्र जिससे कामदेवका दहन हुआ था वही तुम्हारे मुख-कमल पर निरन्तर टकटकी लगाये हुये है। शिव के काम दहन के विशेषण से यह ध्वनि है कि उस

दिव्य मुखार-विन्द की अपूर्व झांकी सब के चित्त को मोहन करने वाली है। जो भगवती की श्रद्धा से उपाशना करते हैं उनके मुख की कान्ति भी उज्ज्वल और आकर्षक होती है।

ललाटं लावण्य द्युतिविमलमाभाति तव यद्-
द्वितीयं तन्मन्ये मकुटघटितं चन्द्र शकलम् ॥
विपर्यासन्यासादुभयमपि संभूय च मिथः।
सुधा लेपस्यूतिः परिणमति राकाहिमकरः ।४६।

टीका:—

हे भगवती ! लावण्य सौन्दर्य की छटा से तुम्हारे ललाट की विमल शोभा मानो मुकुट में विराजमान चन्द्रमा का दूसरा खण्ड है (चन्द्र शकल ऊपर की और ललाट चन्द्र नीचे की ओर है)जब इन दोनों चन्द्र खण्डों को एक दूसरे से मिलाते हैं, वह अमृत लेप द्वारा दो खण्डों का एकी भाव पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र हो जाता है।

भाष्य:—

ललाट में चन्द्र स्थान पूर्व वर्णित है। सहस्रार के चन्द्रमा का ही प्रतिबिंब इसे पहले वर्णन किया हैं। इस ललाट प्रदेश से ही अमृत सिञ्चन होता है। अर्ध चन्द्र भगवती के मुकुट में ऊपर की ओर है, भालरूपी चन्द्र नीचे की ओर है, जब योगी यहां पर ध्यानावस्थित होकर अमृत पान करता है,

वह दशा उसके पूर्ण चन्द्र की हो जाती है; अर्थात् भगवती की मन्त्रात्मक ज्योतिं पञ्च दशी विद्या इस स्थान पर ध्यान करने से सिद्ध होती है। इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार वस्तुतः उत्प्रेक्षालंकार के ललाट में अर्द्ध चन्द्र प्रेक्षण या द्वितीयार्द्ध में अतिशयोक्ति अलंकार है।

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद् भुवन भयभङ्गव्यसनिनि।
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणम् ॥
धनुर्मन्ये सव्येतरकर गृहीतं रतिपतेः।
प्रकोष्ठे मुष्टौच स्थगयति निगूढान्तरमुमे ॥४७॥

हे उमे ! हे भुवन-भय-भञ्जन-कारिणी ! सांसारिक दुःखों से मुक्त करनेवाली तुम्हारी भ्रमर की शोभावाली दोनों भृकुटियां, ऐसी प्रतीत होती है कि कामदेव के वामहस्त में उठाये हुए धनुष की मुष्टिका और प्रकोष्ठको ये ढीला कर देती हैं।

भाष्य--

उपाशक को भगवती के मुखारविन्द के दर्शन जैसे होते हैं, वसे ही उसकी सब प्रकारकी भय हट जाती है। भक्तको भगवती का इस प्रकार दर्शन होता है। इस श्लोकमें भ्रु लतिका के सौन्दर्य वर्णन द्वारा निर्भयता का आशय वर्णन है। इस श्लोक में मायावीज है। यह महामाया का दिव्य सौन्दर्य कथंचितही किसी साहित्य में आसके। भ्रु यग की भुग्नता ओर नेत्र कालिमा

सामुद्रिक परिक्षा से स्त्रियों में ये केवल सौन्दर्य ही नहीं अपितु प्रभाव शालिता का चिन्ह है।

हे संसार भय भञ्जन कारिणि! पार्वती तनिक टेढ़े तुम्हारे भ्रू युगल और भ्रमर के समान कृष्ण नेत्रयुगल कामदेवके बाम हस्त मणि बन्ध और मुष्टिका द्वारा धारण किए हुए धनुष की डोरी को ढीला करती है।

अहः सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया।
त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकतया॥
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुज रुचिः।
समाधत्ते संध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीम्॥४८॥

टीकाः—

तुम्हारा दाहिना नेत्र सूर्यात्मक होने से दिन को बनाता है, वामनेत्र चन्द्रमा होने से रात्री का निर्माण करता है। इषद् विकाश कमल की कान्ति के समान तुम्हारा तृतोय नेत्र दिन रात्री के मध्य में रहनेवाला सन्ध्या काल को बनाता है।

भाष्यः—

यहां भगवतो के तीन नेत्रो का वर्णन किया है। रात दिन के दो नेत्र तीसरा जो सर्वदा काल बना रहता है यह अनन्त दृष्टि है उपाशक भगवति के इस तृतीय ज्ञान नेत्र की प्रसन्नता से अनन्त ज्ञान सुख को प्राप्त करता है।

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः ।
कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुरा भोगवतिका ॥
अवन्ती दृष्टीस्ते बहुनगर विस्तार विजया ।
ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरण योग्या विजयते ॥४९॥

टीकाः—

हे भगवति तुम्हारी दृष्टि विशाला (अन्तर्विकाश रूपा) कल्याणी विस्तार रूपा (स्फुटरुचि स्वच्छ सुन्दर मूर्ति का दर्शन) अयोध्या (स्मेर कनीनका) कृपा धारा (अलसा) मधुरा (वलिता) भोगवती (स्निग्धा) अवन्ति (मुग्धा) विजयां (प्रान्त कर्नीनका) इन-इन नामों से व्यवहार योग्य तुम्हारी विजय हो !

भाष्यः—

पूर्व श्लोक में "अहःसूते" भगवति की दृष्टी का वर्णन दृष्टी से सृष्टी रचना दिखाई है। इस श्लोक में दृष्टी के आठ भेद आठ प्रकारके कार्य सिद्धिके लिए आठ प्रकार की दृष्टी बताई है। जैसा कार्य साधक को सिद्ध करना अभीष्ट हो वैसीं भगवती की दृष्टी का ध्यान करे और साधक की भी वैसी दृष्टी होनी चाहिए। विशाला दृष्टी अन्तः करण में विकाश देनेवाली ब्रह्माभि-मुखी बनानेवाली, कल्याणी मंगलात्मिका दृष्टी स्फुटरुचि, जिससे शोभा अर्थात सौन्दर्यकी पूर्ण विकाश हो। अयोध्या, जो शत्रुओंको जीतने वाली जिसके साथ कोई दूसरा टकटकी न लगा सके। कुवलया

कमल पुष्प दृष्टी, कृपा धारा अनुग्रह रूपा, आधार स्थिर दृष्टी, मधुरा प्रेम रूपा; अवन्ति रक्षा, की दृष्टी है। इन्हीं नामोंसे विशाला नगर (वद्रिनाथ पुरी) कल्याणी नगर अयोध्या धारा मदुरा अवन्तिका आदि नाम ये भगवती की पुण्य-पीठ है। यथा— 'अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका, पुरी द्वाराबनती चैव सप्तैता मोक्षदायिका" विशाला दृष्टो से विशाला नाम नगरी इत्यादि, भगवती की इन विचित्र दृष्टियों से विशाला आदि नगरियों का व्यवहार हुआ है। ये भगवती की नेत्र रश्मि प्रवाह से तत्तन्नाम की नगरियाँ विस्तार हुई। इसका रहस्य यह है इस पदमें देवी के आठ प्रकार की दृष्टी का वर्णन आया है, विशाला कल्याणी इत्यादि विशाला नामसे कही जाती है। अन्तर्विकाश करनेवाली दृष्टी आश्चर्य भाव संकेत करनेवाली बिस्मिता, स्मेर मुखी दृष्टी अयोध्या आलस्य व्यञ्जको दृष्टी धारा, सौर्य भाववतो मधुरा, स्नेहमयी आभोगवति मोह भाव को प्रकट करने वाली मुग्धा, तिर्छी दृष्टी विजया, इन आठ प्रकार की दृष्टी आट प्रकार के पुरश्चरण में आठ प्रकार की सिद्धि देने वाली है, संक्षोभण पहली दृष्टो, विशाला इस क्रम से (२) आकर्षण (३) द्रावण (४) उन्मादन (५) वशीकरण (६) उच्चाटन (७) विद्वेषण (८) मारण इन क्रियाओं में क्रम से उन २ दृष्टियों की आवश्यकता है। देवी की और उपाशक की तत्तत्कार्य की दृष्टी आदेय है! जिन २ स्थानों पर भगवती की दृष्टी से संक्षोभण आकर्षण द्रावण आदि सिद्धियां हुई हैं, उन २

नामों से उन २ स्थानोंका नाम अयोध्या आदि व्यवहार हो रहा है।

अयोध्या आदि नगरियों के नाम के जो वर्णन हुए हैं श्रीचक्र के प्रस्तार के अनुसार मनुष्य शरीर में भिन्न प्रदेशों में ये स्थान है। जैसे त्रोडल तन्त्र में आया है "वाराणसी भ्रुवो-र्मध्ये ज्वलन्ति लोचनत्रये माया वती मुखे वृत्ते कण्ठे चाष्ट पुरी तथा नाभिमूले महेशानि अयोध्या पुरी संस्थिता काञ्ची पीठं कटी देशे श्रीचक्रं मेरुदन्डके'।

कवीनां सन्दर्भस्तवक मकरन्दैक रसिकं।
कटाक्षव्या क्षेप भ्रमरकलभौ कर्ण युगलम् ॥
अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नवरसास्वादतरला।
वसूया संसर्गादलिकनयनं किंचिदरुणम् ॥५०॥

टीका:—

हे भगवती! तुम्हारे तृतीय नेत्र के कटाक्ष व्याक्षेप से कवियों के सन्दर्भरूप मकरन्द के रसिक जो कर्ण युगल है। भ्रमरों के छोटे २ बच्चों के कलभ शब्द करनेवाले नवरसों के स्वाद लेने से तरल हुए उनकी असूया से तुम्हारे नेत्रों में लालिमा छागई है।

भाष्य:—

इस श्लोक में भगवती के कटाक्ष व्याक्षेप नेत्र के चलाने से कर्णयुग्म में अनेक रस युक्त कविता के श्रवण करने का आनन्द इस प्रकार की कवितत्व शक्ति, जहाँ व्यासादियों की

कविता तुच्छ हो जाती है। ऐसी नवरसात्मक कविताओं की स्फुरणा साधक को भगवति के इस रूप के दर्शन से प्राप्त हो जाती है;

इस श्लोक में कामबीज है। कलभौ से क-ल, कवी से ईकार युगलम् से अनुस्वार मिलाकर (क्लीं) कामवीज बनता है। कविता शक्ति कामवीज की सिद्धि पर निर्भर है। इसी कामवीज को कालीदास ने जपा था। इसमें अतिशयोक्ति अलंकार या रूपकालंकार है, भगवती की नेत्रों की शोभा और तृतीय नेत्र भगवती के अग्निवर्ण कहने से उसका विशेष ध्यान।

शिवे श्रृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा।
सरोषागङ्गायां गिरिशचरिते विस्मयवती॥
हराहिभ्योभीता सरसिरुह सौभाग्य जयिनी।
सखीषु स्मेराते मयिजननि दृष्टिः सकरुणा॥५१॥

टीकाः—

हे जननी! शिव पर तुम्हारी दृष्टी शृंगार रसमयी है, पिघलाने वाली शिव के अतिरिक्त कुत्सित अर्थात् घृणा जनक (विभत्स) दृष्टि गंगा पर रोषभरी दृष्टि (रौद्र रसात्मक) शिव के चरित्रों पर आश्चर्य (अद्भुत रस की) दृष्टि शिव के शरीर पर सर्पोंको देख कर भय भीत (भयानक) दृष्टि कमलों के सौन्दर्य पर विजय दृष्टि (वीर रस) सखियों पर हास्य मयी (हास्य रस) और मुझ दीनपर करुणामय दृष्टि हैं।

भाष्यः—

४३ श्लोक में भगवति की दृष्टि रश्मियों का वर्णन चलरहा है, दृष्टि विज्ञान सामुद्रिक शास्त्र में एक महत्व की बात मानी गई है। इस पर भी स्त्री की दृष्टि से मनोभाव तथा उसके जीवन की सब प्रकार की घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। दृष्टि विज्ञान में नेत्र की आकृति, नेत्र का रंग, नेत्र की पुतली की स्पन्दनता, या चञ्चलता, स्वाभाविक रीति से उर्द्ध मुखी दृष्टि, अधो मुखी दृष्टि, तीर्यग् दृष्टि, सरल दृष्टि, सस्नेह दृष्टि, रुक्ष दृष्टि, टकटकी दृष्टि, चल दृष्टि, रोष दृष्टि, शोकाकुल दिष्टि, भय भीत दृष्टि, चोर दृष्टि, पशु दृष्टि, बज्र दृष्टि, विष दृष्टि, अनुग्रह दृष्टि आदि भेद होते हैं। एक दृष्टि मात्र से ही सम्पूर्ण भावनाओं का ज्ञान हो जाता है। मानव संसार में तो इस विज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। यह प्रचलित बात है, कि "दृष्टि की सृष्टि" जैसी दृष्टि की रश्मियों का प्रसरण होगा वैसाही सारा भाव सामने बन जाता है, मनुष्य की विद्या, बुद्धि आयु, सदाचार, विनयन, सम्पत्ति उसकी नेत्राकृति नेत्र ज्योति से जानी जा सकती है। किसी कवि ने कहा है "नयना देत बतात हैं, सबको हेत अहेत" अर्थात् दृष्टि द्वारा हित या अहित की बात प्रकट हो जांती है। दृष्टि रश्मि मानसिक रश्मियों से मिलकर विस्तार पाती है। मनोभाव मन की किरणों द्वारा अपनी भावनात्मक रश्मियों से सम्मिश्रण होकर नेत्र की रश्मियों के साथ प्रवाहित होती है। नेत्र-सूर्य सोमात्मक रश्मिपुञ्ज

को निरन्तर प्रवाहित करते रहते हैं। इन दोनों नेत्रों में अनु–ग्रह अवग्रहात्मक शक्ति विद्यमान है, रश्मियों के पृथक् २ संमि-श्रण से अनेक प्रकार की प्रवाहित धारा बन जाती है। जिनका पुञ्जी करण प्रवाह अमृत या विषका सा प्रभाव उत्पादन करता है, दृष्टि प्रभाव केवल मानव जाति की दृष्टि का ही नहीं हैं, अपितु पशु, पक्षी, कीट, पतंगादिकी दृष्टियोंका भी भिन्न प्रकार का प्रभाव होता हैं। किसी में आकषण की दृष्टि, किसो में भया-नकता की किसी में चञ्चलता की किसी में उग्रता आदि दृष्टियों की प्रधानता है। यह दृष्टि विज्ञान भूलोक निवासो जीवों पर ही समाप्त नहीं हो जाती हैं। गगनचारी ग्रह नक्षत्रों की दृष्टि भी मनुष्य लोक में उथल पुथल करनेवाली हो जाती है। ज्योतिष-शास्त्र में ग्रहों की तथा नक्षत्रों की दृष्टि पर बड़ा बिचार किया गया है। ऋतुओं का परिवर्तन बनस्प-तियों में बल-वीर्य रसकी उत्पति ग्रहों की ही दृष्टि पर है। किसी ग्रह की सीधो दृष्टि किसो की वक्र दृष्टि पर विचार होता है। शुभ ग्रहों की सोधी दृष्टि लाभकारी, पाप ग्रहों की वक्र दृष्टि भावोत्पादक होती है। पुराण में कहा है गणेशजी के जन्म पर सब देवता सूर्यादि ग्रह भगवती पार्वति के वहां आशीष देने गये, इनके साथ शनिश्चर भी गये। शनि-श्चर अपनी आंख मूंद कर गये, उनसे पूछा गया तुमने मुख क्यों छिपाया, उसने कहा मेरी दृष्टि कष्ट देनेवाली होती है, इस कारण मै नेत्र बंद कर के आया। सब के आग्रह से शनिने नेत्र

खोले परिणाम यह हुआ कि गणेश का शिर कट गया, यह शनी की सीधी दृष्टि का फल है। पुनः चन्द्रमा की सीधी दृष्टि पड़ने पर उसपर जो हाथी का शिर लगाया था, वह लग गया। जैसो शनी की दृष्टि विनाशकारी है, वैसी ही चन्द्रमा की दृष्टि अमृत स्राविणी होती है। इसी प्रकार भिन्न २ ग्रहों की भिन्न २ प्रकार की दृष्टि होती है। प्रायः आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को छतों पर घृत या खीर रात्रि में रखते हैं, जिससे सोम रश्मियों से अमृत कण उसमें पड़े यतः उसदिन शरद कालीन पूर्ण चन्द्र से सोमकला की रश्मियाँ टपकती हैं।

इस श्लोक में भगवतो की आठ प्रकार की दृष्टि का वर्णन आया है, जो मुख्य दृष्टि हैं। "शिवे शृङ्गाराद्रा" शिवजी पर जब भगवतीको दृष्टि रश्मि पड़ती है, वह शृङ्गार रससे भरी हुई दृष्टि हैं (शृङ्गाराद्रा), शिव के अति रिक्त मूर्तियों पर जो दृष्टि अनिच्छा प्रकट करने वाली है, वह कुत्सित दृष्टि है। गंगाजी पर सापत्न्य भाव की शंका से रोष भरि (रौद्ररस) दृष्टि है, शिव के अद्भुत कार्यों को सुन कर आश्चर्यमयी (अद्भुत रस) दृष्टि हो जाती है। जब शिव के शरीर पर लिपटे हुए विषैले सर्पों पर देखती है, तो भयभीत (भयानक) दृष्टि हो जाती है। कमलों की सौन्दर्य से अपने मुख कमल को अधिक मनोहर देखकर उच्च दृष्टि विजयवती (वीर रस) की होती है अपने साथ सहेलियों को देखकर हास्यमयि दृष्टि (हास्य रसकी) और मुझपर तुम्हारी दयामय (करुणा रस)

की दृष्टि पड़ती है। इसके अतिरिक्त नवम शान्त दृष्टि है जिस दृष्टि से मोक्ष प्राप्ति होती है। साधक को चाहिए कि भगवती कीं पूजा उपाशना ऐसे आकर्षक मन से करे जिससे भगवती की करुणामय दया की दृष्टि अपने ऊपर पड़े।

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती।
पुरां भेत्तुश्चित्त प्रशम रस विद्रावण फले॥
इमे नेत्रे गोत्राधरपतिकुलोत्तंस कलिके।
तवाकर्णाकृष्ट स्मर शर विलासं कलयतः॥५२॥

टीका:—

पर्वतराज हिमालय वंश की कलिकारूप-भूषणा हे भगवती! तुम्हारे कानों तक लम्बे नेत्र त्रिपुरासुर के वध करनेवाले शिव के अन्तःकरण में शान्ति-रस को दूर कर कामरस को उत्पन्न करते हैं।

भाष्य:—

पूर्व श्लोक में जो भगवती की नवरसात्म दृष्टि का दिग्दर्शन किया है, उन दृष्टियों में से यहां पर श्रृङ्गारमय दृष्टि का विशदीकरण है। सब पर्वतों के राजा हिमालय के वंश की कली (विकाश होनेवाला पुष्प) यह भगवती के मुख सौन्दर्य का द्योतक है। स्त्रियों के नेत्र की लम्बाई का होना नेत्र सौन्दर्य है। यह लम्बाई कान के मध्य भाग की ओर रेखा बनाती है।

भगवती के लम्बे कर्णाकृष्ट नेत्रों का सौन्दर्य श्रृङ्गाररस का प्रभावित करनेवाला होने से शिवजी के दो गुण दिखा कर अर्थात् त्रिपुरासुर को बध करना इस पद से वीर-रस और शान्त-रस ये दोनों रस अजेय होते हैं, इन शान्त वीर भावना को भी विजय करनेवाला श्रृङ्गार-रस बताया है। श्रृङ्गार रस मनुष्य के हृदय को द्रवित कर देता है, इसके उसकी प्रधानता दिखाई है। स्त्रियों का धर्म अर्थादि चतुर्वर्गा सिद्धि का साधक सब से पहला श्रृङ्गार रस है। भगवती की पूजा करनेवाले साधक को भगवती को मूर्ति को जितना बने पुष्पादि उपचार से श्रृङ्गार करे। इस तरह भगवती के श्रृङ्गार करने से उसकी सब कठिनाइयां दूर हो जाती है।

विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरित लीलाञ्जनतया।
विभाति त्वन्नेत्र त्रितयमिदमीशान दयिते॥
पुनः स्रष्टुं देवान् द्रुहिणहरिरुद्रानुपरता-
न्रजः सत्त्वं विभ्रत्तम इतिगुणानां त्रयमिव ॥५३॥

टीकाः—

हे ईशानदयिते! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के विलीन होने पर फिर सृष्टि के उत्पन्न करने में तीन गुणों से पृथक्-पृथक् स्वेत, रक्त, नील वर्णों के तुम्हारे तीन नेत्ररूपी कमलों से इन तीन देवताओंकी उत्पत्ति हुई है।

भाष्यः--

पहले जो नेत्र रश्मियों के भाष्य में दिखाया है, दृष्टि से सृष्टि होती है। उसका विकाश इस श्लोक में आया है। प्रलय-काल में जब तीन देवता अपने-अपने कारणभूत तीन गुणों में लय हो जाते हैं, फिर सृष्टि की रचना भगवती के तीन नेत्रों से रज, सत्त्व, तम गुणों से यथा—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीन देवता तीन वर्ण के स्वेत, रक्त, नील वर्ण के उत्पन्न होते हैं। यथा—"योहवास्य राजसांस सोयं ब्रह्मा इत्यादि" साधक भगवती की उपासना से अपने ऊपर भगवती की करुणामय रश्मियों को प्राप्त करे।

पवित्री कर्तु नः पशुपतिपराधीन हृदये।
दयामित्रैर्नेत्रैररुण धवलश्याम रुचिभिः॥
नदःशोणो गंगा तपन तनयेति ध्रुवममुं।
त्रयाणां तीर्थानामुपनयसि संभेदमनघम्॥५४॥

टीकाः—

हे पशुपति के आधीन हृदयवाली भगवती! हमको पवित्र करने के लिए दया और मैत्री रूप दो नेत्रों से रक्त-वर्ण श्वेत श्याम वर्ण वाले क्रमशः शोणनद, गंगा, 'यमुना, इन तीन तीर्थों के निष्पाप तीन भेद से प्रकट कर रही हो। अर्थात् गंगा 'यमुना' शोणनद ये तीन गंगा भगवती की दया दृष्टि के किरण रूप स्पन्दित हुई हैं।

भाष्यः—

भगवती की करुणा और मैत्री रूपा दो नेत्रों के रश्मि पुञ्जों के संमिश्रण होने से जीवन को पवित्र करने वाली तीन नदी बन रही है। रक्त रश्मियों से गंगा तथा श्यामल रश्मियों के पुञ्जसे सूर्य की पुत्री यमुना नदी, इन तीन तीर्थों को बना रही है जो मनुष्य के पाप को प्रक्षालन करने वाली है। शास्त्र में आया है "गंगा गंगेतियो ब्रूयात् योजनानां शतै रपिमुच्यते सर्व पापेभ्यः विष्णुलोकं स गच्छति" तथाच "यत्र गंगाच यमुनाच यत्र प्राची सरस्वति। यत्र सोमेश्वरोदेव, तत्रमामृत मेन्द्रोपरिश्रुतः" गंगा यमुना के स्नान करने से सब पाप दूर हो जाता है। "श्रीतसामस्मि जाह्नवी" गंगा ब्रह्म द्रव चित् शक्ति की करुणा के मयूख रूपा है। इस श्लोक में पशुपति पराधीन हृदये सम्बोधन दिया हैं। शिव को हृदय में धारण करने से प्रेम रूपा शृंगार दृष्टि से द्रवित होकर तीन धारायें प्रवाहित हुई अर्थात् प्रेमरस से द्रवित हुई है। भगवती की दृष्टि से जिस प्रकार गंगा यमुनादि धारा प्रवाहित होती है। कठोर से कठोर चित्त वाला क्यों न हो, जिसपर भगवती की दया मैत्री कि दृष्टि प्राप्त करने पर अति कठोर चित्त भी दया और मैत्री दृष्टि से द्रवित हृदय हो जाता है। इस श्लोक में यमुना को तपन-तनया (सूर्य पुत्री) इस नाम से संकेत करने का अभिप्राय यही है कि भगवती की दया दृष्टि से संतप्त हृदय वाला भी शान्त हृदय हो कर द्रवित हो जाता है। इस श्लोक में

भगवती को पशुपति पराधीन हृदया शब्द से सम्बोधन किया हैं, भगवती को महा शक्तियों का विस्तार करने पर भी स्त्री स्वरूप में हृदय को पति के अर्पण करने से सतीत्व का भाव दिखाया है। भारत वर्ष में प्रायः शिष्ट समाज में स्त्रियों को देवी कहते हैं यह शास्त्रानुसार आचरण हैं, "स्त्रियः समस्ता सकलाः जगत्सु" संसार में स्त्री रूप सब भगवती की ही कला हैं। अतः भारतीय देवी अपने हृदय को पति के अर्पण कर देने से सतीत्व का बल प्राप्त करती थीं, अर्थात् पति को जो बात प्रिय है वही स्त्री को भी प्रियः प्रायः होती थी। केवल प्रति प्रसब इतना हैं, दुर्भाग्यवस इन्द्रिय लोलुप दुराचारी पति हो जाय तब राजपुत्री चुड़ाला की भांति पति के हृदय को अन्तर्मुख वृत्ति बनानेके अर्थ स्त्री उसके हृदयको शुद्ध करती है, वहां पर-पति के हृदय शुद्ध करने तक हृदय की भावना पृथक रहती है पीछे फिर एक भावना हो जाती है, स्त्रीका सर्वस्व पति बताया है। पति को शुद्ध मार्ग पर चलाना स्त्री का कर्त्तव्य है जो स्त्रियां धर्म पर पति को चलाती हैं, वही धर्म-पत्नि होती है। अन्यथा भोग पर ही जिनका जीवन है, वे धर्म-पत्नि तथा सतीका पद नहीं पा सकती हैं।

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती।
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधर राजन्य तनये॥
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः।
परित्रातुं शंके परिहृत निमेषास्तवदृशः॥५५॥

टीका:—

हे पर्वतराज्-पुत्री ! तुम्हारे नेत्र मूंदने से संसार नाश हो जाता है। नेत्र खुलने पर संसार की उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकार महान पुरुष कहते हैं। संहार से रक्षा करनेवाली तुम्हारी दृष्टि है। तुम्हारी दृष्टि नित्य बनी है (परिहृत निमेष है) निमेष बंद नहीं होते हैं। इस प्रकार मेरी धारणा है।

भाष्य :—

भगवती के निमेष (नेत्र मूंदने से संसार का प्रलय और उन्मेष) दृष्टि के विकाश में प्रलय से पुनः संसार बन जाता है। भगवती तो सदैव जागी हुई है, उसके नेत्र निरन्तर विकशित है तब प्रलय कैसे हो यह तर्कना होती है। उपाशक भगवती की दृष्टि को अपनी भक्ति द्वारा अपने ऊपर खींचता है, इससे उसे किसी प्रकारका मृत्यु तक का भय नहीं "पाशं पाशी, शूलमादाय शूली, वज्रं वज्री, दंडमादाय दंडी धावन् धावन् पार्श्वत,पृष्टतोवा दुर्गे दुर्गे वादिनो रक्षणाय" भगवती का भक्ति पूर्वक नाम स्मरण करने वाले की चारों ओर से सब देवता रक्षा करते जाते है। अतः साधकको चाहिए "प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्" निरंतर भगवती का स्मरण करता रहे। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है, भगवती के नेत्र कमलके बंद होने पर संहार और उन्मेष (खुलने) पर जगतका उदय होता है। तुम्हारे निमेष (मूंदने) पर रक्षा होने में शंका है, साधक भगवती की दृष्टी धारा की याचना करता है। यहां तक भगवतीकी विचित्र भावोत्पादिक भिन्न २ दृष्टी रश्मीका वर्णन है।

तवापर्णे कर्णे जपनयन पैशुन्य चकिता।
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः॥
इयं च श्रीर्बद्धच्छद–पुटकवाटं कुवलयं।
जहाति प्रत्यूषे निशिच विघटय्य प्रविशति॥५६॥

टीका :—

हे अपर्णे! तुम्हारे कर्णाकृष्ट नेत्रोंसे चकित होकर शफरिका जलमय दुर्गमें छिप जाती है और यह कमल वनकी शोभा तुम्हारे नयनोंकी पिशुनतासे चकित होकर कमलपत्ररूपी कपाट को मूंदकर प्रवेश करती है। प्रातःकाल कमलछद कपाटसे बाहर चली जाती है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें यह भाव दिखाया गया है कि मनोमय भावना नेत्र रश्मियोंके प्रवाहसे वाह्य संसारमें प्रभावित होती है। साधक भगवती और गुरुकी महिमाको स्तुति रूपमें जब गद्गद् होकर कहता जाता है तब वह अपना श्रद्धामय वातावरण स्वयं बनाकर अनन्य प्रेम-भक्तिसे भगवती तथा गुरुके आशीर्वादको अपनेमें ग्रहण करता है। इसी तरह पापोंसे घृणाकर पापी संसारसे सम्बन्ध विच्छेद करता है। कमल पुष्पके दृष्टान्तसे देवताकी अनुग्रहात्मक दृष्टि होनेसे क्लेशका नाश, अवग्रहात्मक दृष्टिसे ऐश्वर्यका दिखाया है जैसे कमलके मुकुलित होनेसे भ्रमर दुःखमें बन्द

हो जाते हैं और उसके विकाशसे स्वच्छन्द मकरन्द सौरभको देने लगते हैं, इसी प्रकार भगवतीके नेत्र कमल ढकनेसे संसार का नाश, नेत्रोंके विकाशसे संसारका उदय, साधक इस प्रकार भगवतीका पूजन करे जिससे भगवतीकी करुणा दृष्टिका विकाश बना रहे। इसमें अर्थान्तरान्यास अलंकार है।

दृशा द्राघीयस्या दरदलित नीलोत्पल रुचा।
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे॥
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता।
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः॥५७॥

टीका :—

हे शिवे! कृपया विकसित नील कमलकी कान्तिवाले अपनी नेत्र रश्मियोंसे नीचे टिके हुए मुझ दीनको अभिषिक्त कर दो। इसमें तुम्हारी तो कुछ हानि नहीं है और मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। यतः शीतल रश्मिवाला चन्द्रमा वन और राजभवनमें समानतासे सर्वत्र निजमयुख माला बरसाता है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें अर्थान्तरान्यास अलंकार है। साधक दीर्घकाल साध्य कुण्डलनीकी जागृति करानेमें अपनी अल्प शक्ति जान जैसे घबराता है, वैसे ही उसे भगवतीकी अनुग्रहात्मक दृष्टिका

चमत्कार स्मरण आता है—"श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाको पमगिरा" तथा "मूकं करोति वाचालं पङ्गुंलङ्घयते गिरिम्।" महामाया भगवतीकी अपूर्व महिमाको समझकर भगवतीके चरणोंमें ध्यान लगाकर उसकी करुणामय नेत्र रश्मियोंपर टकटकी लगाये हुए आशा करता है "वने वा हर्म्ये वा समकर निपातो हिमकरः" जिस प्रकार चन्द्रमाका शीतल प्रकाश वन और राजप्रसादमें समानतासे होता है वैसे उपाशनाक्रमसे अभी बहुत दूर टिका हुआ मन्द साधक भगवतीकी दयासे उसकी दयामय दृष्टिको प्राप्त कर लेता है यह शुद्ध भक्तिकी भावना है।

अरालं ते पाली युगलमग राजन्य तनये।
न केषामाधत्ते कुसुमशर कोदण्ड कुतुकम्॥
तिरश्चीनो यत्र श्रवण पथमुल्लङ्घ्य विलस-
न्नपाङ्ग व्यासङ्गो दिशति शरसंधानधिषणाम्॥५८॥

टीका :—

हे पर्वत राजकन्ये! तुम्हारी तिरछी कर्णपाली युगल क्या किसीको कामदेवके वाणका भ्रम उत्पन्न नहीं करती है? अर्थात सबको कामदेवका भ्रम उत्पन्न करती है। यतः अपाङ्ग पर्यन्त (कर्णपाली तक) तीर्यग भावमें फैलनेसे तुम्हारे प्रफुल्ल कटाक्ष विक्षेप कर्णान्त लंघन करती हुई महादेवको मोहित करनेके लिए ही शरसन्धान की भ्रान्तिको उत्पन्न कर देती है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें गुप्त कामकूट है। कोदण्डसे-क अरालसे-ल पाली से-ई कुतुकमूसे-अनुस्वार। इस श्लोकमें कामाकर्षिणीका प्रयोग है, भगवतीके विग्रहात्मक रूपका नेत्र और कर्णान्तके बीच जो पाली युगल है उसका वर्णन है। यहां भ्रान्ति अलंकार है—यथा कर्णमूल तक खींचे हुए कटाक्ष कामदेवके वाणका धनुषपर खींचने की भ्रान्ति करता है।

स्फुरद्गण्डा भोग प्रतिफलित ताटङ्क युगलम् ।
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथ रथम् ॥
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनि रथमर्केन्दु चरणं ।
महावीरो मारः प्रमथ पतये सज्जितवते ॥५६॥

टीका ;—

हे देवि ! तुम्हारे दर्पणवत् निर्मल और प्रफुल्ल कपोलोंमें जो दो ताटक (कर्णकुण्डल) प्रतिविम्बित होकर चार सदृश चमक रहे हैं ये तुम्हारे मुखमण्डल रूपी रथमें चार चक्रवाला बलशाली कामदेव सूर्यचन्द्ररूपी चक्रवाले पृथ्वीरूपी रथपर आरूढ़ शिवके साथ युद्ध करता है।

भाष्य :—

इस श्लोकमें भगवतीके कानोंमे जो लगे हुए ताटंक (कर्णभूषण) और उनके प्रतिविम्ब पड़नेसे गण्डस्थलमें दो कर्णभूषण उनके

प्रतिबिम्ब मिलकर चार ऐसे प्रतीत होते हैं कि भगवतीके मुख-रूपी रथमें जिसमें चार चक्र हैं, उसमें बैठकर कामदेव त्रिपुरासुर को जीतनेवाले सूर्यचन्द्ररूपी चरण पृथ्वीके रथमें बैठे शिवके साथ युद्ध करनेको तैयार है। कामदेवका मन्मथ बल इस श्लोकमें दिखाया है। साधककी तपस्यामें विघ्न करनेवाला बलवान कामदेव है। उसपर विजय करनेसे तपस्या सिद्ध होगी। भगवती का लावण्य सौन्दर्य उपाशकको सर्वदा उपादेय है परन्तु इसमें सशंकित रहना चाहिए जिससे अपना व्रत बना रहे—"कन्दर्प दर्प दलने विरलाः मनुष्या" हाथी, सिंह, भालुहिंस्रक पशुओं पर विजय पानेवाले बहुत शूर-वीर हैं, परन्तु अनङ्ग कामदेवको जीतनेवाले कोई विरले ही होते हैं। इस श्लोकमें उत्प्रेक्षा-लंकार है।

सरस्वत्याः सूक्तीरमृत लहरी कौशलहरीः।
पिबन्त्याःशर्वाणि श्रवण चुलुकाभ्यामविरलम् ॥
चमत्कार श्लाघा चलित शिरसः कुण्डलगणो।
झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते ॥६०॥

टीका :—

हे सर्वाणि! सरस्वतीकी अमृतधारा प्रवाहसे कुशलताकी तरङ्गको कर्ण चषकोंसे (गद्यपद्यात्मकवाणी) पान करती हुई तुम्हारे चमत्कारिक उक्तियोंसे शिर हिलाकर तुम्हारे ताटंकका

झङ्कार उस चमत्कारकी श्लाघा टङ्कार द्वारा प्रतिबचन करते हैं।

भाष्य—

इस श्लोकमें वाग्भवकूट निकलता है। सारस्वत सूक्तियोंका चमत्कार साधककी बाणीमें आ जाता है, और कविता तथा अमृतमय सूक्ति इतनी आकर्षक हो जाती हैं कि उन सूक्तियोंके श्रवण करतेही शिर हिलने लग जाता है। कहा भी है-"किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मता। परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः" उस कवितामें क्या चमत्कार, जिसका भाव हृदयमें पड़कर सुननेवालेका शिर न हिले, वही इस श्लोकमें "चलित शिरसः कुन्डलगणो" इस वाक्यसे सूचित किया है। इस प्रकार की चमत्कारिक सूक्तियोंका विकाश भगवतीकी आराधनासे ही प्राप्य है। यथा

'देवि वाच मुपासते हि बहवः सारन्तु सारस्वतम्।
जानीते नितरामसौ गुरुकुल क्लिष्टो मुरारी कविः॥
अब्धिर्लंघित एव वानर भटैः किन्त्वस्य गाम्भीर्यता।
मापाताल निमग्न पीवर तनुः जानाति मन्थाचलः॥

सरस्वतीकी उपासना बहुत करते हैं परन्तु सारस्वतसारको मुरारी कविने ही पाया है, क्योंकि गुरु-सेवामें उसने बहुत समय लगाया है। समुद्रमें सब वानर रामजीके साथ गये, परन्तु समुद्रकी गहराई मन्थाचल ही जानता है।

असौ नासावंशस्तुहिन गिरिवंश ध्वजपटी ।
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम् ॥
वहन्नन्तर्मुक्ताः शिशिरतर निश्वास घटिताः ।
समृद्ध्यायस्तासां बहिरपि च मुक्तामणिधरः ।६१।

टीका :—

हे हिमालयके वंशकी पताके ! तुम्हारा जो नासिका स्थानीय निकटवर्ती नासिका का दण्ड है, वह हमारे लिए उचित फल देनेवाला हो। जिस नासा दण्डके मध्यमें अनेक प्रकारके मणि-मुक्ता बाहरसे शोभा दे रहे हैं और आभ्यन्तरसे शीतल श्वास जैसे मोतियोंको प्रकट कर रहे हैं और बाहरसे भी मुक्तामणिको धारण करनेवाला प्रतीत होता है अर्थात बांई नासिकासे निस्सरित शीतल वायु मुक्ताके स्वरूपमें प्रतीत होता है।

भाष्य—

इस श्लोकमें बांसा (नासादण्ड) के शीतल पवन जलके अणुमें मिलकर मोतियोंकी शोभा देनेवाली बताई है। किसी देशमें बांससे वंशलोचन जैसे निकलता है उसी तरह मौक्तिक भी प्रकट होते हैं। भगवतीकी नासिकाकी उपमा की गई है। वंश भी इसका अर्थ है। जिस स्त्रीकी नासिका बांसकी तरह होती है, वह वंशवर्द्धक होती है। भगवतीके नासिका भूषणमें जो मोती लगाया हुवा है, वह बांसके सदृश पोली नासिकासे यह द्योतन

करता है कि मोतियोंका भंडार इसके बीचमें है। वह नासिकाके शीतल श्वास मानो मुक्तारत्नको भीतरसे प्रकट कर रहे हैं; यद्वा बांई नासिकासे जो श्वास चलता है वह चन्द्र श्वास है। अतः भगवतीका नासा मौक्तिककी शोभा इस प्रकार प्रतीत होती है कि चन्द्रमाकी कलारूपी मोती नासिकापर विराज रहा है। स्त्रियों के वाम नासिकामें मुक्तामणि पहिरना उनके सौभाग्यका चिन्ह है। भारतवर्षमें प्रायः पूर्वकालसे स्त्रियां बांई नासिकापर मुक्तामणि पहनती थीं इससे उनके मानस व्यापारमें शान्ति और सन्तति का सुख पति-पत्नी प्रेम बना रहता था। नासिकाका भूषण मोती ही श्रेष्ठ है, हीरा आदि रत्न श्रेष्ठ नहीं है। हीराका नाम बज्र है। इसके धारण करनेसे क्रोध और उष्णता होती है। शीतलता देने-वाला मोती है भगवतीकी आरतीमेंभी आता है 'नासाग्रे मोती'।

प्रकृत्याऽऽरक्तायास्तव सुदतिदन्तच्छद रुचेः।
प्रवक्ष्ये साहश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता॥
न बिम्बं त्वद्बिम्ब प्रतिफलन रागादरुणितं।
तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत कलया॥६२॥

टीका--

हे सुदन्ति! स्वभावतः लालिमावाले तुम्हारे दन्तच्छदकी तुलना किसी प्रकारसे विद्रमलता नहीं कर सकती है, यतः तुम्हारे मुखारविन्दकी अरुणिमासे प्रतिबिम्बित होकर विद्रुम

कालिमाको प्राप्त किये हुए हैं इससे वे तुम्हारी लालिमाके सामने लज्जित अर्थात् मुर्झाये हैं।

भाष्य :—

इस श्लोकमें भगवतीकी नासिकाके वर्णनके अनन्तर भगवती के ओष्ठोंका वर्णन क्रमशः किया गया है। परन्तु भगवतोके ओष्ठोंका वर्णन करनेके लिए कविको कोई तुलना ठीक नहीं मिल रही है। यदि विद्रमका कोई फल उत्पन्न होता तो कथंचित् उसमें उपमा दी जाती, परन्तु विद्रमका तो फल नहीं होता है। कहीं-कहीं ऐसा पाठ भी है त्वद्विम्बके स्थानपर दृग्विम्ब इससे सूर्यरूपी भगवतीकी दृष्टिसे विद्रम लालिमाको प्राप्त करता है, तब किसी तरह सादृश्य ओष्ठ लालिमासे कर सकता है। इसमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिबतां।
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चुजडिमा॥
अतस्ते शीतांशोरमृत लहरीमम्लरुचयः।
पिबन्तिस्वच्छन्दं निशिनिशि भृशंकाञ्जिकधिया

टीका :— ॥ ६३ ॥

तुम्हारे स्मेरमुख (मुस्कराहट) रूपी चन्द्रमाके प्रकाशको पान करते-करते उसके माधुर्यसे चकोरोंके चञ्चुपुट (मीठापनसे) जकड़ गये, इस हेतु चन्द्रमाकी पियूष रश्मियोंको आम्ल (खट्टा)

मानकर (चकोर) प्रत्येक चांदनी रात्रिमें अविराम चन्द्र-ज्योत्स्नाको पान करते हैं।

भाष्य :--

इस श्लोकमें भगवतीके चन्द्रमुखका सौन्दर्य वर्णन किया गया है। भगवतीके मन्त्रात्मक विग्रहमें साधक वैन्दव स्थानसे निष्पन्दित अमृत पान करते-करते अवरोहक्रमसे मूलाधारमें आकर पुनः आरोहक्रम सूर्य नाड़ीको पानकर सहस्रारमें कुल-कुण्डलनी को ले जाता है। यही चन्द्रमाके पीयूष रश्मिपानके अनन्तर बाह्य चन्द्रविम्बपरसे ध्यान लगाता है। यतः सहस्रार जो वैन्दव स्थान है उसीका प्रतिविम्ब आज्ञामें चन्द्र स्थान है। जैसे भगवतीके मुखचन्द्रका प्रतिविम्ब यह गगनचारी चन्द्रमा है। इस श्लोकमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

अविश्रान्तं पत्युर्गुणगण कथाऽऽम्रेडन जपा।
जपापुष्पच्छाया तव जननि जिह्वा जयतिसा॥
यदग्रासीनायाः स्फटिकदृशदच्छच्छविमयी।
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा॥६४

टीका :—

हे जननि! निरन्तर पतिके गुणोंको वर्णन करनेसे आम्रेड़ित जपाकुसुमके रक्तवर्णवाली तुम्हारी जिह्वा धन्य है। स्फटिक

के सदृश श्वेतवर्ण कान्तिवाली सरस्वती तुम्हारी जिह्वाके अग्र भागमें बैठी हुई रक्तवर्णमयी मूर्ति हो जाती है।

भाष्य :—

अपने पति शिवके शैविभूतियोंके वर्णन करनेमें अविश्रान्त जो तुम्हारी जिह्वा है, वह धन्य है अर्थात् जिससे शिवजीके दिखाये हुए ज्ञान, वैराग्य और चमत्कारके तन्त्रसिद्धियां आदियों का वर्णन सरस्वतीरूपा तुम जिह्वामें वासकर सब आगम-निगम रूपी शिवके वैभवको वर्णन कर रही हो। सरस्वती ब्राह्मी-शक्ति श्वैतरूपा स्वभावा तुम्हारे—"बालार्क मंडलाभासां" मुखकमलको अरुणिमासे रक्तवर्ण-सी प्रतीत हो गई अर्थात् शास्त्रोंके विकाश करनेमें तुम्हारे रूपमें सरस्वती आ जाती है इस श्लोकमें गुप्त सरस्वतीका बीज है और आम्रेड़न जपा इस शब्दसे साधक भगवतीके जप करनेसे सरस्वतीके विकाशको प्राप्त कर लेता है, यह दिखाया गया है और पतिव्रता स्त्रीका चरित्र है कि वह अविश्रान्त अपने पतिकी महिमाका वर्णन करनेसे अपने मनको एकमात्र पतिपर रखे। इस श्लोकमें तद्गुणालङ्कार है।

रणे जित्वा दैत्यानपहृत शिरस्त्रैःकवचिभि-
र्निवृत्तैश्चण्डांश त्रिपुरहरनिर्माल्य विमुखैः॥

विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकला।
विलीयन्ते मातस्तव वदन ताम्बूल कबलाः ॥६५

टीका :

हे मातः! संग्राममें राक्षसोंको जीतकर देवताओंने अपने-अपने कवच मुकुटादिको उतारकर शिवके निर्माल्यमें जो चंडेश्वर का भाग है उसे पृथक् कर कार्तिकेय, इन्द्र, विष्णुने कपूरके स्वच्छ तथा शीतल कण मिश्रित तुम्हारे मुखसे निकले हुए ताम्बूलके ग्रासोंको ग्रहण किया है।

भाष्य :—

भगवतीके मुखमें ताम्बूल जो पूजाके अवसानमें दिखाया जाता है उसको नैवेद्य रूपमें ग्रहण करनेका माहात्म देवताओंने संग्रामसे लौटकर भगवतीके मुखसे फेंके हुए पानको ग्रहण करनेसे अपनी थकावटको दूर किया है। इस श्लोकमें यह दिखाया है कि शिवकी पूजाका निर्माल्य चण्डेश्वरको दिया जाता है और नहीं ले सकते हैं। तब देवताओंने शिव निर्माल्यमेंसे भगवतीके मुखसे उगला हुआ ताम्बूल ग्रहण किया है। इस श्लोकमें गृहस्थीको शिव निर्माल्य ग्रहण करनेका निषेध किया गया है परन्तु भगवतीके साथ पूजन जब हो तब चण्डांशु भाग दूर कर शेष ग्रहण करना लिखा है देवता भी भगवतीके निर्माल्यको लेते हैं। भगवतीका निर्माल्य ग्रहण करनेसे बुद्धि और विजयकी प्राप्ति होती है 'देव्यापादोदकं पीत्वा सर्वसिद्धेश्वरो भवेत्"।

विपञ्च्या गायन्ती विविधमपदानं पुररिपो -
स्त्वयाऽऽरब्धे वक्तुं चलति शिरसा साधु वचने ॥
तदीयैर्माधुर्यै रपलपित तन्त्री कलरवां।
निजांवीणांवाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ६६

टीका :

हे जननि ! भगवती सरस्वती जिस समय अपनी वीणा द्वारा भगवान् शिवके त्रिपुर विजयकी महिमाका गायन आरम्भ कर रही थी उस समय तुमने हर्षोन्मत्त हो शिर हिला-हिलाकर साधु-साधु कहना आरम्भ करनेसे तुम्हारे कण्ठस्वरके माधूर्यसे सरस्वती ने अपने वीणाकी झंकारको पराभूत समझ वीणाको चोलीमें ढक लिया।

भाष्य :

सरस्वतीकी विपञ्चि वीणासे जब शिवके यशोंका गायन हो रहा था तुम उस यशके आनन्दमें अपने शिर हिलाकर गायनकी प्रशंसा करती हुई स्वयं गायन करने लगी, उस तुम्हारे अति मधुर स्वरके गायन पर सरस्वतीने अपनी वीणापर लज्जित होकर अपनी चोलीमें वीणाको ढक दिया अर्थात् तुम्हारे स्वरके माधुर्यमें वीणाका स्वर तिरष्कृत हुआ मनपर कविता या रागका प्रभाव पड़नेसे शिर हिलने लग जाता है यह भाव इसका है, वीणा वादनसे मनोवृत्ति एकाग्र होती है, वृत्ति एकाग्र करनेका साधन वीणास्वर भी है —"स रि ग म प

ध नि रतां तां वीणा हस्तां प्रसादितां शान्तां" भगवतीके ध्यान में सप्त स्वरात्मक वीणा वादन आया है अन्यत्र भी कहा है— "वीणा पुस्तक धारिणीं भगवतीं" जाड्यान्धहारापहां" वीणासे सप्तस्वरोंको सिद्ध करनेसे सारस्वत प्रवाह होता है उपाशक वीणा वादन द्वारा भगवतीके भजनसे प्रभावित होकर उस शब्द माधुर्यसे वृत्तियोंका पुञ्ज एक निश्चित स्थानपर जम जाता है। "गीतज्ञो यदि गीतेन नाप्नोति परमं पदं। शिवस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सहमोदते" गीतोसे शिव सालोक्य मिलता है "तालज्ञश्चा प्रयाशेन मोक्षमार्गं नियच्छति" गीतको तालके साथ लानेसे निर्विकल्प समाधि हो जाती है तालसे ही लास्य होता है लास्य से लय अर्थात् तदाकार हो जाता केवल गायन मात्रसे क्षणिक लय होता है गायन उपाशनाका अङ्ग होनेसे साधकको नित्यानन्द-स्वरूपका बोध हो जाता है। इस श्लोकमें रमा वीज है और अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

कराग्रेण स्पृष्टं तुहिन गिरिणा वत्सलतया।
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपाना कुलतया॥
करग्राह्यं शंभोर्मुखमुकुर वृन्तं गिरिसुते।
कथंकारं ब्रूमस्तव चिबुकमौपम्यरहितम् ॥६७॥

टीका :

हे गिरिसुते! तुम्हारे कपोलोंका वर्णन किस प्रकार कर सकें, जिनकी उपमा नहीं मिलती है। हिमालयने पुत्री वात्सल्यता

प्रेमसे जिस चिकुरको अपनी हस्तांगुलियोंसे स्पर्श किया शिव तुम्हारे अधरपानके लिए व्याकुलतासे मुखवृत्तको देखनेके लिए अपने हाथमें धारण किया है। हे भगवति ! कोई वस्तु ऐसी नहीं जिससे तुम्हारे चिबुककी उपमा दी जा सके।

भाष्य :

भगवतीके मुखारविन्दका उज्वल तेजका वर्णन और पिता-पुत्री वात्सल्य प्रेम तथा पति-पत्नी प्रेम और पत्नी व्रत रखनेका समुदाचारका वर्णन इस श्लोकमें आया है स्त्री अपने मुखारविन्दकी शोभा अपने पिता और पतिको ही दर्शाती है यह भाव प्रकट होता हैं अपने सुसज्जित मुखकी शोभा पतिके सिवाय अन्य को दिखाना निषेध होनेसे भारतीय महिला खुले मुख बाजारोंमें नहीं जाती थीं यतः वे अपनेको देवीका स्वरूप जानती थी तब तो अवगुण्ठित करती थी तथा दृष्टिपातके गुण दोषोंका वर्णन किया गया है स्त्रियोंका मुख भगवतीका मुख होनेसे दुष्ट दृष्टि-पातसे उसकी रक्षा करनेके लिए चादर ओढ़नेका व्यवहार भारत-वर्षमें पूर्वकालीन है। इस श्लोकमें अर्थान्तरालंकार है।

भुजश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः कण्टकवती।
तवग्रीवा धत्ते मुखकमलनाल श्रियमियम्॥
स्वतःश्वेता कालागुरुबहुल जम्बाल मलिना।
मृणाली लालित्यं वहति यदधो हारलतिका ॥६८

टीका :

हे मातः ! पुरदमयितुः त्रिपुरासुरको दमन करनेवाले शिवके भुजाओंसे नित्य आलिंगन हुई तुम्हारी ग्रीवा कमलनालकी शोभा को धारण करती है जैसे कमलपर कालाहरा काई लगी रहती है इसी प्रकार स्वभावतः तुम्हारी श्वेतग्रीवापर कमलनालकी लालिमा लिए हुए ग्रीवाके नीचे मुक्ताहार विराजता है।

भाष्य :

इस श्लोकमें भगवतीके गलेके हारका वर्णन और ग्रीवाको कमलनालकी उपमा देकर गलेके हारमें पिरोये हुए मनके अनेक प्रकारके रङ्गोंकी शोभा देते हैं गलेपर मुक्तामालाका पहनना इसमें मनकी शान्ति दिखायी है मुक्तामाला शान्ति देनेवाली श्लोकमें हारलतिका शब्द हारधारण करना सौभाग्यसूचक है। इस श्लोकमें निदर्शनालंकार है।

गलेरेखास्तिस्रो गतिगमक गीतैकनिपुणे।
विवाहव्यानद्ध प्रगुण गुणसंख्या प्रतिभुवः॥
विराजन्ते नाना विधमधुर रागाकर भुवां।
त्रयाणां ग्रामाणां स्थिति नियम सीमान इवते ६९

टीका :

हे गतिगमक गीतैक निपुणे ! गतिगमक गीतिमें निपुण भगवती तुम्हारे विवाहमें गलेपर बांधी हुई सुमङ्गली रूपा गलेकी

कण्ठीमें जो तीन लड़िया हैं, उनके स्थानपर तुम्हारे कण्ठमें जो तीन रेखाएं चमक रही हैं वे अनेक प्रकारके मधुर गीतोंकी तीन ग्रामकी स्थिति सीमाकी तरह दीख पड़ती है।

भाष्य :—

गतिगमक गोत्तिमें निपुण रागके स्वरूपके ज्ञानको गति कहते हैं इसीसे गत भी बनते हैं। गमक स्थायी स्वरको बार-बार आलाप करनेको गमक कहते हैं। मनके भावको किसी रस-विशेषमें छन्दोवद्ध गायन करनेको गीति कहते हैं। यथा—गतिस्तु राग: संगीतं यश्चालाप प्रकीर्तित:। गमको मुख्य नादस्य परिभावो रसात्मक:॥ गीतं प्रबन्ध रूढार्थं रञ्जिता शक्तिरिष्यते।" अर्थात् रागको गीत आलाप और गीति (गायन) में निपुण तुम हो इस भावको तुम्हारे गलेकी तीन रेखाएं प्रकट कर रही है। वे तीन रेखाएं तुम्हारे गलेमें विवाहकालमें जो त्रिसूत्री (सुमङ्गली) पहनायी जाती है उसकी सूचक त्रिरेखा है। तदुक्तं—"ब्रह्मविष्ण्वीश रूपेषु रंध्रवृत्ति त्रितीयकम्। त्रिरत्न रुक्मजं स्त्रीणां मङ्गल्याभरणं विदु:॥" स्वर्णतन्तुओंमें तीन रत्नोंसे बना हुआ, ब्रह्म, विष्णु, शिवात्मक, तीन लड़ियोंका गलेका भूषण सुमङ्गली नामका विवाहमें कन्याको पहनाया जाता है। यह कण्ठभूषण (कण्ठी) या (कान्डो गढ़वाली भाषामें) कैसे शोभायमान है मानो "नानाविध मधुर रागाणी" अनेक प्रकारके मधुर राग षड़ज मध्यमादि सप्तस्वरोंसे बंधे हुए राग, गौड़, गुर्ज्जर, कर्णाटकादि रागों की उत्पत्तिवाले, तीन ग्राम, षड्जा ग्राम, मध्यम ग्राम, पञ्चम ग्राम

को स्थिति और नियतिकी सीमाकी भांति तीन रेखाएं हैं—"सप्त-स्वरास्त्रयो ग्रामा: मूर्च्छनां त्वेकविंशति" सातस्वर तीन ग्राम इक्कीश मूर्च्छना गीतिमें होती हैं।

गलेमें तीन रेखाए, स्त्रियोंके सौभाग्यसूचक समुद्रने बताई हैं। यथा—"ललाटे च गले चैव मध्येचापि वलित्रयम्। स्त्री पुंसयोरिदं ज्ञेयं महासौभाग्यसूचकम्।"

गतिगमक गीतैक निपुणे—गती संगीतगती। संगीतकी दो गति हैं। गमक—"स्वरस्य गमको कम्पः सच पञ्चविधस्मृतः। वाङ्मातूरुच्यते ज्ञेयं धातुरित्यभिधीयते।" गलेमें तीन मांगल्य-सूचक डोरी या कंठी बांधी जाती है—

मंगल्य तन्तुनानेन वध्वा मंगलसूत्रकम्।
ग्राम हस्ते शरं वध्वा कण्ठे च त्रिशरं तथा॥

ये तीन रेखाएं अनेक प्रकारके रागोंके ज्ञानकी भी द्योतक हैं रागाध्यायमें गीति पांच प्रकारकी है। गीतियोंसे बने हुए ग्राम, राग-त्रिशत, उपराग आठ, राग शुद्ध विंशति, जनक राग पन्द्रह हैं। भाषाराग छयानवे, विभाषा राग विंशति, मध्यमागधी, मालवी, श्री भैरवी, वंगाली, वशन्त, धनाश्री, देश, ये रागके अंग है।

"त्रयाणां ग्रामाणाँ" ग्रामका अर्थ समूह है। स्वर सब तीन प्रकारके हैं (१) षड्जग्राम (२) मध्यग्राम (३) गान्धारग्राम। परन्तु मर्त्यलोकमें दो ही ग्रामका प्रचार हैं। स रे ग म प ध नी, इन सात स्वरोंका आरोह अवरोहक्रमसे ये मूर्च्छनाके

आश्रय रहते हैं। वैस्वर मन्द्र, मध्य, तार भेदसे तीन प्रकार उच्चारण किये जाते हैं। गान्धार ग्राम सबके शिरस्थानीय है। यथा—"ग्राम:स्वर समूहश्च मूर्च्छनादेः समाश्रयः। तौद्वौ धरा-तले स्यातां षड्ज ग्रामस्तथादिम:" द्वितीयो मध्यम ग्रामस्तयोर्ल-क्षणमुच्यते। क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहनम्। मूर्च्छ-नेत्युच्यते ग्राम द्वयेता सप्तसप्त च॥" हे भगवति! तुम्हारे गलेमें तीन रेखाएं सौभाग्यसूत्र सूचक हैं "गतिगमक गीतैक निपुणे" अनेक प्रकारके मधुर रागोंका सूचक तीन ग्रामोंकी स्थितिके नियमकी सीमाकी तरह सौभाग्यमान होते हैं।

मृणाली मृद्वीनां तव भुजलतानां चतसृणाम्।
चतुर्भिः सौन्दर्यं सरसिजभवः स्तौति वदनैः॥
नखेभ्यः संत्रस्यन्प्रथम मथना दन्धकरिपोः।
चतुर्णां शीर्षाणां सममभय हस्तार्पण धिया॥७०

टीका :—

हे भगवति! तुम्हारे कमलनालके समान कोमल चार भुजाओंकी अपने चार मुखसे अभय पानेके निमित्त अन्धकरिपु शिवके प्रमथासुर बध करनेवाले नखोंसे भयभीत होकर नाभि कमलसे उत्पन्न हुआ (ब्रह्मा) अपने चार शिरोंकी रक्षाके लिए चारों मुखसे स्तुति करता है।

भाष्य :—

भगवतीकी चार भुजाओंका सौन्दर्य इस श्लोकमें दिखाया है पौराणिक कथा है कि ब्रह्माके भी पहले पांच मुख थे और शिव भी पञ्चवक्त्र हैं। शिवकी समानता करनेपर ब्रह्माका पांचवां शिर शिवने गिरा दिया था। उस भयसे अपने चार शिरोंकी अभय चाहनेको; भगवतीके चारों हाथोंकी स्तुतिचार मुखसे ब्रह्मा करता है, अर्थात् चार वेदोंमें जो कुछ ब्रह्माने कहा वह सब चित्शक्ति रूपा भगवतीका ही वर्णन है इस श्लोकमें सर्वसंरक्षणी शक्तिका वर्णन और शक्ति-बीज है। साधक भगवतीकी चार भुजाओं पर ध्यान लगाकर जप करनेसे अभयभावको प्राप्त कर लेता है। काव्यलिंग अलंकार इसमें आता है।

नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसतां।
कराणां ते कान्तिं कथय कथयामः कथमुमे॥
कयाचिद्वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलं।
यदि क्रीडल्लक्ष्मी चरणतललाक्षाऽऽरुण दलम्॥७१

टीका :—

हे ऊमे ! नवीन कमलोंकी लालिमापर हंसते हुए, तुम्हारे अरुण नखोंकी कान्तिकी उपमा, कहो किस तरह वर्णन करें, यदि किसी प्रकार कमलकी लालिमाके साथ तुलना की जाय, तो (वह भी नहीं बन पाता) यतः क्रीड़ा करती हुई तुम लक्ष्मीके पादतलोंपर लगी हुई लाक्षाकी अरुणिमा कमलपर लगनेसे कमलमें यह अरु-

णिमा आई है। अतः कमल लालिमाकी उपमा नहीं आसक्ति।

भाष्य :—

भगवतीके करकमलोंकी उपमा किसीसे नहीं दी जा सकती है यदि दिया भी तो कमलसे ही दी जाती, परन्तु कमलपर जो लालिमा छाई दीख पड़ती है, वह तो भगवतीके चरण तलुओंपर लगी हुई लाक्षाकी लाली है। जब भगवती कमलोंपर नृत्य करती है तब उनपर यह अरुणता आती है। इसमें अति-शोक्ति अलंकार है।

समं देवि स्कन्द द्विप वदन पीतं स्तनयुगम्।
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखं॥
यदालोक्या शङ्काऽऽकुलित हृदयो हासजनकः।
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति॥७२

टीका--

हे देवि! एक ही समयमें तुम्हारे स्तनोंका कार्तिकेय और गणेश दुग्ध पानकर रहे हैं। जिनके दुग्ध पान मुखसे निरन्तर दुग्ध टपक रहा है ऐसे कार्तिकेय और गणेश हमारे दुःखको दूर करें। जिन स्तनोंको देखकर गणेशको अपने कपोलकी आशंका हुई कि यह दुग्ध स्तनोंसे निकल रहा है या मेरे उन्नत गण्डस्थलोंसे इस प्रकार सशंक हृदयको हास्य देनेवाला गणेश शीघ्र अपने कपोलोंको टटोलने लगा।

भाष्य :—

गणेशके उन्नत कपोल-स्तनोंके समान होनेसे गणेशको सन्देह हुआ कि दुग्धधारा स्तनोंसे निस्सरण हो रही है या मेरे कपोलोंसे। इस सन्देहमें गणेश अपने गण्डस्थलको देखने लगे जिससे हास्य उत्पन्न हुआ। इस श्लोकमें भगवतीके दो स्तन जो सूर्य, चन्द्र-रूप हैं, उनसे दो प्रकारकी धाराएं निकलती हैं। सूर्यसे पराक्रम, सोमसे ज्ञानरूपी दुग्धकी धाराएं निकलीं। जिसको पान करनेसे कार्तिकेय युद्धमें विजयी और गणेश सम्पूर्ण ज्ञान-सम्पन्न हुए हैं। प्रायः माताके दुग्धके प्रभावसे बालकमें विभिन्न प्रकारकी शक्तियोंका विकाश होता है, जो माताकी वीर या ज्ञानवति, भावनायोंसे परिश्रुत होता है। इसलिए बालकको दुग्ध पान कराते हुए माताको सावधानीसे ज्ञान और वीरताकी भावनामें रहना चाहिए। यहां वस्तु अलंकार है।

अमूते वक्षोजावमृत रस-माणिक्य कुतुपौ
न सन्देहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि नः॥
पिबन्तौ तौ यस्मादविदित वधू संगम रसौ।
कुमारा वद्यापि द्विरद वदन क्रौञ्चदलनौ ॥७३

टीका :—

हे पर्वतराज वैजयन्ति! अमृत रसपूर्ण माणिक्य कलशरूपी स्तन पाम करनेसे, वधू संगम (कामरस) से अनभिज्ञ गणेश

और कार्तिकवीर्य अबतक भी कुमार (ब्रह्मचारी) हैं। इसमें हमारे मनमें सन्देहका अंकुर ही नहीं है।

भाष्य :—

भगवतीके अमृतमय स्तन पानके प्रभावसे कार्तिकेय और गणेश शक्ति-सम्पन्न अभीतक कुमारावस्थामें ब्रह्मचर्य धारण किये हुए हैं। साधक सहस्त्रारमें भगवतीको मातृभावसे उपाशना कर आज्ञाचक्रमें आये हुए अमृतपानके करनेसे उपासक शक्तिशाली, ज्ञाननिष्ठ ब्रह्मचारी बना रहता है। यह दृष्टान्त चरितार्थ है, दूधकी बुद्धि होती है, "बालक बानी पढ़त है निज माता अनुसार" जैसी माताका दूध बालक पीता है वैसा उसका आचरण हो जाता है। प्रायः आज कतिपय स्थानोंमें दुर्भाग्यवश नवजात बालकको उसकी माताका स्नेहपूर्ण दुग्ध पानसे वञ्चित कर देते हैं उसीका प्रधानतया यह प्रभाव पड़ रहा है कि पितृभक्त सन्तान नहीं होती है। यद्यपि गणेशको सिद्धि-बुद्धि कार्तिकेयको देवसेना स्त्री होनेपर भी वे ब्रह्मज्ञानी और कुमारावस्थावाले हैं। यह भगवती उमाके स्तन पानकी शक्ति है।

'नगपति पताका' कहनेसे यह भाव है कि भगवतीका सम्बोधन वे माताएं अपने कुलकी विजयवैजयन्ती हैं जिनके पुत्र बलवान और ज्ञानवान् होते हैं क्रौञ्चनिधन इस श्लोकमें यह पद कुमारका विशेषण उसकी सौन्दर्यताका द्योतक है गणेशजी सम्पूर्ण विद्याके ज्ञाता हुए यह सब माता पार्वतीके दुग्धपानका ही प्रभाव है। इस श्लोकमें शक्तिबीज है।

कुछ मनुष्योंने बालकको दूध पिलाना एक साधारण काम शिशुपोषणमात्र समझा है, शिशुको दुग्धपान न केवल पोषणमात्र है, दीर्घजीवन, बल, बुद्धि, विवेक आदिकी शक्तियोंका विकाश सञ्चारण भी दुग्ध पानपर ही निर्भर है, अतः अपनी सन्तानके हित चाहनेवाली माता अपने जीवनमें अपनी सन्तानको किसी अन्य स्त्रीके दुग्धपानपर न छोड़े । स्वयं शान्त स्वभावसे दुग्धपान करावे। राजा भोजने अपने राजसिंहासनपर बैठ कर पहले माताओंको ही राज घोषणा यह की थी—

'निरुत्साह निरानन्द निर्वीर्यमरिनन्दन ।
मास्म सीमन्तनि कश्चिज्जनयेत् पुत्रमीशदम् ॥

कोई माता जिसे उत्साह न हो जिसमें आनन्द न हो, पराक्रम जिसमें न हो, शत्रुओंको प्रसन्न करनेवाला ऐसी सन्तान उत्पन्न न करे इससे यह स्पष्ट है कि राजा भोज यह जानते थे कि विद्या पराक्रम आदि गुण सन्तानमें दुग्धपर ही निर्भर है, सम्पूर्ण विद्या सौर्यकेसंस्कार माताके दुग्धपर ही निर्भर है।

वहन्त्यम्बस्तम्बे रम दनुज कुम्भ प्रकृतिभिः ।
समारब्धां मुक्ता मणिभिरमलां हारलतिकाम् ॥
कुचाभोगोविम्बाधर रुचिभिरन्तः शबलितां ।
प्रतापव्या मिश्रां पुरदमयितुः कीर्त्तिमिवते ॥७४

टीका :

हे अम्बे ! तुम्हारे वक्षस्थलीमें लताके समान लटकी हुई माला जो कि गजासुरके मस्तकके मौक्तियोंसे बनी हुई है,

तुम्हारे विम्बाधरको शोभासे प्रतिविम्बित होकर अपने वास्तविक (गजमौक्तिक) रूपको बदल शिवके गजासुर वधके पराक्रम और यशको प्रकाश करती है।

भाष्य :—

भगवतीके हृदयपर जो मुक्तामय माला शोभित हो रही है उन मौतियोंका स्वाभाविक रंग श्वेत होनेपर भी भगवतीके अधरोष्ठकी परछाईसे उन मोतियोंमें लालिमा दीखने लगी जो कि यह भाव प्रकट करती है कि शिवजीने गजासुरके वधमें जो पराक्रम किया उससे मौक्तिक हार लालिमा दिखा रहा है, और मोतियोंमें जो शुभ्रता दीख रही है वह शिवजीके ज्ञानमय यशका द्योतक है। मनके शान्त करनेको मोतियोंके हारका धारण करना विज्ञानमय आचार है। मोतियोंकी प्राप्ति गजमस्तिस्क समुद्र में शीपीसे, वांससे, सर्पके फणसे, मेघसे और इक्षुदण्डसे होती है इसका वर्णन वाराहि संहितामें विस्तारसे है। इतने प्रकारकी मोतियोंका माला भगवतीके हृदयमें विराजती है। उत्प्रेक्षा लंकार है।

तवस्तन्यंमन्ये धरणिधर कन्ये हृदयतः ।
पयः पारावारः परिवहति सारस्वत इव ॥
दयावत्यादत्तं द्रविड़ शिशुरास्वाद्य तव य-
त्कवीनां प्रौढ़ानामजनि कमनीयः कवयिता॥७५॥

टीका :—

हे हिमालय पुत्री ! तुम्हारे हृदयसे उछला हुआ सारस्वत-रूपी जो अपार दुग्धसागर है। उसमेंसे तुम्हारे स्तनों द्वारा यह

दुग्धधारा निकलती है यह मानता हूं। तुम्हारी दयासे जिस दुग्ध पान करनेसे यह द्रविड़ शिशु प्रौढ़ कवियोंमें मनोहर कविता करनेवाला हो गया है। यह चमत्कार भगवतीके स्तन पानका है।

भाष्य—

भगवतीके स्तन पान करनेसे प्रौढ़ कवित्व हो जाना इस श्लोकमें दिखाया है, इसमें वाग्भव बीज है, मन्ये (ऐ) स्तन्यं (अनुस्वार) निकालकर वाग्भव कूट (ऐं) बनता है भगवतीको माता जानकर उपाशक आराधना करनेसे सरस्वतीके चमत्कारको प्राप्त करता है। इस श्लोकमें दयावतीं नाम और द्रविड़ शिशु नाम में भाष्यकारोंने अनेक कल्पना की है वस्तुतः द्रविड़ शिशु पदसे मेरे विचारसे पूज्यपाद शंकराचार्य ही हैं, इसपर आख्यायिका है–"शंकराचार्यके पिता भगवतीके उपासक, जो नित्य प्रति भगवतीके मन्दिरमें पूजन उपासना, और भवगतीको दुग्धसे स्नान कराते थे, पूजा समाप्ति कर निर्माल्यरूप दूध लाकर अपने बालकको पिलाते थे। जब कभी स्वल्प समयके लिए वे ग्रामान्तरमें चले जाते तो अपनी धर्मपत्नीको उसी प्रकार भगवतीके पूजन और निर्माल्य दुग्ध बालकको पिलानेका आदेश कर जाते थे। एक समय शंकरके पिता किसी ग्राममें चले गये और पूर्ववत् पूजा करनेको अपनी धर्मपत्नीको कह गये। निदान किसी कारण एक दिन उनकी पत्नी पूजा करने न जा सकी और उसने अपने बालकको पूजा करनेको कहा, माताकी आज्ञासे मन्दिरमें भगवतीकी पूजा करने गया और भगवतीको सरल भावनासे

दुग्ध चढ़ाया वह इस विचारमें था कि कुछ भगवती भोग लेगी, शेष जो बचेगा उसे मैं पी लूंगा भगवतीने सब दुग्ध पी लिया तब वह बालक चिल्लाहट करने लगा कि जितना दुग्ध नित्य मुझे मिलता है उतना मेरा मुझे दो तब भगवतीने प्रसन्न होकर अपने स्तनोंसे दुग्ध पान कराकर बालकको शान्त किया। घर लौटते ही बालक भगवतीकी महिमाको वर्णन करने लगा उधर उसके पिताको भगवतीने स्वप्नमें कहा कि तुम्हारा पुत्र योग्य विद्वान् ज्ञानी हो गया उसको मैंने अपने स्तनसे दुग्ध पान कराया है पिता घरपर आकर बालककी सब बातोंको सुनकर आश्चर्यमें आया और बालकको गले लगाया यह शंकराचार्यजीका वर्णन है। इनके इसपर एक गाथा यह भी चरितार्थ है कि किसीका नाम द्रविड़ शिशु था वह कैलाशमें भगवतीकी उपाशना करता था। भगवती के प्रसादसे उसमें कविताका चमत्कार आया उसने एक सौ श्लोकको आनन्द-लहरी नामसे स्तुति पर्वतके किनारोंपर लिखा इस अन्तरालमें भगवतपाद शंकराचार्य कैलाश-यात्राको गये उन्होंने पर्वतपर लिखी हुई आनन्द लहरीको पढ़ा भगवतीने इस रहस्यको प्रकट न होने देनेका आदेश कर द्रविड़ शिशु जो सिद्ध-रूपमें था उसे आज्ञा दी कि इस शत श्लोकीको प्रकट न करने दो जैसे वह वहां गया भगवत्पाद शंकराचार्यने ४१ श्लोक कंठ कर लिए थे शेष सिद्धने छिपा दिये उन श्लोकोंके बनानेसे यह ज्ञात हुआ कि सिद्धने भगवतीका दुग्ध पान, इधर आचार्यने शेष श्लोक स्वयं बनाकर सौन्दर्य-लहरी प्रकट की। इसपर एक

आख्यायिका यह भी है कि द्रविड़ देशके राजाका पुत्र हुआ जिसे ज्योतिषियोंने राज नष्ट करनेवाला बताया जब वहांके मन्त्रीने राजासे कहा कि इस पुत्रके रहनेसे राज्य नष्ट हो जायगा राजाने उसे कहीं वनमें छुड़वा दिया वहां उस बालकको एक व्याघ्र किसी कन्दरामें ले जाकर उसके द्वारपर छोड़ दिया बालकमें जातिस्मरण योग सिद्धिसे प्राप्त था उसन पूर्वसिद्धयोग ज्ञानसे उद्बोधन होकर भगवतीकी उपाशनाकी भगवतीने उसे अपने स्तनपान करानेसे पाला किसी समय एक डाकुओंके समूह ने जंगलमें उसे पाया उसकी सारी बात जानकर पुनः उसी राज्यमें उसे राजा बना दिया। इसमें एक और भी आख्या-यिका मिलती है, तामील देशमें शिवपद हृदय ब्राह्मण रहता उसकी स्त्रीका नाम भगवती था शिवकी उपाशनासे उन्हें पुत्र मिला एक समय वह नदी स्नानको जा रहे थे बालकको भी साथ ले गये बालकको नदी तटपर छोड़ पति-पत्नी स्नानको गए इस बीच दैवात् बालक खोया गया और रोदन कर रहा था उस अन्तराल शिब-पार्वतीके मन्दिरमें बालक यथा तथा पहुंच गया रोते हुए बालकपर दयादृष्टिसे पार्वतीने उसे अपने स्तनका दुग्ध पिलाया बालक शान्त होकर शिवकी स्तुति कर रहा था कि उसके माता-पिता वहांपर पहुंच गये बालककी इस आश्चर्य मय शक्तिसे चकित हुए बालकके मुखपर दुग्धके चिन्ह देखकर उसे पूछा कि तुमको दूध किसने पिलाया उसके उत्तरमें बालक शिवकी स्तुति करने लगा।

हरक्रोधज्वालाऽऽवलिभिरवलीढेन वपुषा ।
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गो मनसिजः ॥
समुत्तस्थौ तस्मादचल तनये धूम लतिका ।
जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति ।७६।

टीका:—

हे अचल तनये। शिवकी क्रोधाग्नि ज्वाला में व्याकुलित कामदेव अपनी रक्षा के लिये पुष्करिणी रूप तुम्हारी गम्भीर नाभी में छिप गया। शिव की क्रोधाग्नि से संतप्त लोह पिण्ड के समान कामदेव पर नाभिरूप पुष्करिणी का जल मिलने से जो धूमावली उत्पन्न हुई उसे लोक तुम्हारी रोमावली जानते हैं।

भाष्य:—

इस श्लोकमें, अचलतनये और धूमलतिका, इन वाक्यों से स्थिर चित्तवाले मुनियों को भी कामदेव अंधेरे में अर्थात् कामासक्ति अज्ञान में डाल देती है। यह ध्वनि निकलती है अर्थात् काम-वाशना के रहते मनुष्य अंधकार में डूबा रहता है। गीता—"काम एष क्रोध एषः रजोगुण समुद्भव" रज से काम, क्रोध उत्पन्न होते हैं। "धूमेना व्रियते बह्नि यथादर्शोमलेन च। यथोल्वेनावृतोगर्भः तथा तेनेदमावृतम्" यह क्रोध और काम-वाशना सारे ज्ञान को आवरण कर देती है। गीतामें आया है—"विद्यां समपि कर्षति" कामशक्ति बड़े विद्वानों को भी कम्पायन

कर देती है। भगवती के शरण में जाकर साधक कामशक्ति पर विजय करता है। साधकको अचल (दीप शिखावत) भावना रखनेसे काम, क्रोध पर विजय होती है। "अचलतनये" शब्द से यह भाव दिखाया है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है।

यदेतत्कालिन्दी तनुतर तरङ्गाकृति शिवे ।
कृशेमध्ये किंचिज्जननि तव तद्भाति सुधियाम् ॥
विमर्दादन्योऽन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं ।
तनूभूतं व्योम प्रविशदिवनाभिं कुहरिणीम् ।७७।

टीका:—

हे शिवे ! यमुना की सूक्ष्म तरंगों के समान त्रिरेखात्मक तुम्हारे मध्य में कृशता दिखाई देती है। कुचों के परस्पर संघर्षण से जो अन्तराल में सूक्ष्म आकाश प्रतीत होता है वह आकाश सूक्ष्म होकर नाभी कुहर में प्रवेश करता मालूम देता है।

भाष्य :—

नाभि कमल में अवरोह मार्ग से कुण्डलिनी का प्रकाशित होना इसमें दिखाया है। सूर्य, चन्द्रमारूपी दो स्तनों के मध्य में दहराकाश में ध्यान लगा कर मणीपुर में प्रकाशित कुण्डलिनी का आराधन बताया है। उत्प्रेक्षालंकार है।

स्थिरोगङ्गाऽऽवर्तः स्तनमुकुल रोमावलिलता ।
कलावालं कुण्डं कुसुमशर तेजो हुतभुजः ॥

रतेर्लीलाऽगारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते ।
बिलद्वारं सिद्धे र्गिरिशनयनानां विजयते ।७८।

टीका—

हे गिरिसुते ! तुम्हारी नाभि गंगा के स्थिर आवर्तक समान स्तनों के मुकुलित रोमावलि रूपी लता को आलवाल अर्थात् जल-सिञ्चन का स्थान बनी हुई शोभा देती है तथा कुसुमसर काम की आहवनीय अग्नि, यद्वा रती के केलि करने का स्थानरूपा या शिव के नयनों को आनन्द देनेवाली यह नाभी विजय हो ।

भाष्य—

पूव श्लोक में नाभिचक्र में मणिद्वीप का दिग्दर्शन कराया है, यही प्रकरण इसमें भी है। भगवती के सौन्दर्य का प्रकाश करते हुए "गिरिशनयनानां" वाक्य से यहां पर रुद्र का स्थान है। षट् चक्र में इस स्थान में ध्यान लगाने से परम सिद्धि दिखाई है। मध्य बिन्दुरूपी नाभी में ध्यान लगाने से शिव का दर्शन बताया है। उल्लेखालंकार है।

निसर्ग क्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो ।
नमन्मूर्तेर्नाभौ वलिषु च शनैस्त्रुट्यत इव ॥
चिरं ते मध्यस्य त्रुटित तटिनी तीर तरुणा ।
समावस्थस्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये ॥७९॥

टीका—

हे शैल तनये ! स्वभाव से ही कृश और स्तन भार से दुर्बल नाभिस्थान में जो रोमावली है, वे शनै शनै गिरते हुए नदी के तट में स्थायी वृक्षों के समान तुम्हारी रोमावलि कुशल से रहे।

भाष्य—

मणिपुर में अग्नि का स्थान, उससे नीचे स्वाधिष्ठान में जल का स्थान है। यहां पर बहुत विघ्नबाधा आती है। साधक भगवती की कृपा से सिद्धि प्राप्त कर सकता है। आधि भौतिक वर्णन से स्त्रियों का यह स्थान पतला होना सौन्दर्य और शौभाग्य सूचक है। इस श्लोक में उपमालंकार है।

कुचौसद्यःस्विद्यत्तट घटित कूर्पासभिदुरौ
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौकलयता।
तव त्रातुं भङ्गादलमिति वलग्नं तनुभुवा
त्रिधानद्धं देवि त्रिवलि लवलीवल्लिभिरिव॥८०॥

टीका—

हे देवि ! प्रति समय यौवन की उष्णता से अथवा शिव के साथ होने वाले अनुराग द्वारा स्वेद को प्राप्त होने वाले स्वर्ण कलश के समान स्तनयुग्म पार्श्व में स्थित मुण्डमाला से दोनों

भुजाओं को पृथक् पृथक् करने से कामदेव ने तुम्हारे उदर को टूटने के भय से त्रिवली रूपा लता से बांध कर सुरक्षित किया है।

भाष्यः—

इस श्लोक में रक्षा करने का विधान आया है, और कामकूट का निदर्शन किया है। तनुभुव कामदेव लवली लता दृढ़ होती है। उत्प्रेक्षालंकार।

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वतिनिजा-
न्नितम्बादाच्छिद्य त्वयिहरणरूपेणनिदधे।
अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीं
नितम्ब प्राग्भारःस्थगयतिलघुत्वंनयति च ।८१।

हे पार्वती! क्षितिधरपति हिमालय ने अपने नितम्ब प्रदेश से गुरुत्व (भारीपन) और विस्तार को निकाल कर तुमको हरणरूपेण (विवाह में यौतुक धन के रूप में) अर्पण किया है। इससे तुम्हारे विस्तीर्ण, भारी और विस्तृत नितम्ब भार से वसुमती (पृथ्वी) को स्थगित और छोटी बना दिया है।

इस श्लोक में पार्वती के पार्थिव शरीर का वर्णन है। यहां हिमालय शब्द से श्वेत विन्दु का तात्पर्य है, उससे जो विमर्श निकल कर जो उन्नतता आई है वह शरीर के उस विभाग का

वर्णन है। हरण रूप से भगवती का चांचल्य स्वरूप दिखलाया है। महाप्रलय में भी उसका नाश नहीं हो सकता।

अतिशयोक्ति अलंकार।

करीन्द्राणां शुण्डाः कनक कदली काण्डपटली-
मुभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती।
सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते
विजिग्ये जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि॥८२॥

हे भगवति, हे गिरिसुते! तुमने अपने सुवृत्त गोल उरु स्थलों से ऐरावत हाथी की शुण्ड तथा स्वर्ण कदली स्तम्भों की शोभा को जीत लिया है, तथा "पत्युःप्रणतिकठिनाभ्यां" अपने पति शिव को नित्य प्रणाम करने से तुम्हारे घुटने जो कड़े (कठिन) हो गये हैं उनके काठिन्य सौन्दर्य से विविध प्रकार के हाथियों के मस्तक की शोभा को जीत लिया है।

इस श्लोक में पतिव्रता सती का शिष्टाचार वर्णन किया है कि घुटने टेक कर नित्य पति को प्रणाम करना चाहिये।

उपमा अलंकार।

पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते
निषङ्गौ जंघे ते विषमविशिखो बाढमकृत।
यदग्रे दृश्यन्ते दश शरफलाः पादयुगली-
नखाग्रच्छद्मानः सुरमकुटशाणैकनिशिताः॥८३॥

टीका:—

पूर्वकाल में कामदेव शिव को पराजय करने को पञ्चवाण सन्धान किये थे, जिससे कामदेव स्वयं भस्म हो गया था, तब उसने वक्षमाण दश वाणों का प्रयोग किया है।—

हे गिरिसुते! कामदेव ने शिवजी को जीतने के लिये द्विगुणित अर्थात् दशवाणों के हेतु तुम्हारे दोनों जंघाओं का निषंग (तूणीर) बनाया, जिनमें तुम्हारे दोनों पैरों की अंगुलियों के नखाग्र में जो देवताओं के रत्नजटित मुकुट रूपी साणसे तीखे हुये हैं वे वाणों के अग्रभाग रूपी नख—फण के आकार में दीखते हैं।

भाष्य:—

देवता भगवती के चरणों में नित्य नतमस्तक होते हैं। जिससे भगवती के नखाग्र इतने पतले चमकदार आकर्षक हो गये। पतले आकर्षक लालिमा लाये पाद-नखाग्र ऐश्वर्य और सिद्धि के सूचक हैं। उत्प्रेक्षालंकार।

श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ।
ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूडामणि रुचिः॥८४॥

टीका—

हे मातः ! वेद तुम्हारे चरणों को सिर में धारण करते हैं, इसलिये तुम्हारे चरण वेदों के शिरस्थानीय हैं। उन चरणों को प्रक्षालन किया हुआ जल शिवजी के जटाजूट में गंगा के रूप में निवास करता है। तुम्हारे चरण में लगी हुई लाला की मनोहर लालिमा को विष्णुके मुकुट में जड़े हुये चूड़ामणि रत्नसे समानता हो सकती है। हे माँ! उन चरणों को कृपया मेरे शिर में रखिये।

भाष्य—

इस श्लोक में 'श्रुतीनां मूर्द्धानो' यह वाक्य आया है। वेदों के शीर्ष स्थानी हैं, जिनमें आत्मा का प्रतिपादन किया गया है यानी समग्र विज्ञान और सम्पूर्ण शास्त्रों का उच्चातिउच्च सिद्धान्त आत्म प्राप्ति अर्थात् नित्य शान्ति रूपा मुक्ति है 'अयमात्मा ब्रह्म' 'प्रज्ञाय ब्रह्म' इत्यादि। श्रुति का मुर्द्धा स्थान ब्रह्म विद्या रूपी उपनिषद् हैं, इस शब्द का अन्यत्र प्रयोग आया है। शङ्करदिग्विजय में जहां पर आचार्य मण्डन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ को बैठे थे, उसमें प्रथम प्रश्न में श्रुति का मस्तक ब्रह्मज्ञान बताया है, यथा "ब्रह्मैक्यं परमार्थ सच्चिदमलं विश्वं प्रपञ्चात्मकं" सुक्ति रूप वेदैक भाति वहुला, ज्ञानना वृतं भाषितं तज्ज्ञानान्निखिलप्रपञ्चनिलयः स्वात्मावबोधः परः निर्वाणाञ्जनि मुक्ति रभ्युपगतं मानं श्रुतेर्मस्तकं" ब्रह्म एक ही परमार्थ सत्ता है। यह विश्व प्रपञ्च—सीपि में जैसे

रजत का भ्रम होता है, उस प्रकार यह दृश्य प्रतीत हो रहा है। ब्रह्म के ज्ञान से सारा प्रपञ्च अस्त हो जाता है। इसके प्रमाण वेदों के मस्तक रूपी उपनिषद् है। भगवती के आज्ञा चक्र (द्विदले) में दो सूर्य चन्द्रात्मक चरण हैं। इस आज्ञाचक्र रूपी भगवती के चरणों में ध्यान करने से श्रतीणां मूर्द्धा रूप भगवती के चरणों के प्रसाद से ब्रह्मज्ञान की अभिव्यक्ति हो जाती है, और आज्ञाचक्र में जो पीयुष स्पन्दन होता है, वह सहस्रार रूपी शिव जटा से गङ्गा रूप में मोक्ष देने वाला प्रवाह है। तन्त्र शास्त्र में—"ईडा वामे स्थिता गङ्गा।" गङ्गा का स्थान ईडा नाड़ीं में बताया है। श्रुतीनां वेदों ने जो स्तुति की है, यथा वसिष्ठ ने कहा है।—

'नमो देव्यै महालक्ष्म्यै श्रियै सिद्धैय नमोनमः।
ब्रह्माविष्णु महेशान वेदैक्य पूजितांघ्रियै
वैदिक्यै रित वेदानां वैदिकेभि शिरोरिति
नमस्त्रीपुर सुन्दर्यै शिवायै विश्व मूर्तयै
एवं स्तुता महादेवि श्रुतिभिः प्रीतमानसा
प्राहुतं प्रतितद्रिग्भि वचोभिःपरमेश्वरी।

नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो-
स्तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचि रसालक्तकवते ॥
असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते।
पशूनामीशानः प्रमदवनकंकेलितरवे ॥८५॥

टीका:——

हे माता ! नेत्रों को आनन्दित करने वाले तथा शुद्ध चमकीले अलक (महावर याने अलता पैर पर लगाने का) लगे हुये तुम्हारे चरण-युगल को हम नमस्कार करते हैं. पशुपति (तुम्हारे) प्रमद वनमें कंकेलि (अशोक वृक्ष) जो तुम्हारे पैर को स्पर्श करने की इच्छा करता है उससे अत्यन्त ईर्षा करता है ।

भाष्य:——

अशोक वृक्ष भगवती के चरण स्पर्श होनेपर फलता-फूलता है, इसलिये वह भगवती के चरणों के स्पर्श को निरन्तर चाह करता है । इसपर पशुपति उसके ऊपर ईर्षा करते हैं । भगवती के बिहार कानका नाम प्रमदवन है । इस वन में देवता वृक्ष बन कर भगवती के साथ रहते हैं । शिव को भी वृक्ष बनना पड़ता है । अशोक वृक्ष शिव का रूप है, जब वह अशोक का वृक्ष बनते हैं तो बार बार भगवती के पादाघात की स्पृहा करने वाला वह वृक्ष होने से उस वृक्ष से ईर्षा करते हैं । अतिशयालंकार ।

मृषा कृत्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमितं
ललाटे भर्तारं चरणकमले ताडयति ते ।
चिरादन्तःशल्यं दहनकृतमुन्मूलितवता
तुला कोटिक्वाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा ८६

टीका:—

तुमने अपने चरण-कमलों से अपने पति शिव के ललाट को ताड़न करने से स्त्री को स्पर्श न करना, इस प्रतिज्ञा को झूठा कर दिया, जिससे शिव लज्जित हो गये। तुम्हारी नूपुरध्वनि तुम्हारे विजय की सूचक हुई। भस्म हुए कामदेव तुम्हारे पादपद्म स्पर्श से जीवित होकर किलकिला शब्द करने लगा और जीवित हुआ।

भाष्य—

इस श्लोक में आज्ञाचक्र द्विदल में जो भगवती के दो चरणों के नीचे जो परम शिवस्थान है, उसका विशदीकरण इस श्लोक में हुआ। कामदेव को भी शिव ने तृतीय अग्नि नेत्र भ्रूमध्यगत से भस्म किया था। आनन्द-लहरी में "तवाज्ञा चक्रस्थं तपन शशि कोटि द्यु तिधरं, परं शंभुं वन्दे परिमिलित पार्श्वं परचिता।" आज्ञा चक्र में परम शिव की वन्दना करता हूं, जहां पर पराम्बा मिली हुई है। कामदेव को तृतीय नेत्र से भस्म शिव ने किया था, जैसा कालिदास ने कहा है "क्रोधं प्रभो संवर संवरेति यावद्गिरमरुतां चरंति तावत् सवह्निर्भव जन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार:।" यह भगवती के ललाट में पादाभि-घात रूपक वर्णन है।

हिमानी हन्तव्यं हिमगिरिनिवासैकचतुरौ
निशायां निद्राणं निशि च परभागे च विशदौ।

परं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां
सरोजंत्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम् ।८७।

टीका :—

हे माता ! तुम्हारे चरण-कमल सब से उत्कृष्ट हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है ? यतः कमल हिमप्रपात शैत्य को सहन नहीं कर सकते (शीत पड़ने से मुर्झा ज़ाते हैं)। तुम्हारे चरण कमल नित्य हिमालय में निवास करनेवाले हैं। कमल रात्रि में बन्द हो जाते हैं। परन्तु तुम्हारे चरण रात दिन विकशित ही रहते हैं। कमल में लक्ष्मी निवास करती है पर (कमल लक्ष्मी को देनेमें असमर्थ हैं) तुम्हारे चरण कमल उपासकों को लक्ष्मी समृद्धि प्रदान करते हैं, अतः तुम्हारे चरण कमल सर्वोत्कृष्ट हैं।

भाष्य—

कमल में क्षणिक लालिमा रहती है। तुम्हारे चरण कमलों की लालिमा निरन्तर बनी रहती है। जो साधक भगवती की उपाशना करते हैं, उनमें निरन्तर तेज और ऐश्वर्यादि सम्पत्ति स्थिर रहती है। हृदय पद में भगवती के ध्यान से लक्ष्मी स्थिर रहती है। इससे रमाबीज का उद्धार होता है। इसमें व्यतिरेकालंकार है।

पदं ते कीर्त्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां
कथं नीतं सद्भिः कठिनकमठीखर्परतुलाम् ।

कथंचिद्बाहुभ्यामुपयमन काले पुरभिदा
यदादायन्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा ॥८८॥

टीका—

हे देवी ! तुम्हारे पादाग्र सम्पूर्ण यश कीर्त्ति के स्थान तथा विपत्तियों को दूर करने वाले हैं। इन चरणों को सज्जनों ने कछुवे की सादृश्यता कैसे दी है। विवाह काल में शिव ने तुम्हारे चरणों को अपने सुकोमल हृदय से उठा कर शिला में रखाया, अर्थात् कूर्मपृष्ठ चरणपृष्ठ हो गया।

भाष्य—

कठिन कमठी वाक्य से यह तात्पर्य है कि कछुवा जिस प्रकार अपने सारे अंगों को संकुचित कर सुरक्षित रहता है उसी प्रकार भक्तजन तुम्हारे पादपद्म में निवास कर सुरक्षित रहते हैं। "न्यस्तं दृषदि" पद से तात्पर्य विवाह काल में सप्तपदि पर पति-पत्नी के पैरों को पत्थर पर रख मन्त्र पढ़ता है कि "जिस तरह पत्थर अचल है वैसे तुम अचल रहो।" 'तथा स्थिरा भव।" अनन्यालंकार।

नखैर्नाकस्त्रीणां करकमल संकोच शशिभि-
स्तरूणां दिव्यानां हसत इवते चण्डि चरणौ ॥
फलानि स्वःस्थेभ्यः किसलयकराग्रेण ददतां।
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतौ ।८९।

टीका—

हे चण्डिके ! प्रणाम के समय संकुचित भाव से प्राप्त होने वाली स्वर्ग स्थित स्त्रियों के नखों की कान्ति से धवलतामय तुम्हारे चरण-कमल कल्पवृक्षादिकी कान्ति को तिरस्कार करते हैं। विकसित नूतन कमल के समान हस्तों से स्वर्गीय अंगनाओं को फल प्रदान और दरिद्रियों को लक्ष्मी प्रदान करते हैं।

भाष्य—

भगवती के चरणों में ध्यान निष्ठा वाले साधक को सर्व प्रकार के सुख सुलभता से प्राप्त होते हैं। कल्पवृक्ष स्वर्ग में है, जो देवताओं को हीप्राप्त होती हैं, परन्तु भगवती के चरण पृथ्वीतल में साधकों को प्राप्य हैं। इन चरणों से कल्पवृक्ष के समान सब सिद्धि मिल जाती है। भगवती के चरणों को मस्तक पर रख कर ध्यान लगाने से जैसे कल्पवृक्ष अभीष्ट फल देता है इसी प्रकार भगवती की चरण-सेवा सब कार्यों को फलीभूत करने वाली है। व्यतिरेकालंकार।

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशाऽनुसदृशी-
ममन्दं सौन्दर्यं प्रकरमकरन्दं विकिरति॥
तवास्मिन्मन्दार स्तबक सुभगे यातु चरणे।
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणः षट्चरणताम् ॥९०॥

टीका—

हे भगवती ! तुम्हारे चरण कमलों में षट् पद भ्रमर की तरह प्रवेश करूं; जो चरण दीन को इच्छित धन देनेवाले, उनके आशा के अनुकूल लक्ष्मी देनेवाले, निरन्तर सौन्दर्य रूपी माधुर्य प्रसारण करनेवाले, मन्दार पुष्प स्तवक की तरह सुकोमल और सुन्दर हैं।

भाष्य—

षट् पद भ्रमर से पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन तुम्हारे चरण कमल में भ्रमर की तरह पांच ज्ञानेन्द्रिय और छठे मनके साथ में शयन करूं, यह भक्त की भक्ति दिखाई है। अतिशयोक्ति अलङ्कार।

पद्न्यासक्रीडा परिचयमिवारब्धु मनस-
श्चरन्तस्ते खेलं भवन कलहंसा न जहति ॥
स्वविक्षेपे शिक्षां सुभगमणिमञ्जीर रणित-
च्छलादाचक्षाणं चरणकमलं चारुचरिते ॥९१॥

टीका—

हे चारुचरिते ! रत्नजटित नूपुर से विराजमान तुम्हारे चरण युगल से शिक्षा प्राप्त करने के लिये राजहंस समूह तुम्हारे मन्दिर को नहीं छोड़ते हैं। जो अपनी गति से चारुचरित्र पाद नूपुर झंकार से शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

भाष्य—

भगवती की चारु चरण विक्षेप को हंस सीख रहा है, यह भाव इसमें दर्शाया है। यतः हंस की गति ही स्वाभाविक सुन्दर होती है और उसकी उपमा स्त्रियों के गमन में दी जाती है। इस श्लोक में भगवती की गति से हंस ने चलना सीखा है, यह दर्शाया है। हंसकी गति से साधक का हंसेश्वर आराधन का ध्यान अनाहत में नित्य करना संकेत किया है। साधक की गति हंसः अजपाजप में बनी रहे। उत्प्रेक्षालंकार है।

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरि रुद्रेश्वर भृतः।
शिवः स्वच्छच्छाया घटितकपटप्रच्छदपटः॥
त्वदीयानां भासां प्रतिफलन रागारुणतया।
शरीरी शृङ्गारो रसइववद्दृशां दोग्धि कुतुकम्॥९२॥

टीका—

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तुम्हारे पर्यंक के पाये बन गये, और शिव उस मंच में बिछाया हुआ बिस्तर के रूप में हो गये, अर्थात् दर्शकों को देखने में कौतुक उत्पन्न करनेवाले वस्त्र (चादर) शिव हो गये, उस पर तुम्हारे शरीर की कान्ति पड़ने से लालिमा आजाती है जो अरुणिमा तुम्हारे नेत्रों को आनन्द देती है, और उससे मानो शृङ्गारमय शरीर बन जाता है।

भाष्य—

भगवती के मञ्च के चार पाये जो बताये हैं, उनका तात्पर्य है कि सदाशिव तत्व के चार प्रति विकाश ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ईश्वर हैं और मूलाधार से आज्ञाचक्र तक छ चक्र हैं, जो क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और छट्ठे मन। दश इन्द्रियां और पांच तन्मात्रा इन इक्कीश से बनते हैं। इसके ऊपर चार तत्व—माया, सुधा, विद्या, महेश्वर और सदाशिव अवशेष भूपुर के चार द्वारों पर पूर्व दिशाके क्रम से ब्रह्म-ग्रन्थि के उसके दूसरे बाजू में है। ये चार तत्व उसके चार द्वार हैं, सुधाविद्या का मुख शिव की ओर है। सदाशिव पर सुधाविद्या का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिससे ये दोनों एक रूप हो जाते हैं। शिव-शक्ति वैन्दव स्थान में मिल जाते हैं। जैसे—"सुधासिन्धोर्मध्ये" पहले वर्णन किया गया है। श्रीचक्र में चार द्वार हैं, जिसके मध्य में सहस्रदल है। रुद्रयामल में—"ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। एते पञ्च महाप्रेताः भूतादि पतयेमता॥ चत्वारो मञ्च चरणाः पञ्चमः प्रच्छदः पटः सा चित् प्रकाश रूपेण शिवेनाभिन्न विग्रहाः"॥ इस श्लोक में तद्गुणालंकार है।

अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहसिते
शिरीषाभाचित्ते दृशदिव कठोरा कुचतटे।
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोह विषये।
जगत्त्रातुंशंभोर्जयतिकरुणा काचिदरुणा॥६३॥

टीका—

हे भगवती मन्द हसिते ! शिव की करुणा का अवतार अरुण संसार की रक्षा के हेतु (जिसका अवतरण हुआ) उस मूर्ति की विजय हो। जिसके केश घुंघराले अर्थात् मुड़े हुये हैं, जिसका मन्दहास स्वभाव सरल है, सिरीष पुष्प के समान कोमल जिसका शरीर है, स्तनों में प्रस्तर के सदृश काठिन्य है। कटिभाग बहुत क्षीण (पतला) है और नितम्ब जिसके स्थूल हैं। इस प्रकार करुणामय अरुणा की जय हो।

भाष्य—

भगवती के शिर से पैर तक का वर्णन इस श्लोक में आया है। यह कामेश्वरी अरुणा, भगवान शंकर की जो करुणा है, उसका स्वरूप है, उपासक अरुणा की उपासना से करुणामय दृष्टि का अपने को सिञ्चन प्राप्त करता है।

समानीतः पद्भ्यां मणि मुकुरतामम्बरमणि-
र्भयादास्यादन्तःस्तिमितकिरणश्रेणिमसृणः ।
दधाति त्वद्वक्त्रप्रतिफलनमश्रान्तविकचं ।
निरातङ्कं चन्द्रान्निजहृदयपङ्केरुहमिव ॥९४॥

टीका—

तुमने अपने चरण-कमलों के स्पर्श से चन्द्रमा को चूड़ामणि भाव को प्राप्त कराया। तथापि राजयक्ष्मा द्वारा क्षीण भाव को

प्राप्त हो इस भय से तुमने चन्द्रमा को अपने किरणों में रख दिया है, इससे चन्द्रमा निष्कलंक तुम्हारे मुख-मण्डल की ज्योत्स्ना से प्रतिभासित रहता है।

भाष्य—

किसी आचार्य ने इसका अन्य रीति से भी वर्णन किया है—

(१) सूर्य भगवती के चरण का दर्पण है। अतः सूर्य इस योग्य नहीं जो भगवती के मुख का दपण हो सके।

(२) उस दर्पण में भगवती का मुख जो प्रतिविम्ब होता है वह कमल के समान है जिस पर चन्द्रमा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः भगवती का मुख-कमल निरन्तर विकसित रहता हैं, वह प्रतिविम्ब कमल, सूर्य के हृदय में रहता है अर्थात् सूर्य भगवती का उपासक हैं।

कलंकः कस्तूरी रजनिकर विम्बं जलमयं।
कलाभिः कर्पूरैर्मरकतकरण्डं निबिडितम्॥
अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरं।
विधिर्भूयो भूयो निबिडयति नूनं तवकृते ॥६५॥

टीका:—

तुम्हारे मुख-मण्डलमें लगी हुई कस्तूरीकी टीकाके सदृश कलंक को धारण करने वाला जलमय चन्द्र-मण्डल अति सघन कलाओं से सम्पूर्ण शुक्ल पक्ष प्रतीत होता है, इस हेतु तुम्हारे

भोग से प्रतिदिन यह चन्द्र रिक्त कुहर की भांति हो जाता है। पुनः तुम्हारे लिए बार बार यह चन्द्रमा फिर पुष्ट होता है। ब्रह्मा बार बार इस चन्द्र बिम्ब को तुम्हारे लिए छिपा रखता है। वास्तव में यह कलङ्क ब्रह्मा का चिन्ह (क) है।

भाष्यः—

अति सुगन्धित कस्तूरी की उपमा सुगन्धता की व्यापकता को दिखाती है, जैसे सम्पूर्ण सुगन्धी द्रव्य कस्तूरी में अन्तर्हित हैं इसी प्रकार सम्पूर्ण चक्र वैन्दव स्थानों में अन्तर्हित है। योगिनी हृदय में आया है, सम्वित् शून्य रूप से विसर्गान्तः विन्दुका प्रादुर्भाव होता है। वही संसार को उत्पन्न करनेवाली लहरोंसे त्रिकोणाकार में परिणत होकर धर्म, अधर्म, मान, मातृ, मेय प्रभाव के योग से नवयोन्यात्मक श्रीचक्र में परिणत हो जाती है, यही जलमय, अमृतमय चन्द्र मण्डल षोड़शदल सम्पन्न चक्र अमृत वीज (वं) रूप से घिरा हुआ, तथारिक्त कुहर (O) मध्य रन्ध्र बिन्दुमय चक्र अकार से लेकर अः विसर्ग पर्यन्त स्वरमय कला तथा तिथियों से और तदधिष्ठातृ कामेश्वर्यादि पञ्चदश नित्या जो चक्र के अन्तर्हित हैं, उनसे परिवेष्ठित है। इसी कारण इसको मरकत काण्ड नाम से कहा गया है यही विन्दु रूप चक्र तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुई, कामेश्वरी आदि षोड़शनित्या तथा षोड़शतिथी रूपा उपसना लोम-विलोम क्रम से शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष में पूजन की जाती है।

यद्वा चन्द्रमा वैडूर्यमणि का वना हुआ कलश है, जिसमें कस्तूरी कपूर भगवती के प्रति दिन के शृङ्गार के लिये रहता है, जो नित्यप्रति रिक्त हो जाता है और फिर भरा जाता है। एक चान्द्रमास से भगवती का एक एक दिन होता है। अतिशयोक्ति अलंकार।

पुरारातेरन्तः पुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः।
सपर्यामर्यादा तरल करणानामसुलभा ॥
तथाह्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलां।
तव द्वारोपान्त स्थितिभिरणिमाऽऽद्याभिरमराः ९६

टीकाः—

हे भगवती! तुम शिव के अन्तःपुर की वह महिषी हो, अतः चञ्चल इन्द्रियोंवाले जीवों को तुम्हारे चरण की पूजा दुर्लभ है। तिस पर भी इन्द्रादि देवता तुम्हारे द्वार पर अणिमादि सिद्धियों साथ खड़े रहते हैं।

भाष्यः—

भगवती के अन्तःपुर में देवता नहीं जा सकते हैं, तब तरल इन्द्रियवाले कैसे भगवती के पास जा सकते हैं? इस लिये इन्द्रिय विजय कर उपाशना करनी चाहिये। गीता—"तस्मात्त्व-मिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ" सबसे पहले इन्द्रियों पर विजय करनी चाहिये। श्रीचक्र के द्वार में देवता अणिमादि सिद्धि सहित पूजे जाते हैं।

इस श्लोक में भगवती की पूजा की मर्यादा सपर्यामर्यादा इस वाक्य से कही गई है। पूजा दो प्रकार की होती है— १ वाह्य पूजा, २ अन्तर्पूजा। वाह्य पूजा में यन्त्र मूर्ती आदि का पूजन वाह्योपचार से होता है। वाह्योपचार ये है—पञ्चोपचार, अष्टोपचारादि से अर्घ, पाद्य पञ्चामृत धूप, दीप, पुष्प, वस्त्र अलङ्कारादि से तत्तन्मंत्रों से भगवती का पूजन किया जाता है। इसे वाह्य पूजा कहते हैं। इस प्रकार पूजन गृहस्थादि सब का कर्तव्य है। इससे स्वर्गादि भोग सुख मिलता है।

उपाशना का अधिकारी वह है जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय कर लिया हो।

इन्द्रिय विजययुक्त अधिकारी अन्तर्याग से भोग मोक्ष प्राप्त करता है।

इन्द्रादि देवता जिन्होंने शत मख किये हैं, वे भी भगवती के द्वार पर अणिमादि सिद्धि लिये हैं। अर्थात् अणिमादि सिद्धि तो भगवती के द्वार पर ही मिल जाती है। भगवती के शरण में जाने से मोक्षरूपी लक्ष्मी मिलती है।

अन्तर्याग —

भगवतीका विग्रह षट् चक्रमय साधकके शरीरमें है। भगवती के चरण भ्रूमध्य (आज्ञा) में है, इस स्थानमें पिंगलाकी (पूरक रेचक) गति को दूर कर स्थिर (कुम्भक) भाव से भगवती की पूजा करे, शतमख अर्थात् कर्म-वाहिनी सौ सौ नाड़ी पुञ्ज हैं, उसे कुम्भक की सहायता से साधक भगवती के चरण चन्द्र स्थान में

जिसे "अतुलां सिद्धिं" कहा, वह सिद्धि जिसकी तुलना नहीं हो सकती। साधक उस मोक्ष सिद्धि को प्राप्त करता है! इस श्लोक में भगवती का विशेषण "अन्तःपुरमसि" पद आया है, इसमें अन्तर्याग भगवती की पूजन बताया गया है। जिसकी इन्द्रिय वश में है, उसीको अन्तर्याग सुलभ हो सकता है।

गीता में लिखा है—'अनन्यचेतासततं यो मां स्मरति नित्यशः, तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः" अनन्य चित्त से जो अपने इष्ट देव की उपाशना करते हैं, उनको उसकी प्राप्ति सुलभ है। इस श्लोक में "चरणयोः" शब्द भगवती के आज्ञा-चक्रमें ध्यान लगाने का सूचक है। वहां पर भगवती का साक्षात्कार साधक को होता है। पूर्व श्लोक के भाष्य में सपर्या पूजा का विस्तार दिखाया है।

सपर्या प्रकरण (पूजा) :—

माला—शास्त्रों में (शारदायां) माला के प्रकार यों कहे हैं।

मुक्ता माणिक्य वैडूर्यगोमेधान्वज्र विद्रमौ।
पुष्परागं मरकतं गरुडोद्गार (नीलम) मेव च ॥
एभिस्तु ग्रथिता 'स्वर्णं रत्न मालेति' कथ्यते ॥

पूजा में कौन देवता को किस रंग का वस्त्र देना चाहिये—

पीतं विष्णौ सितं शम्भौ रक्तं विघ्नार्क शक्तिषु।
सछिद्रं मलिनं जीर्णंत्यजेत्त्तैलादि दूषितम् ॥

वस्त्र उचित न होने से क्या क्या दोष होते हैं—

तैलादि दूषिताद्रोगः सछिद्राद्वाच्यता भवेत्।
जीर्णाद्दरिद्रता कर्तुः मलिनात्कान्तिहीनता ॥

उपरोक्त दोष खराब वस्त्र से आ जाते हैं।

पंचामृत की विधि—

घृतं क्षीरं तथा नीरं शर्करा मधु संयुतम्।
पञ्चामृतमितिख्यातं प्रत्येकन्तु पलम्पलम् ॥

महाभिषेक के विषय में—

शिवसूर्यौविहायमहाभिषेकं सर्वत्र शंखेनैव प्रकल्पयेत्।

पूजा में मुद्राओं का प्रकरण :—

गन्ध मुद्रा-कनिष्ठांगुष्ठयोगेन गन्धं मुद्रा
पुष्पमुद्रा-तर्जन्यंगुष्ठांगुष्ठ योगेन पुष्पमुद्रा
धेनुमुद्रा-अमृतिमुद्रा महामुद्रा अन्योन्य
ग्रथितांगुष्ठौ प्रसारित करांगुलि महामुद्रेयमुदिता
परमी करणंवुधैः।

सम्मुखीमुद्रा, सकलीकरणमुद्रा, अवगुण्ठनमुद्रा, सन्निरोधनमुद्रा, नाराचमुद्रा इत्यादि मुद्राएं वर्णन की गयी हैं।

अर्घ्य :—

ओं तापत्रय हरं दिव्यं परमानन्द लक्षणम्।
तापत्रय विनिर्मुक्तं तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥

प्रदक्षिणा :—

एका चण्ड्यां रवौसप्ततिस्त्रोदद्याद्विनायके।
चतस्रः केशवे देया शिवस्यार्द्धं प्रदक्षिणा ॥

प्रणाम के प्रकरण :—

उरसा शिरसा दृष्टया मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोष्टाङ्गमीरितः ॥

उपचारभेदाः —

भक्त्या चैते कृता देवे साधकंदेव सन्निधिम्।
चारयन्तियतस्तस्मादुच्यन्ते ह्युपचारका ॥
समीपेचारणाद्वापि फलानान्ते तयोदिताः।
अष्टत्रिंशत् षोड़शोऽर्के दशपञ्चोपचारकाः ॥
तान्विभज्यप्रवक्ष्यामिके केते तैःकृतैश्चकिम्।
आसनं प्रथमं तेषामावाहनमुपस्थितिः।
स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचामंचोपवीतकम् ॥
पुनराचाम भूषे च दर्पणालोकनं ततः।
गन्ध पुष्पे धूप दीपौ नैवेद्य च ततः क्रमात् ॥
पानीयं तोयमाचामं हस्तवासस्ततः परम।
ताम्बूलमनुलेपञ्च पुष्पदानं पुनः पुनः ॥
गीतं वाद्य तथा नृत्यं स्तुतिं चैव प्रदक्षिणम्।
पुष्पाञ्जलि नमस्कारावष्टत्रिंशत्समीरिताः ॥

तन्त्रों में :—

षोडशीति प्रधाना च दशधा तदनुस्मृता।
पञ्चधा तदनु प्रोक्ता कर्त्तव्याभूतिमिच्छता ॥

कलत्रं वैधात्रं कति कति भजन्ते न कवयः।
श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः॥

महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे ।
कुचाभ्यामासङ्गः कुरवकतरोरप्यसुलभः ॥६७॥

टीका—

हे सती ! ब्रह्मा की गृहिणी सरस्वतो की उपाशना करने से कितने कवि वाचस्पति हुवे, अर्थात् बहुत कवि हो गये। लक्ष्मी की उपाशना से किसने धन नहीं पाया ? अर्थात् लक्ष्मीपति हो गये। किन्तु तुम ही सतियों में श्रेष्ठ हो, जिसके वक्षस्थल का आलिंगन शिव के अतिरिक्त अशोक वृक्ष तक भी नहीं कर सकता है।

भाष्यः—

आदि कवि ब्रह्मा ही हुये हैं, परन्तु सरस्वती की सेवा करने से और भी कवि हो गये हैं, यथा लक्ष्मीपति विष्णु हैं, परन्तु लक्ष्मो की उपाशना करने से कितने ही धनवान होकर लक्ष्मपति कहलाने लगे, परन्तु हे भगवती तुम सर्वोपरि स्थिर हो, यतः सरस्वती लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती है। अशोक वृक्ष जब सूख जाता है, उसे जव तक पद्मिनी अपने पैर से स्पर्श न करे तब तक उसमें जीवन नहीं आता, अतः उसे सदा तुम्हारे चरण के आलिंगन की शोभा है, परन्तु वह भी तुम्हारे शरीर का आलिंगन नहीं कर सकता है। भगवती के स्वरूप का वर्णन पद्मिनी स्त्री से किया है, यथार्थ में पद्मिनी के लक्षण जिन स्त्रियों में होते हैं, उन्हें भगवती की अवतार जानना चाहिये।

रक्तान्त लोचनाहंस गतिश्च श्रीफलस्तनो।
तिलप्रसून सदृश नासिका पूज्य पूजिता॥
चम्पकासून गौरी वा लीलोत्पलरुचिस्तथा।
मृगयारम्भ सम्प्राप्त मृगीलोचन लोचना॥
वलित्रयोल्लासिमध्या सुवेशा हंसवर्तना।
मृदुल्पशुचिभोक्त्री च गाढ़लज्जा च मानिनी॥
श्रवलाधर पुष्पेषु प्रीतिर्यस्या प्रजायते।
द्वितीयायां तृतीयायां रात्रये रति लोलुपा।
दिवारात्रोस्तुर्ययामे पद्माशनलयेन य॥
यस्या रतीच्छा भवति सा जाति पद्मिनी भवेत।

जिसके नेत्र के कोए लाल रंग के हो, हंस के समान चलती हो, बड़े-बड़े स्तन हो, फूल के समान नाक हो, जिन्हें धनी तथा ज्ञानी पुरुष आदर करते हों, जिनका वर्ण चम्पा के फूल के समान हो, शोभा नीले कमल के समान हो, मृग के समान चञ्चल नेत्र हो, जिसके पेटकी त्रिवली शोभा बढ़ा रही हो, सुन्दर आभूषण जिसको अच्छा ज्ञात हो, थोड़ा भोजन करे, लजानेवाली हो।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो।
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयां॥
तुरीया काऽपित्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा।
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि ॥९८॥

टीका—

हे परब्रह्म महिषि ! वेद के ज्ञाता तुम को ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती नाम से, विष्णु की कमला, शिवकी सहचरी पार्वती इन नामों से तुमको ही सम्बोधन करते हैं, परन्तु पूर्ण सत्व को निस्सरण करनेवाली तुम तुरीयारूपा दुरधि प्राप्य अनन्त महिमावाली महामाया रूपा परब्रह्म की शक्ति सारी संसार को सञ्चालन कर रही हो।

भाष्य—

इस श्लोक से भगवती तुरीयारूपा सच्चिदानन्दाकरा नित्य शुद्धबुद्धा आनन्दमयी का वर्णन आया है। तुरीया को परा षोड़शी भी कहा है—"सौं श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौं ॐ ह्रीं श्रीं क ए उ ल ह स क ह ल स क ल ह्रीं सौं ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं सौं यह तुरीया विद्या है। "तुरीय विद्या आत्म साक्षात्कारिणी" ब्रह्म विद्या है।

समुद्भूत स्थूलस्तन भरमुरश्चारु हसितं।
कटाक्षे कन्दर्पाः कतिचन कदम्बद्युतिवपुः॥
हरस्य त्वद्भ्रान्तिं मनसि जनयन्तिस्म विमला।
भवत्या ये भक्ताः परिणतिरमीषामियमुमे॥९९॥

टीका—

हे उमे ! शुद्ध हृदयवाले भक्त तुम में तन्मय होने से उनके वक्षस्थल उन्नत हो जाते हैं। उनके मुख पर मन्द हास्य आ जाता

है। उनके मन्द दृष्टि रूप कटाक्ष से काम देव का विकाश हो जाता है। कदम्ब वृक्ष के सदृश उनका शरीर हो जाता है, ये सब लक्षणों को देख कर शिव के मन में तुम्हारी भ्रान्ति उन भक्तो को देखने पर आ जाती है।

भाष्य—

भक्त भगवती पर ध्यान लगाने से भगवती के स्वरूप को धारण कर लेता है। "भावितं तीव्र वेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना। पुमान्तद्धिभवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमर कीटवत्" जो जिसका तीव्र वेग से ध्यान करता है, उसका वही रूप बन जाता है, जैसे— मकड़ी एक कोड़े को पकड़ कर लाती है, कीड़ा एकाग्र मकड़ी को देखता रहता है। थोड़ी देरी में कीड़ा मकड़ो के स्वरूप में बदल जाता है। दृढ़ विश्वास और श्रद्धा से दर्शन होता है, देव-दर्शन से ज्ञान, ज्ञान से तद्‌रूप "ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति" ब्रह्म का जाननेवाला ब्रह्म हो जाता है।

कदाकाले मातः कथय कलितालक्तकरसं
पिबेयं विद्यार्थी तवचरणनिर्णेजन जलम्।
प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया
यदाधत्ते वाणी मुखकमल ताम्बूलरसताम्॥१००॥

टीकाः—

हे माता! तवकलितालक्तकरसं तुम्हारे चरणमें लगे हुये अलक्त से रञ्जित चरण निर्णेजन जल को यह विद्यार्थी कब पान

कर सकेगा या यह बताओ जो (चरणामृत) स्वभाव से मूक (बधीर) मूर्खों को भी कविता रूपी वाक्शक्ति प्रदान करता है। "वाणी मुखकमल ताम्बुल रस के सदृश लालिमा वाले चरणामृत को कब पान करूं

भाष्य:—

भगवती के चरणारविन्द प्रक्षालित जल पान करने से जड़-बुद्धि दूर होकर मनुष्य बुद्धिमान हो जाता हैं। सामयिक के मतानुसार सहस्रार से निसृत जो अमृत बिन्दुओं का क्षरण होता है, उस जल पान को जब जीव करता है, उसको भगवती का चरणामृत कहा है, जैसे—"सुधाधारा सारैः" श्लोक (१०) में वर्णन किया हैं। "अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं" इस श्लोक में जिस तरह कुण्डलिनी को उद्बोधन कर कुलकुण्डा में लाने को कहा उससे तात्पर्य है। आज्ञाचक्र में भगवती के दो चरण हैं वहां से निसृत अमृत रूपी चरणामृत उपासक योगाभ्यास द्वारा पान करता है। इसके लिये कहा है, "अकालमृत्यु हरणं सर्व व्याधिविनाशनं, देव्याः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।" इस चरण निसृत जल पान करने वाले साधक योगी को अकालमृत्यु नहीं होती है। वह व्याधियों से छुटकारा पाता है। भगवती के चरणामृत पान से पूर्ण ज्ञान का प्रकाश होने से वह मुक्त हो जाता है। चरणामृत पूजन के अनन्तर अवश्य पीना चाहिये। इस जल में पूजा के मन्त्रों से दिव्य शक्ति आ जाती है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार।

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधि हरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ।
चिरं जीवन्नेव क्षपित पशुपाशव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयतिरसंत्वद्भजनवान् ।१०१।

टीकाः—

हे भगवती ! तुम्हारा भजन करने वाला साधक सरस्वती पर वाचस्पतित्व, (ब्रह्मा के सदृश) लक्ष्मी पर धन ऐश्वर्य (श्रीपतित्व) प्राप्त कर ब्रह्मा, विष्णु का ईर्षा पात्र होकर विहार करता है। (एवं) रमणीय शरीर से रति के पातिव्रत को शिथिल करता है (अर्थात् रति उसके सौन्दर्य को देख कामदेव का भ्रम करती है। पशु पाशों को दूर कर दीर्घायु भोगता हुआ परानन्द (ब्रह्मानन्द) रस को पान करता है।

भाष्यः—

भगवती का भजन करने वाला साधक ज्ञान, शक्ति और विभव शक्ति सम्पन्न हो जाता है। उसका सांसारिक जीवन ऐश्वर्य प्रभावयुक्त रहता है। वह सब प्रकार के उत्तम उत्तम भोगों को भोगता हुआ दीर्घायु और अज्ञान के बन्धनों से निर्मुक्त होकर अन्त में ब्रह्मानन्द रस मोक्ष को प्राप्त करता है। पशुपाशः-पशु, जीव, इन्द्रिय, प्रपञ्च, पश्यतोति पशु, इन्द्रिय भोग लोलुप जीव को पशु कहते हैं। जैसे तैत्तरेय में आया है—

"अदितिः पाश प्रमुमोक्त्वे तन्नम (तै० ३, ११, ४) पशुभ्यःपशुपतये करोमि।" तथा पाश आठ प्रकार के पाशुपत शास्त्र में कहे हैं— "घृणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी कुलंजातिश्च शीलं च अष्टौ पाशाः प्रकीर्तिता। पाशवद्धोभवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा-शिवः॥"

पुस्तक सब पढ़ते हैं, धन भी बहुत उपार्जन करते हैं परन्तु बाणि का सुख और धनोपार्ज्जन करने पर धन सम्पत्ति का ऐश्वर्य भोग वही ले सकते हैं, जिन्होंने महामाया भगवती की शुद्ध भाव से उपासना की हो, वहाँ स्थिर विद्या, स्थिर लक्ष्मी निवास करती है। जो धनवान होते है प्रायः वे पूर्ण आयु नहीं भोगते हैं, परन्तु भगवती का उपासक लक्ष्मीपति होता हुआ पूर्ण आयु भोगता हुआ अन्त में ज्ञाननिष्ठ होकर ब्रह्मानन्द रसको पान करता है। यथा उपनिषद् :–'रसोहवै लब्ध्वा आनन्दीभवति।' कभी कभी जन्मान्तर संस्कारवस शिवशक्तिमय सायुज्य होने पर भी अर्थात् षट्चक्र भेदन करने पर सहस्रार में पहुंचने पर भी वासना के कारण वह जीवन्मुक्त होकर देह में ही रहता है यथा "सम्यग् ज्ञानाधिगमात् कर्मादिनामकरण प्राप्तौ, तिष्टति संस्कार वशाच्चक्रभ्रमिव धृत शरीरः।" षट्चक्रोंमें से, जिस चक्र में साधक निष्ठा करता है, उस चक्रमें स्थिरता पाता है, उसका फल यह है—मणीपुरमें सार्ष्टी मुक्ति प्राप्त कर भक्ति प्राप्त में उसकी पूर्ण भावना स्थिर हो जाती है। अनाहत में स्थिर होने से सालोक्य मणिद्वीप का आनन्द लेता है। विशुद्ध में मनोलय

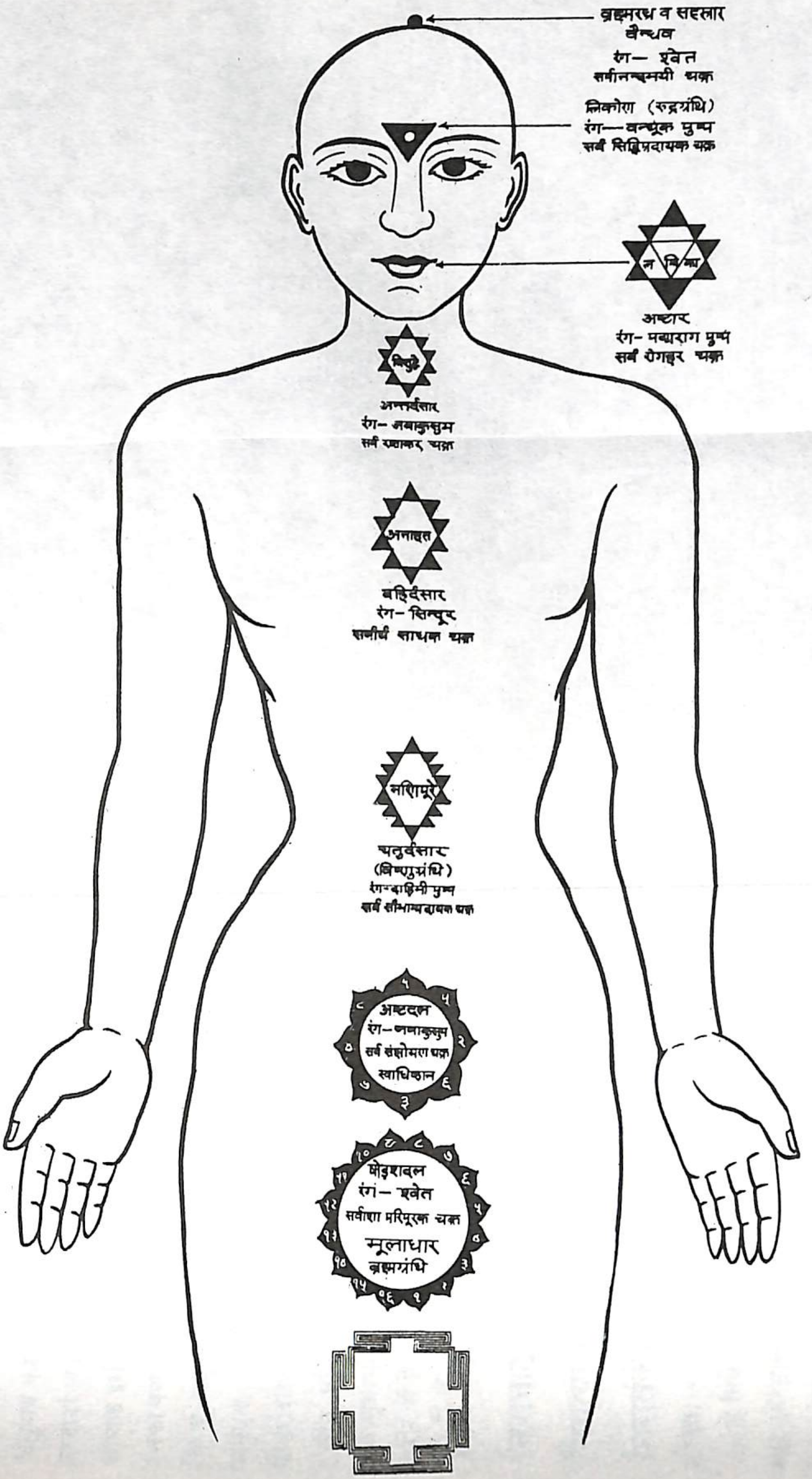
ब्रह्मरंध्र व सहस्रार
बैन्धव
रंग— श्वेत
सर्वानन्दमयी चक्र
त्रिकोण (रुद्रग्रंथि)
रंग—बन्धूक पुष्प
सर्व सिद्धिप्रदायक चक्र
अष्टार
रंग– पद्मराग पुष्प
सर्व रोगहर चक्र
विशुद्ध
अन्तर्दसार
रंग– जबाकुसुम
सर्व रक्षाकर चक्र
अनाहत
बहिर्दसार
रंग– सिन्दूर
सर्वार्थ साधक चक्र
मणिपूर
चतुर्दसार
(विष्णुग्रंथि)
रंग–दाड़िमी पुष्प
सर्व सौभाग्यदायक चक्र
अष्टदल
रंग–जपाकुसुम
सर्व संक्षोभण चक्र
स्वाधिष्ठान
षोडशदल
रंग– श्वेत
सर्वाशा परिपूरक चक्र
मूलाधार
ब्रह्मग्रंथि

करने से सामीप्य उसे प्रतिक्षण भगवती की झांकी दीख पड़ती है। आज्ञा में स्थिर होने से सारूप्य अर्थात् देवीका स्वरूप अनुभव करता है। इस प्रकार सब पाशों से मुक्त होता हुवा तुम्हारा भजन करने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। षट्चक्र तथा श्रीचक्र इसी मनुष्य देह में है, जैसे चित्रपट में दिखाया है। इनका वर्णन पूर्व श्लोकोंमें हो चुका है। मतान्तरसे-नाद, श्रीचक्र विन्दु, षट्चक्र है, यथा मूलाधार, श्रीचक्र का त्रिकोण स्वाधिष्ठान, अष्टदल, मणिपुर, अन्तदशार, अनाहत वहिर्दशार, विशुद्धि, षोड़शदल, चतुर्दशार, आज्ञा, अष्टदल, दूसरा सहस्रदल - त्रिवृत्त (तीन ग्रन्थियां) मूलाधार - स्वाधिष्टान ब्रह्मग्रन्थी। अनाहत "विष्णुग्रन्थी, आज्ञा - रुद्रग्रन्थी ये श्रीचक्र की तीन परिधि शरीर में है। विन्दु का स्थान गुरुमुख से जानना।

निधे नित्यस्मेरे निरवधि गुणे नीतिनिपुणे।
निराघाटज्ञाने नियमपरचित्तैकनिलये॥
नियत्या निर्मुक्ते निखिलनिगमान्तस्तुतपदे।
निरातंके नित्ये निगमय ममापि स्तुतिमिमाम् १०२

टीकाः—

हे निधे! सम्पूर्ण संसार के आधारभूत, हे नित्यस्मेरे! निरन्तर स्मेरमुखि। हे निरवधिगुणे! अनन्त गुण को रखनेवाली तथा अकाट्य ज्ञानमयी नियमपरायण भक्तों के मन में निवास करनेवाली नियति से निर्मुक्त नित्य रहनेवाली सम्पूर्ण वेदोंपनि-

षदों द्वारा स्तुति किये हुवे, निरातंके, जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं है, हे नित्ये ! हे ब्रह्म स्वरूपा ! मेरी इस स्तुति को अपने तक पहुंचा दो, (यही मेरी प्रार्थना है ।) अर्थात् हे भगवती ! मेरा स्तवन शब्द ब्रह्म तक पहुंच जाय 'शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधि गच्छति ।"

भाष्यः—

निधे शब्द का अर्थ याज्ञवल्क्य और मनु ने भूमि में छिपे हुए धन को बताया है अर्थात् अव्यक्त ब्रह्म पद की प्राप्ति। नित्ये ! इस सम्बोधन से यह प्रकट किया गया कि वेद के दो काण्ड हैं "उपाशना" और "ज्ञान" उपाशना को अविद्यात्मक बत या है और ज्ञान को विद्यात्मक। नित्य ! इस सम्वोधन से श्रीविद्या को उपाशन, ज्ञान अर्थात् मोक्ष देनेवाली हैं। स्मेरे शब्द आनन्द का सूचक श्रीविद्या के उपासक के घर में नित्य आनन्द तथा उपासक नित्य आनन्द रहता है। निरवधि-गुणे ! इस पद से साधक ऊंचा रहता है अर्थात् निरवधिगुण परा विद्या से तात्पर्य है। नो त निपुणे से संसार चक्र के चलाने में साधक को पूर्ण निपुणता होनो बताई है। निराघाटज्ञाने से साधक को किसी बात के समझने में रुकावट नहीं आती है। नियम-परचित्तैक निलये। नियम परायण साधकों के चित्तमें निवास करनेवाली। चित्त को ७ भूमिका होती हैं—शुभेच्छा शुभविचारणा, तनुमानुषा, सत्वापत्ति, अशंशक्ति, पदार्थभाविनीं और तुर्यगा। योग दर्शन में पहले की ३ भूमिका साधन भूमिका बताई है। ३

भूमिका तक ज्ञान प्राप्तिकी प्रधान भूमिका है। इनमें श्रवण मनन, निदिध्यासन पर्यन्त ही जानना चाहिये। इसको जागृत भूमिका भी कहते हैं। चतुर्थ भूमिका से लेकर ७ भूमिका तक सिद्ध भूमि कही है; इसलिये चतुर्थ भूमिका को स्वप्न भूमि और पञ्चम को सुसुप्ति भूमि, इन दो भूमियों में जाकर योगी स्वयं उठ सकता है। यहां ब्रह्मविद्वर योगी को कहा है, लेकिन छठो भूमिका में योगी समाधि से स्वयं नहीं उठ सकता, इसलिये इस भूमिका में योगी को ब्रह्मविद् वरीयान कहते हैं। पंचम भूमिका में जीवन मुक्ति भाव हो जाता है। सप्तम भूमिका में न योगी किसी से उठाया जा सकता न स्वयं उठ सकता है। यहां पर ब्रह्मविद् वरिष्ठ कहा जाता है। योगी को इस भूमिका में जाने पर जीव, ईश्वर, जागृत यह भेद भ्रान्ति की स्फुरणा तक नहीं रहती। ईश्वर प्रेरणा से प्राणवायु का संचालन होता रहता है। शरीर का होना न होना योगी को इस अवस्था में समान है। साधक को इन ७ भूमियों की सिद्धि बताई है।

नियत्या। अर्थात् मृत्युपाश से साधक का छुटकारा हो जाता है। निखिल निगमा, अर्थात् सब वेदों से उसकी स्तुति की जाती है, 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ती" "निरातंके लोके" अर्थात् दुख रहित नित्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति। इस प्रकार वेदान्त सिद्ध अवस्था श्रीविद्योपाशन से प्राप्त होती है।

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः ।
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ॥
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं ।
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियं १०३

टीका:—

हे जननी ! दिन को करनेवाले सूर्य को दीपक के प्रकाश से नीराजन अथवा अमृत निष्पन्दन करनेवाले चन्द्रमा को जल के कणों से अर्घ प्रदान, समुद्र को उसके जल से सिञ्चन करना, इसी तरह तुम्हारी ही वाणी द्वारा यह तुम्हारी स्तुति है ।

भाष्य:—

सूर्य प्रकाश का पुञ्ज, उसे दीप से नीराजन करना. चन्द्रमा अमृत निश्छरण करनेवाला उसे जलकणों से अर्घ्य समुद्र को उसके जल से तृप्त करना, इसी प्रकार वाणीरूपा हे भगवती ! तुमको तुम्हारी वाणी से प्रसन्न करना एकमात्र क्षमापन् मांगना है। शब्दात्मिका भगवती ही शब्दरूपा है। उसकी स्तुति करना उसीकी वाणी का स्तवन है। साधक अपना अहम्भाव त्याग कर चराचर विश्व में भगवती को ही देख रहा है।

इति श्री १०८ श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचित "सौन्दर्य लहरी" भाष्य कुसुमावली समाप्ता ।

॥ पुष्पाञ्जलिः ॥

शिवे शिवसुशीतलामृततरङ्गगन्धोल्लस-
न्नवावरणदेवते नवनवामृतस्यन्दिनि ।
गुरुक्रमपुरस्कृते गुणशरीरनित्योज्ज्वले
षडङ्गपरिवारिते कलित एष पुष्पाञ्जलिः ॥

समस्तमुनियक्षकिंपुरुषसिद्धविद्याधर-
गुहासुरसुराप्सरोगणमुखैर्गणैः सेविते ।
निवृत्तितिलकाम्बरप्रकृतिशान्तिविद्याकला-
कलापमधुराकृते कलित एष पुष्पाञ्जलिः ॥

त्रिवेदकृतविग्रहे त्रिविधकृत्यसंधायिनी
त्रिरूपसमवायिनि त्रिपुरमार्गसंचारिणि ।
त्रिलोचनकुटुम्बिनि त्रिगुणसंविदुद्यत्पदे
त्रयि त्रिपुरसुन्दरि त्रिजगदीशि पुष्पाञ्जलिः ॥

पुरन्दरजलाधिपान्तककुबेररक्षोहर-
प्रभञ्जनधनञ्जयप्रभृतिवन्दनानन्दिते ।
प्रवालपदपीठिकानिकटनित्यवर्तिस्वभू-
विरिञ्चिविहितस्तुते विहित एष पुष्पाञ्जलिः ॥

यदानतिबलादलंकृतिरुदेति विद्यावय-
स्तपोद्रविणसौरभाकृतिकवित्वसंपन्मयी ।

जरामरणजन्मजं भयमपैति तस्यै समा-
हिताखिलसमीहितप्रसवभूमि तुभ्यं नमः ॥
निरावरणसंविदुद्गमपरास्तभेदोल्लस-
त्पदास्पदचिदेकतावरशरीरिणि स्वैरिणि ।
रसायनतरङ्गिणीरुचितरङ्गसंचारिणि
प्रकामपरिपूरणि प्रसृत एष पुष्पाञ्जलिः ॥
तरङ्गयति संपदं तदनु संहरत्यापदं
सुखं वितरति श्रियं परिचिनोति हन्ति द्विषः ।
क्षिणोति दुरितानि यत्प्रणतिरम्ब तस्यै सदा
शिवंकरि शिवे परे शिवपुरन्ध्रि तुभ्यं नमः ॥
त्वमेव जननी पिता त्वमथ बान्धवस्त्वं सखा
त्वमायुरपरं त्वमाभरणमात्मनस्त्वं कला ।
त्वमेव वपुषः स्थितिस्त्वमखिलायतिस्त्वं गुरुः
प्रसीद परमेश्वरि प्रणतिपात्रि तुभ्यं नमः ॥
कञ्जासनादिसुरबृन्दलसत्किरीट-
कोटिप्रघर्षणसमुज्ज्वलदंघ्रिपीठे ।
त्वामेव यामि शरणं विगतान्यभावं
दीनं विलोकय दयार्द्रविलोचनेन ॥
श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः । पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥

शुद्धिपत्रम्

अशुद्धि	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
हरिसेओं	हरिसेल्	५	१७
दशन	दर्शन	१४	१३
थारण	धारण	२६	१७
हरिसे हर	हरिसे ह	२८	६
अश्चय	आश्चर्य	३२	६
अपित	अर्पित	३४	१६
सम्पूण	सम्पूर्ण	३५	६
स्थिरत्यन्त	स्थित्यन्त	३६	४
विसर्गाधि:	विसर्गाध:	३६	७
कमणि	कर्माणि	३७	३
ब्रह्महदि	ब्रह्मविदि	३७	१३
सचित	सञ्चित	३७	२०
जान्दुचार्या	यानुचार्या	३६	१३
वणन	वर्णन	४१	१३
जन लेता है	जान लेता है	४२	२
अन्तदशार	अन्तदशार	४३	३
स्पश	स्पर्श	४३	४
चम्म	चक्र	४४	२०
मयसे	मध्यसे	४५	३

अशुद्धि	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
त्रिनव	त्रितय	५०	८
हवत्	हट़ात्	५३	१
श्रसद्	श्रीमद्	८३	६
नालसर	नीलसर	८३	१५
माध्युय	माधुर्य	८४	१६
कपिसे	कतिसेक	६०	१६
तद्वार्द्ध तदुन्देन्दो	तदुर्घन्दु	१०१	१२
मध्यंशन	मध्येशत	१०२	१६
निर्माण	निर्वाण	१०४	६
आत्मज्ञन	आत्मज्ञान	१०५	१६
पवाशना	उपासना	१०६	१२
त्वदीयं	तदीयं	११०	१२
मैत्रुहं	O	१२५	
तृणबत	तृणवत्	१२७	१३
धर्मा	धर्मो	१२६	३
मना	मनो	१४२	६
कु	क्लीं	१४४	६
क	व	१५३	१७
क	व	१५३	१६
निमल	निर्मल	१५८	११
व्ययो	व्ययी	१६८	१४
प्राणोक्त	प्राणोत्त	१६६	१०

यन्त्र	मन्त्र	१७४	४
त्तम्योर्के	तम्योर्द्धे	१७५	११
क्षमलं	क्षमल	१८५	१३
पावती	पावती	१९२	४
संसार	समर	१९२	४
उत्प्रेक्ष	उत्प्रेक्षा	१९५	१
श्लक	श्लोक	१९५	२
ततपरय	तात्पय	१९५	७
गुह्यमग्रम्	गुह्यमग्रे	१९५	८
कमौ	कमलौं	१९६	१२
पुप	पुष्प	१९६	१३
वसे	वंसे	१९८	१६
निभयना	निर्भयता	१९८	१८
दृष्टा	दृष्टि	२००	१२
अधा	अधोमुखि	२०४	७
जसे	जैसी	२०५	१३
प्रसण	प्रसरण	२०४	१३
आकषण	आकर्षण	२०५	७
सौन्दय	सौन्दर्य	२०६	१९
रसात्म	रसात्मक	२०७	१४
विद्रम	विड्रुम	२२१	६
अविभ्रान्त	अविश्रान्त	२२३	१४

।। द्वितीय खण्ड ।।

सौन्दर्य लहरी

श्लोक नं० १

(क्लीं)

चतुष्कोण यन्त्र मध्यमें कामवीज मन्त्र (क्लीं)

इस श्लोकमें इच्छित कार्यकी सिद्धिके प्रयोगका वर्णन है। साधक निरन्तर १२ दिनतक जप करे घीके दीपक जलावे, चार रंगोंसे इस प्रकारका यन्त्र बना सामने रख पूजा कर नित्य १००० जप करे, प्रयोगके दिनोंमें मिष्टान्न और फल भक्षण करे, पुर्वाभिमुख सोनेके पत्रपर यन्त्र बनावे इससे सर्व सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(यन्त्र नित्य लिखे, १० (दश) संस्कार करे, प्राण प्रतिष्टादि पंचदश संस्कार करके पूजन षोडशोपचारसे नित्य करें। त्रिमधुसे दशांश हवन तर्पण मार्जन कुमारी पूजन ब्राह्मण भोजन करावे।)

[चतुषकोण यन्त्र बनाकर मध्यमे कामवीज लिखे]

श्लोक नं० २

(ह्रीं)

त्रिकोण यन्त्र मध्यमे वधुवीज (ह्रीं)।

दूसरे मन्त्रसे कार्यकी सिद्धि व सर्व प्रकारके वशीकरण होते हैं।

इस यन्त्रको स्वर्ण पत्रपर अष्टगन्धसे लिख उत्तराभिमुख हो पूजन कर १ महीना २५ दिनतक नित्य एक सहस्र जप करे। जौके आटेको दूधमें पका कर (यवागू) भक्षण करें।

(त्रिकोण यन्त्र)

श्लोक नं० ३

(श्रीं)

षट्कोण यन्त्र मध्यमे रमाबीजा

मन्त्रका प्रयोग विद्याके विकासके लिये है।

इस यन्त्रको स्वर्णपर पूर्वोक्त विधिसे लिख पूजन कर ईशानाभिमुख बैठ कर १ महीना २४ दिनतक २००० दो सहस्र तृतीय श्लोकात्मक मन्त्रका नित्य जप करे। साधनकालमें चणकान्न भोजन करे।

इसी प्रयोगको विद्यार्थी विद्या प्राप्तिके लिये १५ दिनतक नित्य सहस्रात्मक जपसे सम्पन्न कर सकता है।

श्लोक नं० ४

दुं

अष्टकोण यन्त्र मध्यमे दुर्गा बीज

चतुर्थ मन्त्रका प्रयोग महान् प्रभुत्वकी प्राप्तिके लिये है।

चाँदीके पत्रपर पूर्वोक्त विधिसे पूर्वाभिमुख होकर १६ सोलह दिनतक नित्य सहस्रात्मक जप करें। भोजनमें चना चावल ही ग्रहण करे।

श्लोक नं० ५

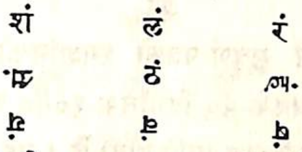

पंचम मन्त्रका प्रयोग अन्य मनुष्यकी अपेक्षा प्रथम वस्तुपर अधिकार कर लेनेके लिये है। तांबेके पत्रपर इस यन्त्रको उपरितन मार्गसे लिख पूजन कर पूर्वाभिमुख ८ (आठ) दिनतक नित्य २००० दो सहस्र जप करें।

(चतुस्कोण यन्त्र बनावें मध्यमें (ठं) चार कोणोंमें ईशान कोणसे शं, रं वं यं इनके मध्यमें लं अर्थात् शं लं रं इस प्रकार पूर्वमें दक्षिणमें हं अर्थात् रं हं वं एवं पश्चिममें वं उत्तरमें सं।)

श्लोक नं० ६

क्लीं क्लीं क्लीं

साध्यम्

क्लीं क्लीं क्लीं

छटे मन्त्रका प्रयोग नपुंसकताके रोगके निवारणार्थ है।

सोनेके पत्रपर यन्त्र लिख कर पूर्वाभिमुख २१ इकोस दिन ५०० नित्य प्रति संख्यासे जप करता हुआ गन्ना "ईख"का भक्षण करे।

(चतुष्कोण यन्त्र मध्यमें कामवोज छः बार उन तीन बीजों को लिख साध्यका नाम पुनः तीन कामबीज)

श्लोक नं० ७

क्लीं

इस बीजाक्षरसे सुवर्ण पत्रको श्मशानकी राखपर रखकर पूर्वाभिमुख हो साधकके ४५ दिनोंतक १००० बार श्लोकके नित्य प्रति जपनेपर शत्रुपर विजय प्राप्ति होती है। यह सुवर्ण पत्र शिरपर धारण करना चाहिये। इन दिनों दुध और भात खाकर रहे।

श्लोक नं० ८

रं

आठवें मन्त्रका प्रयोग कारागारसे मुक्ति प्राप्तिके लिये है। लाल चन्दनसे यन्त्र निर्माण कर रक्त पुष्प द्वारा पूजन करे। १२ बारह दिनतक नित्य १२०० बारह सौ संख्यासे जप करता हुआ काली मिरचका भक्षण करे।

(दो रेखा + मध्यमें र)

श्लोक नं० ९

यं यं यं

माध्यम्

आं क्रौं

नवें मन्त्रका प्रयोग—सब वस्तुओंपर आधिपत्य प्राप्त करना और विदेश गत मनुष्यके प्रत्यावर्तनार्थ है।

स्वर्ण पत्रपर अष्ट गन्धसे यन्त्र निर्माण कर ४५ पैंतालीस दिन नित्य सहस्र १००० संख्यासे दुग्ध पान करता हुआ जप करे।

(त्रिसूलके भ.तर दो रेखा तीन बार यं नीचे आं क्रौं)।

श्लोक नं० १०

ह्रौं

ह्रीं क्लीं ह्रीं

ह्रौं

ह्रीं क्लीं ह्रीं

ह्रौं

दशवें मन्त्रका प्रयोग—स्त्री-रोग तथा जिन स्त्रियोंके स्तन सूख गये हों उनके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर विधिपूर्वक यन्त्र लिख ६ छै दिन १००० सहस्र संख्यामें जप करे, लाल रेशमके तागेको कलाईपर बांधें। फल भक्षण करें।

(षट्कोण प्रत्येक कोणमें वधुबीज मध्यमें क्लीं ह्रीं क्लीं)।

श्लोक नं० ११

श्रीं

ग्यारहवें मन्त्रका प्रयोग—बन्ध्यापन निरासार्थ है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र लिख प्राण प्रतिष्ठापूर्वक पूजा कर मक्खन से "नवनीफ" यन्त्रको आच्छादित कर ८ आठ दिनतक १००० सहस्र जप करें। जपान्तमें नवनीतको शीघ्र खालें। भोजन ताल खजूर, गुलगुले, मालपुआ, महानैवेद्य करें।

(षट्कोणके बहार वृत्त मध्यमें रमाबीज)।

श्लोक नं० १२

सौः

सौः

बारहवें मन्त्रका विधान—वक्तृता और कवित्व शक्ति प्राप्त करनेपर है।

स्वर्णादि पात्रपर यन्त्र लिख पूजन कर जल डाल दें। ४५ पैंतालीस दिनतक नित्य सहस्र जप कर यन्त्रस्थ जलका पान करें। भोजनमें मधुमिश्रित अन्न या केवल मधु हो।

(चतुष्कोण—मध्यमें दो शक्ति बीज)।

श्लोक नं० १३

क्लीं क्लीं क्लीं

साध्यम्

क्लीं क्लीं क्लीं

तेरहवें मन्त्रका प्रयोग—कामिनो वशीकरण परक है।

स्वर्ण पत्र या शीशेके पत्रपर अष्टगन्धसे लिख छै ६ दिनतक जप करें। जपके बाद यन्त्रको कण्ठमें बांधे, जप प्रति दिन १००० सहस्र संख्यामें करना चाहिये।

(चतुष्कोण—मध्यमें २ पंक्तियोंमें कामबीज प्रति पंक्तिमें तीन बार)।

श्लोक नं० १५

श्रीं श्रीं

श्रीं श्रीं

श्रीं श्रीं

चौदहवें मन्त्रका प्रयोग—दुर्भिक्ष तथा महामारीके बचावके लिये है।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र निर्माण कर ४५ पैंतालीस दिनतक नित्य १००० सहस्र संख्यामें जप करें। भोजनमें दूध, मालपुआ, चावल ग्रहण करें।

(चतुष्कोण ६ बार मध्यमें रमाबीज)।

श्लोक नं० १५

सं सं

सं सं

सं सं

पन्द्रहवें मन्त्रका प्रयोग—कवित्व शक्ति और बुद्धि-विकाश के लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र लिख कर ४५ पैंतालीस दिनतक नित्य १००० संख्यामें जपें। जपान्तमें यन्त्र प्रक्षालित जलका पान करें। भोजन मधु, फल, शुद्ध शक्करका ग्राह्य है।

(वृत्त मध्यमें ६ बार 'सं' वीज)।

श्लोक नं० १६

वं

वं

वं

सोलहवें मन्त्रका विधान—वेदान्त और शास्त्रका विकाश तथा जनताको प्रसन्न करनेके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बना ४५ पैंतालीस दिनतक १००० सहस्र संख्यामें नित्य जप कर मधु भक्षण करें।

(त्रिकोण मध्यमें तीन बार " वं " बीज।

श्लोक नं० १७

ऐं

ऐं ऐं

सतरहवें मन्त्रका प्रयोग—सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानके हेतु है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर पैंतालीस ४५ दिन तक नित्य १००० सहस्र संख्यामें जप मधु, फल, दूध, शक्करका भोजन।

(चतुष्कोण मध्यमें लम्बी रेखा खींच कर दो चतुष्कोण हो जायं। तीन बार वाग्भव बीज)।

का

नमः क्लीं म

क्लीं

य क्लीं दे

वा

अट्ठारहवें मन्त्रका प्रयोग—स्त्री, पुरुष, जानवर, देव, दानवादि सबको वशीकरण परक हैं।

स्वर्ण पत्रपर चन्दन पुष्प केशरसे यन्त्र बना कर १००० सहस्र संख्यासे ४५ दिनतक जप करें। दुग्ध, ताम्बूल, पुंगीफल का भक्षण करें।

(षट्कोण काम देवाय नमः ६ कोणोंपर इस मन्त्रका एक २ अक्षर नमः ईशान कोणमें दो अक्षर)

श्लोक नं० १६

ह्रीं

ह्रीं ह्रीं

ह्रीं

इस उन्नीसवें मन्त्रका प्रयोग—राजा, स्त्री, दानवोंके आकर्षण करनेमें है।

सुवर्ण पत्रपर हवनकी भस्म, चन्दन, कुंकुम, धतूरेके पुष्पसे यन्त्र बनाकर २५ पच्चीस दिन १२००० द्वादश सहस्र संख्यामें प्रति दिन जप करता हुआ, दूध, मधु, फल खावे।

(वृत्ताकार ४ वधुबीज मध्यमें)।

श्लोक नं० २०

ॐ

क्षिप

स्वाहा

बीसवें मन्त्रका प्रयोग—विषहरण और सर्पविषको दूर करने के लिये है।

पच्चीस २५ दिनतक सहस्र संख्यासे तथा ४५ दिनतक शत १०० संख्यासे जप करता हुआ हवनकी भस्म या जलसे यन्त्र बनाकर दूध, कधु, फल खावे।

(अष्टकोण मध्यमें क्षिप क्षिप साध्य लिखे)।

श्लोक नं० २१

ह्रीं

ह्रीं ह्रीं

इक्कीसवें यन्त्रका प्रयोग—शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये हैं।

सुवर्ण पत्रपर वा चाँदी या ताम्रपर यन्त्र बनावें। ४५ पैंतालीसतक नित्य सहस्र संख्यामें जप करते हुए दूध, मधु, ताल, खजूर भक्षण करें।

(वृत्त मध्यमें तीन वधुबीज एक ऊपर दो नीचे)।

श्लोक नं० २२

बाईसवें मन्त्रका प्रयोग—सांसारिक वासनाओंके त्याग तथा सर्व प्रकारकी इच्छाके दूर करनेके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर पैंतालीस ४५ दिनतक सहस्र संख्यामें जपता हुआ मधु, त्रिमधु, कढ़ी, दूध, भिन्न २ प्रकारकी खिचड़ी खावें। अन्तमें यन्त्रको धारण करे।

(श्री यन्त्र लिखें)।

श्लोक नं० २३

स्रं

तेइसवें मन्त्रका प्रयोग—रोग, ऋण तथा पिशाच बाधा दूर करनेके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर १ एक महीनेतक नित्य ३००० तीन सहस्रात्मक जप पूजन घरमें करे। जौको दूधमें पका कर खाय।

(दो वृत्त १ भीतरके वृत्तमें १० कोण (दश दल) मध्यमें स्रं)

श्लोक नं० २४

न	शि	य	मः	वा
य	मः	वा	न	शि
वा	न	शि	य	मः
शि	य	मः	वा	न
मः	वा	न	शि	य

चौबीसवें मन्त्रका प्रयोग—प्रतत्व दोष दूर करनेके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बना १ एक मासतक नित्य १००० एक सहस्रात्मक जप करता हुआ मधु मिश्रित चनाकी रोटी और तिलके लड्डुओंका भक्षण करे।

(चतुष्कोण बीचमें चार लम्बी रेखा २५ कोष्ट हो गये। नमः शिवाय एक कोष्टमें एक-एक अक्षर)।

श्लोक नं० २५

सौः

पच्चीसवें मन्त्रका प्रयोग पदवी प्राप्त करनेके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र वनाकर १ मास १५ दिन नित्य १००० एक सहस्रात्मक जप करे। मधुका भक्षण करो।

(त्रिकोण मध्यमें शक्तिवीज)

श्लोक नं० २६

क्लीं क्लीं

छब्बीसवें मन्त्रका प्रयोग सर्वजन समुदायपर विजय प्राप्त्यर्थ है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर शुक्लपक्षकी षष्ठीको १००० एक हजार जप करे।

शत्रुपर बिजय प्राप्तिके लिये सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बना ६ दिन नित्य एक हजार जपे।

ताल खजूर खावे। (चतुष्कोण मध्यमें—२ काम बीज)

श्लोक नं० २७

ह्रीं

सत्ताईसवें मन्त्रका प्रयोग आत्मज्ञानकी प्राप्तिकारक है। स्वर्ण पत्रपर एक महीना १५ दिन नित्य १ हजार जपता हुआ ताल खजूरका भक्षण करे। (त्रिकोण मध्यमें वधुवीज)

श्लोक नं० २८

ठं

ठं

ठं

अट्ठाईसवें मन्त्रका प्रयोग अल्पमृत्यु निवारणार्थ तथा सर्व-सिद्धि प्राप्तिके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र १ एक महीना १५ दिनतक बनाकर नित्य १०००० एक हजार जप करे

त्रिमधु, खीर, पान, सुपारी खावे। चतुरस्त्र (चतुष्कोण) (मध्यमें तीन ठं लिखो)

ठं

श्लोक नं० २६

क्लीं

उन्तीसवें मन्त्रका प्रयोग पाशविक मनोवृत्तिके दूरी करणार्थ है।

या पशुवृत्तिवालोंको वश करना

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर पूजनकर १ एक महीना १५ दिन तक नित्य एक हजार जपकर यन्त्रको कलाईमें बांधें।

मधु काले चने या काले माषकी रोटी खावे।

(षट्कोण मध्यमें कामबीज)

श्लोक नं० ३०

ऊँ

तीसवें मन्त्रका प्रयोग आगका लांघना, अष्टसिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ३ महीने ६ दिनतक नित्य १००० एक हजार जपकर यन्त्रको मणिबन्धमें बांध ले।

मधु त्रिमधु पान सुपारी खावे।

(गर्भाशय यन्त्र मध्यमें प्रणव)

श्लोक नं० ३१

इकत्तीसवें मन्त्रका प्रयोग राजाओंमें मान प्रतिष्ठा प्राप्तिके लिये।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर १ एक महिना १५ दिनतक नित्य १ हजार जप करे।

दूध मधुका पान करे। (श्री यन्त्र)

श्लोक नं० ३२

ॐ थं ॐ

बत्तीसवें मन्त्रका प्रयोग रसायन तथा वैज्ञानिक प्रयोगोंकी सिद्धिके लिये है।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर १ मास १५ दिनतक १ हजार नित्य जप करे। काले चनेकी रोटी खावे।

अथवा—व्यापारिक सिद्धिके लिये।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र बना पूजन प्रतिष्ठादि कर डेढ़ मासतक एक हजार नित्य क्रमसे जपकर व्यापार स्थानपर यन्त्र लगा दें।

प्रयोगकालमें बेसनका मालपुवा खावे।

(दो रेखा तिर्छी दो सीधी मध्यमें)

ॐ यं ॐ

श्लोक नं० ३३

श्रीं

तेत्तीसवों मन्त्रका प्रयोग सम्पत्तिकी बृद्धिके लिये है।

सुवर्णके पत्रपर यन्त्र बनाकर डेढ़ महीनेतक नित्य सुवर्ण मुद्राको मुट्ठीमें बन्द करके एक हजार जप करे। हवनादि करने के बाद मृगके सिंगोंके बक्समें रखकर गाड़ देना।

चतुष्कोण मध्यमें रमाबीज

श्लोक नं० ३४

ह्री

चौंतीसवें मन्त्रसे बुद्धीका बढ़ना और कठ या रोगका दूर

होना। यह यन्त्र सोनेके पत्रेपर लिखना और ४५ दिनतक १००० मन्त्रका जप करना।

शहद काली मिरचको घीमें मिलाकर खावे।

त्रिकोण मध्यमें वधुबीज

श्लोक नं० ३५

क्षां क्षीं

क्षूं क्षुं

पैंतीसवें मन्त्रका प्रयोग राजयक्ष्माको दूर करनेके लिये है।

स्वर्ण पत्रापर मन्त्रा लिख १ महीना १५ दिनतक प्रति दिन १ हजार मन्त्राका जप करना।

शक्कर मधु दूध मठ्ठा पान करना।

वीणायन्त्र मध्यमें। क्षां क्षीं क्षूं क्षुं

श्लोक नं० ३६

दुं ठ

दुं ष

दु श

छत्तीसवें मन्त्रका प्रयोग असाध्य रोगको दूर करनेके लिये एक वर्तनमें जल रखकर यन्त्रा जलके अन्दर लिखाकर १५ दिन तक १ हजार मन्त्रजपता हुआ जल पीजाय।

अथवा—

स्वर्ण पत्रपर लिखाकर ४७ दिनतक नित्य १ हजार मन्त्र जप कर मन्त्रप्रक्षणित जल पी लेवे ।

काले चनेकी रोटी खाय चावल कालो मिरच मिलाकर खावे ।

बृत्ताकार मध्यमें तीन दुं दुं दुं, ठ ष श

श्लोक नं० ३७

र

सैंतीसवें मन्त्रका प्रयोग—ब्रह्मराक्षस बाधा दूर करनेको एक पात्रपर मन्त्र लिख जल डालकर १५ दिनतक नित्य ५ हजार मन्त्र जपकर जल अभिमन्त्रित करे। फल खजूर खोवा खावे।

शीर्षाकार ऊपर रं।

श्लोक नं० ३८

कं

अड़तीसवें मन्त्रका प्रयोग सांसर्गिक रोगोंको दूर करनेके लिये।

स्वर्ण पत्रपर यंत्र लिख कर १ महीना १५ दिनतक नित्य १ हजार मन्त्र जप करें।

काले चनेकी रोटी, नारियल, पान, सुपारी खावे।

इसी यन्त्रको जलमें भी चार दिनतक चार हजार नित्य जप करनेसे प्रयोग हो जाता है।

(बृत्त मध्यमें " कं ")

श्लोक नं० ३९

ठं पं पः

षं सं

उनचालिसवें मन्त्रका प्रयोग—दुष्ट स्वप्नके निवारणार्थ—

स्वर्ण या रजत पत्रपर यन्त्र लिख कर १२ दिनतक नित्य १०८ जपे। दूध, शहत, दही खावे।

(चतुरस्र मध्यमें) ठं पं पः षं सं

श्लोक नं० ४०

ठं

चालीसवें मन्त्रका प्रयोग—स्वप्न द्वारा कार्याकार्यकी सिद्धि जानना।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ४५ दिनतक नित्य १ हजार जप करें। यन्त्रको शिरहानेके नीचे गाढ़ देवे। शहत, दूध, फल, पान, सुपारी खावे।

(षट्कोण मध्यमें ठं)

श्लोक नं० ४१

यं

ह्रीं

इकतालीसवें मन्त्रका प्रयोग—अपच रोगोंके अजीर्ण दूर करनेके लिये।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिख नमकके जलमें छोड़कर ३० दिनतक नित्य १ हजार मन्त्रकी जप कर जल पीवे। शहतका भक्षण करें।

(चतुष्कोण मध्यमें) यं ह्रौं

श्लोक नं० ४२

रं रं

रीं रीं

बयालीसवें मन्त्रका प्रयोग—जलोदर रोग दूर करनेके लिये है—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ४५ दिनतक प्रति दिन १ हजार जप करे। जपान्तर धानके फूल व मिश्रीको पीवे।

(षट्कोण मध्यमें) रं रं रीं रीं

श्लोक नं० ४३

तेंतालीसवें मन्त्रका प्रयोग—सर्व वशीकरण।

स्वर्णकी अंगूठी पहिन कर स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ४० दिनतक प्रतिदिन ४ हजार जप करे। मधुका पान करे।

(चतुष्कोण मध्यमें रमाबीज)

श्लोक नं० ४४

क्ष्रीं

चौवालीसवें मन्त्रका प्रयोग—स्त्रियोंको जो ऊरुस्मारके समान रुदन कम्पन आदि होता है।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर १२ दिनतक नित्य १ हजार जप करे। खजूरकी खीर शहत मिला कर खावें।

किसी स्त्रीपर वशीकरण किया हुआ भी इस प्रयोगसे ठीक हो जाता है। (चतुष्कोण मध्यमें कामबीज)

श्लोक नं० ४५

सं

सं

सं

पैंतालीसवें मन्त्रका प्रयोग—भविष्य फल मूक प्रश्न बतानेके लिये है।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ४५ दिनतक नित्य १ हजार जप करे। त्रिमधु या शहत खावे।

(चतुष्कोण मध्यमें तीन सं सं सं)

श्लोक नं० ४६

ह्रों

छियालीसवें मन्त्रका प्रयोग—पतिको वशमें करना तथा गर्भस्राव या गर्भपातके स्तम्भनके लिये।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना कर ४५ दिनतक नित्य १ हजार जप करे। खीर शहतका भोजन करे।

(त्रिकोण मध्यमें वधूबीज)

श्लोक नं० ४७

ह्रौं

ह्रौं

ह्रौं

सैंतालीसवें मन्त्रका प्रयोग—दैवानुग्रह प्राप्त्यर्थ।

स्वर्ण पत्रपर हवनकी भस्मसे २५ दिनतक मन्त्र लिख प्रति दिन १ हजार जप करना। शहत नारियल खावे।

(चतुष्कोण मध्यमें ह्रौं ह्रौं ह्रौं)

श्लोक नं० ४८

बु	शु०	चं०
गु	सू०	मं०
रा	श	के

अड़तालीसवें मन्त्रका प्रयोग—दूसरेसे किये गये प्रयोगको रोकनेके लिये।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना कर ४५ दिनतक प्रति दिन १ सहस्र जप करें। खीर नाना प्रकारके पदार्थ भक्षण करे।

(चतुष्कोणमें नव कोष्ठ बनाकर मध्यमें सूर्य आग्नेयमें चं० दक्षिणमें म० नैऋत्यमें के पश्चिममें श वायव्यमें रा ईशानमें बु)

श्लोक नं० ४९

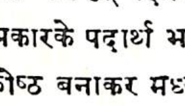

उनचासवें श्लोकका प्रयोग – भूमिमें दबे हुए धन निधिको प्राप्त करना।

शीशमके तेलमें हल्दी मिलाकर यन्त्र बनावें। भूरी आंखवाले २५ वर्षसे कम आयुके मनुष्यकी आंख पैरोंमें लगावे। १० दिन तक १ सहस्र जप करे। खजूर शहद खावे।

(चतुष्कोण मध्यमें दो टेढ़ी रेखा खींच कर ४ घर बना कर, (मक) यह प्रति कोष्टमें लिखे)

श्लोक नं० ५०

पचासवें मन्त्रका प्रयोग—बन्धनसे छूट जानेके लिये।

स्वर्ण पत्रपर जल या नवनीत द्वारा यन्त्र बनाकर ४ दिन १ सहस्र जप करे। नवनीतुको खावे। गोल खजूर शक्कर भोजन करे। मात्र इस आकृतिका यन्त्र बनावे।

श्लोक नं० ५१

क्लीं

क्लीं

क्लीं

इक्कावनवें मन्त्रका प्रयोग—सर्वमोहन तथा सर्व इच्छाओंकी पूर्त्तिके लिये।

सुवर्ण पत्रपर हवनकी भस्मसे यन्त्र लिख ४५ दिनतक नित्य १ सहस्र जप करे। शिरपर बालू लगावे। काले चनेके मालपुवे शहत खावे।

(लम्बा चतुरस्र मध्यमें तीन कामबीज)

श्लोक नं० ५२

रं

बावनवें मन्त्रका प्रयोग—नेत्र या कर्ण रोगको दूर करनेके लिये। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना कर ४५ दिनतक नित्य १ सहस्र जप करे। खीरका भोजन। (पूर्ण चतुरस्र मध्यमें रं)

श्लोक नं० ५३

ह्रीं

तिरपनवें मन्त्रका प्रयोग—चक्षु रोग निवारणार्थ। सुवर्ण पत्रपर पुष्पोंसे यन्त्र बना कर दीपक जलावे। १ दिन तीन सहस्र जप कर चनेके मालपुवे और खीर खावे।

(त्रिकोण मध्यमें वधूबीज)

श्लोक नं० ५४

चौवनवें मन्त्रका प्रयोग—नपुंसकता क्षीणता दूर करनेके लिये। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिख ४५ दिनतक नित्य जलको १ सहस्र संख्यासे मन्त्र कर पी लेवे। भोजन खजूरको खीर।

(दो वृत्त बाहरके वृत्तका मुख खुला रहे।

श्लोक नं० ५५

ब्लूं

ब्लूं

पचपनवें मन्त्रका प्रयोग—जलोदर रोग दूर करनेके लिये।

सुवर्ण पत्रपर यन्त्र आमलकी की कलमसे लिखे ४५ दिनतक नित्य २५०० जप करे। खीर, पान, सुपारी खावे।

चतुरास्र मध्यमें ब्लूं ब्लूं।

श्लोक नं० ५६

O

छप्पनवें मन्त्रका प्रयोग—भागे हुए मनुष्यको बांध कर वश करनेके लिये। स्वर्ण पत्र या मगरके दांत या खोपड़ीपर यन्त्र बनाकर ४५ दिन तक नित्य २० हजार जप करे। भोजनमें शहद ग्रहण करे।

अधवृत्त नीचे (O) बिन्दु

श्लोक नं० ५७

श्रीं

श्रीं

सत्तावनवें यन्त्रका प्रयोग—सर्व सम्पत्ति प्राप्तार्थ। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ४५ दिनतक नित्य १ सहस्र जप करे। दूध, शहत, खीर खावे।

(चतुरस्र मध्यमें २ रमाबीज)

श्लोक नं० ५८

क्रौं

क्रौं क्रौं

क्रौं

क्रौं क्रौं

क्रौं

अट्ठावनवें मन्त्रका प्रयोग—पुरुष वशीकरणके लिये। स्वर्ण पत्रपर या कर्ण भूषणपर लिख ५ दिनतक नित्य १ हजार जप कर

आभूषण पहिन लेना। राज वशीकरणके लिये ४५ दिनतक जप करें। तिलक अभिमन्त्रित कर लगावे। खीर खावे।

(षट्कोण प्रत्येक कोणमें कामबीज)

श्लोक नं० ५६

ऐं

क्लीं

सौः

उनसठवें मन्त्रका प्रयोग —वशीकरण। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिख ४५ दिनतक नित्य १ सहस्र जप करे। मालपुवे खावे।

(चतुरस्र मध्यमें ऐं क्लीं सौं ?

श्लोक नं० ६०

श्रीं

साठवें मन्त्रका प्रयोग —स्मरण शक्ति बढ़ानेके लिए।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना ४५ दिनतक नित्य १ सहस्र जपकर मधु फल खावे।

(त्रिकोण मध्यमें रमाबीज)

श्लोक नं० ६१

ह्रीं

इकसठवें मन्त्रका प्रयोग—पुरुषको वशमें कर अपनी इच्छा पूरी करना। इस यन्त्रको आभूषणकी तरह धारण कर ८ दिन तक नित्य १ सहस्र जपना। नारियल सब प्रकारके फल खावे!

(त्रिकोण मध्यमें वधुबीज)

श्लोक नं० ६२

मं

मं

मं

साठवें मन्त्रका प्रयोग—निद्रा भंग दोल निराकरणार्थ।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना ८ दिनतक नित्य ८ सहस्र जप कर शिरहाने रख दे। मालपुआ खावे।

(चतुष्कोण मध्यमें मं मं मं)

श्लोक नं० ६३

ह्रीं

तिरसठवें मन्त्रका प्रयोग—नियमवद्धता प्राप्त करनेके लिये।

स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना मन्त्र लिखकर ३० दिनतक ३०००० तीस हजार नित्य जप करे। नारियल फल खावे।

(चतुष्कोण मध्यमें वधुवीज)

श्लोक नं, ६४

श्रीं

श्रीं श्रीं

क्लीं

श्रीं श्रीं

श्रीं

चौसठवें मन्त्रका प्रयोग—वशीकरण तथा जननेन्द्रियकी व्यथा दूर करनेके लिये। कुंकुमसे स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर

नासिकापर धारण करना। १८ दिनतके नित्य १०००० जप करे। खजूरकी खीर शहद खावे।

(षट्कोण प्रत्येक कोणमें रमाबीज मध्यमें कामबीज)

श्लोक नं० ६५

ह्रीं श्रीं ह्रीं

श्रीं क्लीं श्रीं

ह्रीं ह्रीं

श्रीं श्रीं

ह्रीं

पैंसठवें मन्त्रका प्रयोग—सर्वजन वशीकरण। स्वर्ण पत्रपर श्री यन्त्रको लिख कर ४५ दिनतक नित्य १ हजार जप करना। शहद खाना।

(षट्कोण बाहरसे बृत्त प्रत्येक कोणमें रमा फिर दूसरेमें बधु इस प्रकार प्रत्येक कोणमें लिखे। मध्यमें कामबीज)

श्लोक नं० ६६

श्रीं

श्रीं

श्री

छियासठवें मन्त्रका प्रयोग—संगीत शास्त्र परिक्षणार्थ। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर ४५ दिनतक प्रतिदिन १ हजार मन्त्रका जप करना। खजुर शहत खाना।

(लम्बी दो रेखाका चतुष्कोण मध्यमें तीन रमाबीज)

श्लोक नं० ६७

क्लीं

क्लीं

क्लीं

सड़सठवे मन्त्रका प्रयोग—राज्यको अपने पक्षमें लाना। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर ४५ दिनतक नित्य १ हजार जप करे। साधक तथा साध्यका नाम लिखना। खीर, पान, सुपारी, शहद खाना।

(चतुष्कोण यन्त्र मध्यमें तीन काम बीज)

श्लोक नं० ६८

ह्रीं

अड़सठवें मन्त्रका प्रयोग—स्वर्ण पत्रपर श्री यन्त्र लिखना। ४५ दिनतक १ सहस्र जप करना। पान सुपारी भोजन। राज-वशीकरण है।

(त्रिकोण प्रत्येक कोणमें त्रिशूल मध्यमें वधूबीज)

श्लोक नं० ६९

क्षं

मूं

उनहत्तरवें मन्त्रका प्रयोग—स्त्री वशीभूत करणार्थ। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर ४५ दिन नित्य १ सहस्र जप करें। जपान्त में चम्पाका पुष्प स्त्रीको दे। नारियल खावे।

(अर्द्ध चतुरात्र मध्यमें क्षं मूं)

श्लोक नं० ७०

क्लीं

श्रीं

सत्तरवें मन्त्रका प्रयोग—पुरुष वशीभूत करनेके लिये है। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर ४५ दिनतक नित्य १ सहस्र जप करे। नारियल खावे।

(चतुष्कोण मध्यमें कामबीज रमाबीज)

श्लोक नं० ७१

क्लीं क्लीं

श्रीं

श्रीं श्रीं

क्लीं

क्लीं क्लीं

श्रीं श्रीं

क्लीं

इकहत्तरवें श्लोकका प्रयोग—सौन्दर्य प्राप्तिके लिये है। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर अश्वत्थ वृक्षके नीचे बैठ ६० दिनतक नित्य १२ हजार जप करे। भोजन शहत।

(पञ्चकोण बाहरमें वृत्त ग्यारह कोष्ट हो काम रमा काम रमा काम रमा काम रमा काम इस प्रकार बीजनाम लिखे)

श्लोक नं० ७२

समं देवि

क्लीं

ह्रीं

बहत्तरवें मन्त्रका प्रयोग—रात्रिमें होनेवाले निर्विघ्न यात्रा करना। यह यन्त्र यष्टिका या स्वर्ण पत्रपर लिखकर ४५ दिनतक नित्य १ हजार जपें। शहत खावे।

(त्रिकोण मध्यमें समं देवि क्लीं ह्रीं)

श्लोक नं० ७३

ह्रां

तिहत्तरं मन्त्रका प्रयोग—स्त्रियोंके व गौ के दूधको बढ़ानेके लिये। स्वर्ण पत्र या जलमें यन्त्र लिखकर ७ दिनतक नित्य १ हजार जपकर जल पिला दे। भोजन दूध शहत।

(चतुष्कोण मध्यमें वधूबीज)

श्लोक नं० ७४

ऐं

क्लीं

सौः

चहत्तरवें मन्त्रका प्रयोग—प्रशंसाका विस्तार करना। भगवतीके सामने बैठ सुवर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ४५ दिनतक नित्य १०८ मन्त्र जपना। खीर शहत भोजन करे।

(त्रिकोण मध्यमें वाग्भव काम शक्तिबीज)

श्लोक नं० ७५

ऐं

ऐं क्लीं

सं

क्लीं सौः

सौः

पचत्तरहवें मन्त्रका प्रयोग—स्त्रियोंके स्तन रोग निवृत्यर्थ तथा दुग्ध वृद्धि। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर ३ दिनतक १२००० हजार नित्य जप करे। फल शहत भोजन।

(षट्कोण ऊपरमें वाग्भव कामशक्ति काय वाग्भव इस प्रकार बीजाक्षर लिखे मध्यमें सं)

श्लोक नं० ७६

क्लीं

छिहत्तरवें मन्त्रका प्रयोग—मनुष्योंपर प्रभाव डालना। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र लिखकर १२ दिनतक नित्य १ हजार जप करना। नारियल भात फल वृत्त। (अष्टकोण वृत्त मध्यमें क्लीं)

श्लोक नं० ७७

क्लीं

सतत्तरहवें मन्त्रका प्रयोग—राज्य-सत्ताको स्वानुकूल करना। लाल कमलपर कोयला व घी मिलाकर यन्त्र व मन्त्र दोनोंको लिखे। १५ दिनतक नित्य २००० हजार जप जपान्तमें या कार्यपर उसका टीका लगावे। भोजन फल शहत।

(त्रिकोण मध्यमें क्लीं)

श्लोक नं० ७८

ह्रीं

अठत्तरहवें मन्त्रका प्रयोग—राज्य कृपा व सर्वप्रकारकी सफलता प्राप्त्यर्थ। लाल वर्णके चन्दनको गुलाब जलमें मिला कर घिसना। यन्त्र बना ४५ दिनतक नित्य १ हजार जपना, तिलक करना। चनेकी रोटी शहत भोजन।

(त्रिकोण मध्यमें ह्रीं)

श्लोक नं० ७९

क्लीं

सर्वजन मोहनम्

उन्नहत्तरवें मन्त्रका प्रयोग—इन्द्रजाल मदारीका खेल हाथकी चालाकी। स्वर्ण पत्रपर ४५ दिनतक १ हजार नित्य जप करे। भोजन खीर, फल शहत।

(अर्द्ध वृत्त ० ० ० ० ० ० इस प्रकार मध्यमें क्लीं)

श्लोक नं० ८०

शं लं रं श्रीं

ह्रीं

क्लीं यं ऐं सौः

हस्त चमत्कारके लिये क्रीड़ा कौतुक। स्वर्ण पत्रपर ४५ दिनतक १ सहस्र नित्य जप करे। भोजन शहद।

(अष्टकोण मध्यमें वधुबीज बाहरसे शं लं रं श्रीं सौ ऐं यं क्लीं आठ कोणमें लिखे।

श्लोक नं० ८१

ह्रीं

अग्नि स्तम्भन—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना आग्नेयको मुख कर १६ दिनतक नित्य १००० जप करे। भोजन, खीर, खजूर, चनेके गुलगुले। (शिरका चिन्ह ॐ मध्यमें वधुबीज)

श्लोक नं० ८२

दुं

हं ॐ लं

ह्रीं

सं मं

यां

जल स्तम्भनार्थ—भूर्ज पत्रपर या पादुकापर यन्त्र बनाकर ४५ दिनतक नित्य १००० अश्वकर्ण बृक्षके नीचे बैठ कर जप करे। भोजन नारियल फल शहत।

(षट्कोण मध्यमें ॐ ह्रीं दुं लं मं यं सं हं)

श्लोक नं० ८३

ॐ

सुं

ॐ

तिरासीवें मन्त्रका उपयोग—सामुद्रिक यात्रामें रक्षार्थ। स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना १२ दिनतक नित्य १००० जप करना। लाल कार्पास पुष्पोंसे पूजन करना। भोजन खजूर शहत।

(चतुष्कोण यन्त्र ज्ध्यमे ॐ सुं ॐ)

श्लोक नं० ८४

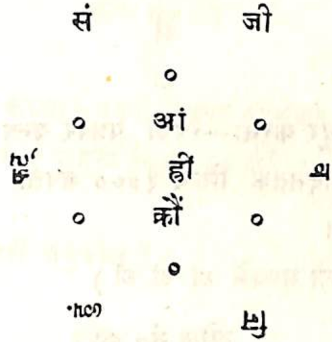

चौरासीवें मन्त्रका प्रयोग—परकाय प्रवेशनार्थ। स्वर्ण पत्रपर ३६५ दिनतक नित्य १ हजार जप करता हुआ यन्त्र बनावें। भोजन खीर, शहत, चावलोंका भात।

(द्वादश दल मध्यमें दलोंमें आं ० जी ० व ह्रीं ० नि० हुं क्रौं ० फट् ० सं०)

श्लोक नं० ८५

रं रं
रं रं
रं रं

भूत पिशाचोंका द्रावण—स्वर्ण पत्रपर आठ प्रकारके पुष्पोंसे पूजन करता हुआ यन्त्र बना जप करें। १२ दिनतक १००० नित्य करे भोजन शहत खीर खजूर।

(चतुरस्र मध्यमें रं रं रं रं रं रं)

श्लोक नं० ८६

यां

यां

यां

ब्रह्म राक्षस दूर करना—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना एक जलके घड़ेपर मन्त्र २१ दिनतक नित्य १००० जपता हुआ स्नान करे। भोजन नारियल।

(चतुरस्र यन्त्र मध्यमें यां यां यां)

श्लोक नं० ८७

ह्रीं

सर्प सर्प

मं

सर्पको बुलानेके लिये—श्मशानकी विभूति या चन्दनके चूरे से यन्त्र बनाकर १६ दिनतक नित्य १००० जप करना। भोजन खीर, फल, शहत।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ह्रीं सर्प सर्प मं)

श्लोक नं० ८८

ह्रीं ह्रीं

ह्रीं

पशुओंको बुलानेके लिये—स्वर्ण या रौप्य पत्रपर यन्त्र बना कर १०८ दिनतक नित्य १००८ जप करे। भोजन—खीर, फल, नारियल।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें तीन वधुबीज)

श्लोक नं० ८९

ह्रीं

रोगको शमन करना—स्वर्ण पत्रपर हवनकी विभूतिसे यन्त्र बनाकर ३० दिनतक १ सहस्र नित्य जप करे। भोजन खजूरकी खीर शहत।

(त्रिकोण मध्यमें वधुबीज)

श्लोक नं० ९०

क्षां क्षां

क्षीय क्षीयं

ह्रीं

अभिचार "जादू" को लौटाना—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर ३० दिनतक नित्य १००० जप करे। भोजन खीर, फल, शहत।

(चतुष्कोण मध्यमें क्षां क्षां क्षीय क्षीय ह्रीं)

श्लोक नं० ९१

ॐ ह्रीं

ह्रीं ह्रीं

भूमि व सम्पत्तिपर अधिकार—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र व मन्त्रको ४५ दिनतक नित्य १००० जप करे। भोजन क्षीरान्न।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक नं० ६२

ॐ ह्रीं

ह्रीं

ह्रीं

आधिपत्य प्राप्त करना व भूत बाधा निवारण—स्वर्ण पत्रपर हवनकी विभूतिसे यन्त्र बनाकर ४५ दिनतक नित्य २००० जप करे। सब प्रकारके चावल, दूध, फल, पान, सुपारी भक्षण करे।

(त्रिकोण मध्यमें ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक न० ६३

ॐ ह्रीं

ह्रीं

ह्रीं

संकलित कार्योंकी सिद्धि—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना कर ४५ दिनतक नित्य १००० जप करे। भोजन शहत।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक नं० ६४

ॐ ह्रीं

ह्रीं

ह्रीं

कामनाओंकी सिद्धि—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बना ४५ दिनतक नित्य २००० जप करे। भोजन नारियलकी मिठाई।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक नं० ६५

ॐ

ह्रीं

व्रण नासूर विधृतिको शमन करना—-वर्ण पत्रपर शीशमके तेलसे यन्त्र बनाकर ३ दिनतक नित्य १०८ बार जपं कर तेलको व्रणके स्थानपर लगावे। भोजन साठी चावल खजूर।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ॐ ह्रीं (

श्लोक नं० ६६

क्लीं

क्लीं

क्लीं

अध्यनमें सफलता प्राप्ति श्वेत मन्दार " आंक " की लकड़ी पर यन्त्र बनाकर सिरपर धारण करे।

(त्रिकोण मध्यमें क्लीं क्लीं क्लीं)

श्लोक नं० ६७

ह्रीं

शारीरिक ओज व बलकी वृध्यार्थ—स्वर्ण पत्र या ताम्रपत्र अथवा जलमें यन्त्र बनाकर ८ दिनतक नित्य १००० वार जपे। भोजन चावल शहत।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ह्रीं)

श्लोक न० ९८

ह्रीं

रोग निर्मुक्तिके बाद. बल स्फुर्ति प्राप्त्यर्थ—स्वर्ण पत्रपर हवनकी विभूतिसे ४८ दिनतक नित्य २००० जप करे। भोजन शहत।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ह्रीं)

श्लोक नं० ९९

ह्रीं

धैर्य शौर्य पुराक्रम वृद्धिके लिये—स्वर्ण पत्रपर यन्त्र बनाकर १६ दिनतक नित्य १००० जपे। भोजन त्रिमधु, चनेके गुलगुले।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ह्रीं)

श्लोक नं० १००

ॐ

प्रीं

अभीष्ट कार्यकी सिद्धि—स्वर्ण पत्रपर ४५ दिनतक कुल १००००० एक लाख जप करे। भोजन फल गोला।

(त्रिकोण यन्त्र मध्यमें ॐ ह्रीं)

———

संक्षिप्त नित्य पूजा-प्रणाली

१—भूमि शुद्धि—अर्थात्—पूजा स्थानको 'हूँ' मन्त्रका स्मरण कर देखे और 'फट्' मन्त्रका स्मरण कर जलसे स्थानको सिंचन करे। तदनन्तर भूमि दोष निवारणार्थ उस स्थानपर क्लीं लिखे।

२—गुरु एव इष्ट देवताका ध्यान।

३—आचमन।

४—पद्मासन बांधकरआसनपर बैठे।

५—पूजा-सामग्री—सामने दाहिनी ओर रखे। धूप, दीपादि पञ्चोपचार वा षोड़शोपचार पूजनकी सामग्री।

६—देवताकी बाईं ओर तेल और दाहिनी ओर घीका दीपक प्रज्ज्वलित करे।

भूत शुद्धि—यह पांच तत्वोंका शरीर स्वभावसे ही सदा अपवित्र है। अतएव उसकी शुद्धताके लिये वायु (यं) और जल (वं) के अक्षरों (बीजों)से तथा चन्द्र (ठं) एवं भूमि (लं) बीजसे उसका शोषण, दाहन, भस्म प्रोत्सारण, अमृत वर्षाण और अप्लावन पूरक तथा कुम्भकसे करे।

हृदयमें मध्यमा, अनामिका और तर्जनीसे, सिरमें मध्यमा और तर्जनीसे, शिखामें अंगुष्ठसे, कवचमें दसों अंगुलियोंसे, नेत्रोंमें तीन अंगुलियों और अस्त्रमें दो अंगुलियोंसे न्यास करे। (तीनसे तर्जनी मध्यमा और अनामिकासे अभिप्राय है)

— हृदय-कमलमें स्थित देवीका मानसिक उपचारोंसे यथा-

विधि पूजन करे। तदनन्तर जप होमादि (मानसिक) करे। पश्चात् देवीका आवाहन हाथमें फूल लेकर इस मन्त्रको पढ़ता हुआ सामने रखे।

"एह्ये हि भगवत्यम्ब भक्तानुग्र विग्रहे।
योगिनीभि: सह देवि रक्षाथ मम सर्वदा॥
देवेशि भक्ति सुलभे परिबार समन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्वं सुस्थिरष्ट भव॥"

७—(क) प्राण-प्रतिष्ठा—शालग्राम शिलामें, मणिमें, अग्नि में, मनमें और पुष्पमें तथा प्राण-प्रतिष्ठा की हुई मूर्त्तियोंमें—इन सबमें आवाहन नहीं होता क्योंकि इनमें देवता सदैव विराजमान रहते हैं। " मूलं अमुक द्रव्यं अमुकी देव्यै नमः " इससे देवीकी पूजा करे। देवीके चरणोंमें, आधार-पद्म, नाभि कमल, वक्षस्थल, मस्तक—इन पाँच स्थानोंमें देवीको पाँच और दोनों चरण-कमलोंमें तीन पुष्पांजलियाँ प्रदान करे (दोनों हाथोंसे)। अंगुष्ठ और अनामिका युक्त कर उसके द्वारा देवताके मुखमें मूल मन्त्रसे तोन बार तर्पण करे!

देवीका मुख दक्षिण दिशाको ओर होना चाहिये (दक्षिणको ही पूर्व मान कर सब दिशाओंका निर्दिष्ट होना चाहिए)।

प्राण-प्रति ष्ठा— प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र इस प्रकार कहा है—'आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हसः—अमुकि देव्या प्राण इह प्राणाः आं ह्रीं क्रों यं रं लं व शं प सं हों हंसः—अमुकि देव्याः जीव इह स्थितः। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं प सं हां हंसः—अमुकि

देव्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्रणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।' इस मन्त्रसे प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजा आरम्भ करे। देवताका नामोल्लेख कर सभी देवताओंको प्राण-प्रतिष्ठा इस मन्त्रसे करे। जिस देवताको साधक पूजा करता हो, उस देवताके कल्पके अनुसार मुद्रा प्रदर्शित कर क्रमसे षोडश उपचारोंसे देवीका पूजन करे और उसके बाद देवीकी आज्ञा लेकर परिवारगणका पूजन करे। इसके बाद अष्टोत्तरशत अथवा अष्टोत्तर सहस्र मन्त्रका जप कर हुतशेषको यन्त्रपर अर्पण करे। इसके बाद पूर्णाहुति प्रदान कर होमकुम्भके जलसे यन्त्रका अभिषेक करे। इसके बाद गुरुको दक्षिणा देकर सहार मुद्रासे देवीका विसर्जन करे।

पूजाके उपचार—आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, स्नानीय, वसन, उपवीत' भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, तर्पण, माला, अनुलेपन एव नमस्कार—इन अट्ठारह उपचारोंसे मन्त्रज्ञ पूजा करे। तन्त्रमें लिखा है—आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय' स्नानीय, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य एवं वन्दन—ये सोलह उपचार हैं। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप व नैवेद्य—ये दस उपचार हैं। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप व नैवेद्य—ये पांच उपचार हैं।

तत्पश्चात् यह ध्यान करता हुआ प्रार्थना करे।

अज्ञानद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यान् साधनस्य च।

यन्न्यून मतिरिक्तं वा तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाभक्ति विवर्जितं।
तत् सर्वं कृपया देवि क्षमस्व त्वं दयानिधे ॥
यन्मया क्रियते कर्म महद्वा स्वल्पमेव च।
तत्सर्वं च जगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमंजलि ॥

८—कामनायुक्त कवचादि पाठ पढ़े।

६—सहस्रनाम पाठ।

१०—समाप्तिपर नीराजन, पुष्पांजलि प्रदक्षिणा, प्रणाम तब यह क्षमापन पढ़े। प्रदक्षिणा, नमस्कार तब विसर्जन करे।

११—जप—साधक क्रमसे पहले महासेतु, सेतु, कुल्लुका और तब अपने मन्त्रका जप करे। त्रिपुरा सुन्दरीका महासेतु 'ह्रीं' सेतु "ह्रीं सौं ह्रीं", कालिकाका 'क्रीं', ताराका 'हूं' और 'ॐ ह्रीं', भुवनेश्वरीका "ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ"। 'त्रिपुराका कुल्लुका 'ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवती स्वाहा'. अथवा 'क ए ईल ह्रीं' अथवा 'ऐं क्लीं हूं फट्', ताराकी कुल्लुका 'क्लीं श्रीं हूं' है। छिन्नमस्ताकी कुल्लुका वज् वैरोचनीय हूं। शेष देवी-देवताओंको प्रणवसे।

१२—मुख शोधन—त्रिपुराके उपासकको 'श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ' और भुवनेश्वरीका 'ऐं ऐं ऐं इन मन्त्रोंसे १० बार जप करनेसे मुख शुद्धि होती है। ताराका 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं'।

जपान्ते शुद्धमाला च आम्नाय स्तोत्रमुत्तमम्।
ललिता नाम साहस्रं सर्व पूर्ति करं स्तवम् ॥

हवन—

वन्दे गुरुपद द्वन्द मवाङ्नसगोचरम्।
रक्त शुक्ष्म प्रभामिश्र मतर्क्यं त्रिपुरे महः॥

कुण्ड या भूमि शोधन—

इन मन्त्रोंसे "आं ऐं ह्रीं—श्री ऐं क्लीं सौं:"—ब्रह्मणे नमः

७	यमाय नमः
७	सौमाय नमः
७	इन्द्राय नमः
७	विष्णवे नमः
७	इन्द्राय नमः

पीठ शक्ति पूजन

७	पीताय नमः
७	श्वेताय नमः
७	अरुणाय नमः
७	कृष्णाय नमः
७	धूम्रप्राय नमः
७	तीव्राय नमः
७	स्फुलिङ्गिनी नमः
७	रुचिरामै नमः
७	ज्वालिन्यै नमः

पीठ मध्ये

इन मन्त्रोंसे "आं ऐं ह्रीं—श्री ऐं क्लीं सौं:"—ब्रह्मणे नमः

७ तं तमसे नमः

७ रं रजसे नमः

७ सं सत्वाय नमः

७ आं आत्मने नमः

७ ॐ अन्तरात्मने नमः

७ पं परमात्मने नमः

७ ज्ञानत्मने नमः

त्रिकोणे

७ ॐ ओं ह्रीं वागीश्वरी वागेश्वराभ्यां नमः

अग्नि प्रज्वालन

७ ओं रं वैश्वानर जातवेद् यावह लोहिताक्ष सव कर्माणि साधय स्वाहा।

अग्नि प्रज्वलितं वन्दे आतवेदऽहुतासन।
सुवर्ण वर्ण ममलं समिद्धं विश्वनो मुखम्॥

ह्रीं इस मन्त्रसे कुण्डपर तीन बार आगको घुमा कर रख देना।

७ "चितपिंगल हन् हन् दह दह पच पच सवज्ञां ज्ञापय स्वाहा।"

इस मन्त्रसे अग्निको जलाना।

७ ऐं नमः अस्य अग्ने गर्भाधान पुंसवन कर्म सीमन्तो

न्नयन कर्म जात कर्म ललिता अग्नि इति नाम्ना नाम करण कल्पयामि नमः ।

आद्याराहुति

ॐ ओं प्रजापतये नमः ओं प्रजापतये ।

ॐ ओं इन्द्राय नमः इदं इन्द्राय ।

ॐ ओं भूग्नेये स्वाहा भुक्तः सोमाय स्वः वायव्यै स्वाहा ।

अग्नि पूजन (अष्ट कोणोंमें अक्षत डाल कर)

७ सप्त जिह्वाय नमः

७ हव्यवाहाय नमः

७ अज्त्रोदराय नमः

७ वेंस्वानराय नमः

७ कौमारतेजसे

७ विश्वमुखाय

७ देव मुखाय—आहुतिपश्चात् ।

इन मन्त्रोंसे तीन-तोन आहुति देनी ।

७ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा इदं अग्नये ।

७ उत्तिष्ठ पुरुषः, हरितपिङ्गल, लोहिताक्ष, सर्वाणि कर्माणि, साधय स्वाहा इदं अग्नये ।

श्री चित्त पिंगल हन् हन् दह दह पच पच सर्वाज्ञा ज्ञापय स्वाहा, इदं अग्नये ।

"ओं ऐं ह्रीं श्रीं हस्रौं हस्क्लीं हस्रौः" इस मन्से गन्धाक्षत पुष्पादिसे हवन कुण्डमें करे।

ओं ऐं ह्रीं श्रीं गणपति मन्त्रसे ३ बार मूळ मन्त्र श्री ललिता महा त्रिपुर सुन्दर्यै स्वाहा.

अपने मूल मन्त्रसे यथा संख्या हवन करे।

पुर्णाहुति-हवन

भू स्वाहा

भुवः स्वाहा

भूर्भुवः स्वाहा

मूलेन पुर्णाहुति

आरती करना—सदीप दिक्पाल क्षेत्रपालवली मूल-यन्त्रसे।

प्रार्थना—आयुः प्रजा रइ रश्मा सुदेहि अजस्रो दीदिहिनो हुतेशे।

नमस्ते गार्हपत्याय नमस्ते दक्षिणाग्नये।
नमो आहवनीयाय महावेद्यै नमो नमः॥

कुण्डलिनी उत्थान

जागो जगदाधार ! मैया जागो जगदाधार॥
साधो मन के तार। मैया जागो जगदाधार॥ टेक०
जप तप जोग, कछु नहीं जानू, सुषुम्ना सूक्ष्म विचार। टेक०
कुल कुण्डलिनी, कुण्डली शिवको, सार्ध त्रिवलयाकार। टेक०
विद्यु लेखा, विष तन्तुसम, सुप्त भुजंगी प्रकार। टेक०
दिव्य त्रिकोणे, कोटि तड़ित सम, आभा भानु अपार। टेक०
मूल महीं वं शं षं सं मा ! गणपति मूलाधार। टेक०
बं भं मं यं रं लं ब्रह्मा, स्वाधिष्ठान विचार। टेक०
रं मणिपूरे, विष्णू माया, अग्नि त्रिकोणाकार। टेक०
डं ढं णं तं थं दं धं नं, पं फं बीज प्रकार। टेक०
षट्कोणे, शिवरूप विराजो, अनहद नाद अपार। टेक०
कं खं गं घं ङं, चं छं जं, झं ञं टं ठं बार। टेक०
हं सः सोहं हंस स्वरूपी, वेद विशुद्धि विचार। टेक०
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं, अर्धे अष्ट अपार। टेक०
ऌ ॡ एं ऐं ओं औं अं अः, षोडश मात्रा सार! टेक०
हं क्षं हसौं सकल तू साधे, त्रिवेणी में तार। टेक०
अर्ध मात्र रही, अन्तर आत्मा, करुणा का करतार। टेक०
शुभ ज्योतिमय, हंस युगलयुत, पंकज पत्र हजार। टेक०
लुप्ताक्षर मण्डप मणि मञ्चय, श्री गुरु श्वेत शृङ्गार। टेक०

परमात्मा, गुरुनाथ परम शिव, वरध अभय धरनार। टेक०
शिव वामांके शक्ति विराजो, रक्त कमल को धार। टेक०
शुक्ल रक्त मणि, रत्न पादुका, महिमा अपरम्पार। टेक०
शिव शक्ति पद पंकज बरसे, स्नेह सुधा की धार। टेक०
अभिषेके इनके जय पावे, शिवपद जिव निरधार।

श्रीयुत ठाकोर साहब जयवन्त सिंहजी,

सानन्द (अहमदाबाद) द्वारा सहर्ष प्राप्त।

---

* श्री गणेशाय नमः *

ललितासहस्रनाम

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुर-
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ॥
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम् ॥

तापिनी कला

श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी । चिदग्निकुण्डसंभूता देवकार्य समुद्यता
उद्यद्भानुसहस्राभा चतुर्बाहुसमन्विता । रागस्वरूपपाशाढ्या क्रोधाकारांकुशोज्ज्वला
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका । निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला
चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचा । कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डिता
अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता । मुखचन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषका
वदनस्मरमांगल्यगृहतोरणचिल्लिका । वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना
नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजिता । ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरा
कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णापूरमनोहरा । ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डला
पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभूः । नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिरदनच्छदा
शुद्धविद्यांकुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्ज्वला । कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षिदिगन्तरा
निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी । मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसा

अनाकलितसादृश्यचिबुकश्रीविराजिता । कामेशबद्धमांगल्यसूत्रशोभितकन्धरा
कनकाङ्गदकेयूरकमनीयभुजान्विता । रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्विता
कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तनी । नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वयी
लक्ष्यरोमलताधारताशमुन्नेयमध्यमा । स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया
अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतटी । रत्नकिङ्किणिकारम्यरशनादामभूषिता
कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्विता । माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजिता
इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजङ्घिका । गूढगुल्फा कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्विता
नखदीधितिसंछन्ननमज्जनतमोगुणा । पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहा
सिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डितश्रीपदाम्बुजा । मरालीमन्दगमना महालावण्यशेवधिः
सर्वारुणाऽनवद्याङ्गी सर्वाभरणभूषिता । शिवकामेश्वराङ्कस्था शिवा स्वाधीनवल्लभा
सुमेरुश्रृङ्गमध्यस्था श्रीमन्नगरनायिका । चिन्तामणिगृहान्तस्था पञ्चब्रह्मासनस्थिता
महापद्माटवीसंस्था कदम्बवनवासिनी । सुधासागरमध्यस्था कामाक्षी कामदायिनी
देवर्षिगणसंघातस्तूयमानात्मवैभवा । भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्विता
संपत्करीसमारूढसिंधुरव्रजसेविता । अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृता
चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृता । गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेविता
किरिचक्ररथारूढदण्डनाथपुरस्कृता । ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगा
भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षिता । नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुका
भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दिता । मन्त्रिण्यम्बाविरचितविषङ्गवध तोषिता
विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दिता । कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा
महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षिता । भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिणी
करांगुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः । महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिका
कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यका । ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवा

हरनेत्राग्निसंदग्धकामसञ्जीवनौषधिः । श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा
कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी । शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी
मूलमन्त्रात्मिकामूलकूटत्रयकलेवरा । कुलामृतैकरसिका कुलसंकेतपालिनी
कुलाङ्गना कुलांतस्था कौलिनी कुलयोगिनी । अकुला समयांतस्था समयाचारतत्परा
मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी । मणिपूरांतरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी

धूम्रिका कला

आज्ञाचक्रांतरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी । सहस्रारम्बुजारूढा सुधासाराभिवर्षिणी
तडिल्लतासमरुचिः षट्चक्रोपरि संस्थिता । महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी
भवानी भावनागम्या भवारण्यकुठारिका । भद्रप्रिया भद्रमूर्तिर्भक्तसौभाग्यदायिनी
भक्तप्रिया भक्तिगम्या भक्तिवश्या भयापहा । शांभवी शारदाराध्याशर्वाणीशर्मदायिनी
शांकरी श्रीकरीसाध्वी शरच्चंद्रनिभानना । शांतोदरी शांतिमती निराधारा निरञ्जना
निर्लेपानिर्मलानित्या निराकारा निराकुला । निर्गुणा निष्कला शान्तानिष्कामानिरुपप्लवा
नित्यमुक्ता निर्विकारानिष्प्रपञ्चा निराश्रया । नित्यशुद्धानित्यबुद्धानिरवद्या निरन्तरा
निष्कारणा निष्कलङ्का निरुपाधिर्निरीश्वरा । नीरागा रागमथनी निर्मदा मदनाशिनी
निश्चिन्तानिरहंकारानिर्मोहामोहनाशिनी । निर्ममाममताहन्त्रीनिष्पापापापनाशिनी
निष्क्रोधाक्रोधशमनीनिर्लोभा लोभनाशिनी । निःसंशयासंशयघ्नीनिर्भवाभवनाशिनी
निर्विकल्पानिराबाधानिर्भेदाभेदनाशिनी । निर्नाशामृत्युमथनी निष्क्रियानिष्परिग्रहा
निस्तुला नीलचिकुरा निरपाया निरत्यया । दुर्लभा दुर्गमादुर्गा दुःखहन्त्री सुखप्रदा
दुष्टदूरा दुराचारशमनी दोषवर्जिता । सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता

मरीच्याख्या कला

सर्वशक्तिमयी सर्वमङ्गला सद्गतिप्रदा । सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी
सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी । माहेश्वरी महादेवी महालक्ष्मीर्मृडप्रिया

महारूपा महापूज्या महापातकनाशिनी । महामाया महासत्त्वा महाशक्तिर्महारतिः
महाभोगा महैश्वर्या महावीर्या महाबला । महाबुद्धिर्महासिद्धिर्महायोगेश्वरेश्वरी
महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना । महायागक्रमाराध्या महाभैरवपूजिता
महेश्वर महाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी । महाकामेशमहिषी महात्रिपुरसुन्दरी
चतुः षष्ट्युपचाराढ्या चतुःषष्टिकलामयी । महाचतुः षष्टिकोटियोगिनीगणसेविता
मनुविद्या चंद्रविद्या चंद्रमण्डलमध्यगा । चारुरूपा चारुहासा चारुचंद्रकलाधरा
चराचरजगन्नाथा चक्रराजनिकेतना । पार्वती पद्मनयना पद्मरागसमप्रभा
पञ्चप्रेतासनासीना पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी । चिन्मयी परमानन्दा विज्ञानघनरूपिणी
ध्यानध्यातृध्येयरूपा धर्माधर्मविवर्जिता । विश्वरूपा जागरिणी स्वपन्तीतैजसात्मिका
सुप्ताप्राज्ञात्मिकातुर्यासर्वावस्थाविवर्जिता । सृष्टिकर्त्रीब्रह्मरूपा गोप्त्री गोविन्दरूपिणी
संहारिणी रुद्ररूपा तिरोधानकरीश्वरी । सदाशिवाऽनुग्रहदा पञ्चकृत्यपरायणा
भानुमण्डलमध्यस्था भैरवी भगमालिनी । पद्मासना भगवती पद्मनाभसहोदरी
उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनावली । सहस्रशीर्षवदना सहस्राक्षी सहस्रपात्
आब्रह्मकीटजननी वर्णाश्रमविधायिनी । निजाज्ञारूपनिगमा पुण्यापुण्यफलप्रदा
श्रुतिसीमन्तसिन्दूरी कृतपादाब्जधूलिका । सकलागमसंदोहशुक्तिसंपुट मौक्तिका
पुरुषार्थप्रदा पूर्णा भोगिनी भुवनेश्वरी । अम्बिकाऽनादिनिधना हरिब्रह्मेन्द्रसेविता

ज्वालिनी कला

नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता । ह्रींकारी ह्रीमती हृद्या हेयोपादेयवर्जिता
राजराजार्चिता राज्ञी रम्या राजीवलोचना । रञ्जनी रमणीरस्या रणत्किङ्किणिमेखला
रमा राकेन्दुवदना रतिरूपा रतिप्रिया । रक्षाकरी राक्षसघ्नी रामा रमणलम्पटा
काम्या कामकलारूपा कदम्बकुसुमप्रिया । कल्याणी जगतीकन्दा करुणारससागरा
कलावती कलालापा कान्ता कादम्बरीप्रिया । वरदा वामनयना वारुणीमदविह्वला

विश्वाधिका वेदविद्याविन्ध्याचलनिवासिनी । विधात्रीवेदजननीविष्णुमाया विलासिनी
क्षेत्रस्वरूपा क्षेत्रेशी क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिनी । क्षयवृद्धिविनिर्मुक्ता क्षेत्रपालसमर्चिता
विजया विमलावन्द्या वन्दारुजनवत्सला । वाग्वादिनो वामकेशी वह्निमण्डलवासिनी
भक्तिमत्कल्पलतिका पशुपाशविमोचिनी । संहृताशेषपाखण्डा सदाचारप्रवर्तिका
तापत्रयाग्निसंतप्तसमाह्लादनचन्द्रिका । तरुणी तापसाराध्या तनुमध्या तमोपहा
चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी । स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्माद्यानन्दसंततिः
परा प्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता । मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका
कामेश्वरप्राणनाडी कृतज्ञा कामपूजिता । शृङ्गाररससंपूर्णा जया जालन्धरस्थिता
ओड्याणपीठनिलया बिन्दुमण्डलवासिनी । रहोयागक्रमाराध्या रहस्तर्पणतर्पिता
सद्यःप्रसादिनी विश्वसाक्षिणी साक्षिवर्जिता । षडङ्गदेवतायुक्ता षाड्गुण्यपरिपूरिता
नित्यक्लिन्ना निरुपमा निर्वाणसुखदायिनी । नित्याषोडशिकारूपाश्रीकण्ठार्धशरीरिणी
प्रभावती प्रभारूपा प्रसिद्धा परमेश्वरी । मूलप्रकृतिरव्यक्ता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी

रुच्याख्या कला

व्यापिनी विविधाकारा विद्याविद्यास्वरूपिणी । महाकामेशनयनकुमुदाह्लादकौमुदी
भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसंततिः । शिवदूती शिवाराध्या शिवमूर्तिः शिवंकरी
शिवप्रिया शिवपरा शिष्टेष्टा शिष्टपूजिता । अप्रमेया स्वप्रकाशाऽमनोवाचामगोचरा
चिच्छक्तिश्चेतनारूपा जडशक्तिर्जडात्मिका ।
गायत्री व्याहृतिः संध्या द्विजवृन्दनिषेविता
तत्त्वासना तत्त्वमयी पञ्चकोशान्तरस्थिता । निःसीममहिमा नित्ययौवना मदशालिनी
मदाघूर्णितरक्ताक्षी मदपाटलगण्डभूः । चन्दनद्रवदिग्धाङ्गी चाम्पेयकुसुमप्रिया
कुशला कोमलाकारा कुरुकुल्ला कुलेश्वरी । कुलकुण्डालया कौलमार्गतत्परसेविता

कुमारगणनाथम्बा तुष्टिः पुष्टिर्मतिर्धृतिः ।

शान्तिः स्वस्तिमती कान्तिर्नन्दिनी विघ्ननाशिनी

तेजोवती त्रिनयना लोलाक्षी कामरूपिणी ।

मालिनी हंसिनी माता मलयाचलवासिनी

सुमुखी नलिनी सुभ्रूः शोभना सुरनायिका ।

कालकण्ठी कान्तिमती क्षोभिणी सूक्ष्मरूपिणी

वज्रेश्वरी वामदेवी वयोवस्थाविवर्जिता ।

सिद्धेश्वरी सिद्धविद्या सिद्धमाता यशस्विनी

विशुद्धिचक्र निलयाऽऽरक्तवर्णा त्रिलोचना । खट्वाङ्गादिप्रहरणा वदनैकसमन्विता

पायसान्नप्रिया त्वक्स्था पशुलोकभयंकरी । अमृतादिमहाशक्तिसंवृता डाकिनीश्वरी

अनाहताब्जनिलया श्यामाभा वदनद्वया ।

दंष्ट्रोज्ज्वलाक्षमालादिधरा रुधिरसंस्थिता

कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृता स्निग्धौदनप्रिया ।

महावीरेन्द्रवरदा राकिण्यम्बास्वरूपिणी

मणिपूराब्जनिलया वदनत्रयसंयुता । वज्रादिकायुधोपेता डामर्यादिभिरावृता

सुषुम्णा कला

रक्तवर्णा मांसनिष्ठा गुडान्नप्रीतमानसा । समस्तभक्तसुखदा लाकिन्यम्बास्वरूपिणी

स्वाधिष्ठानाम्बुजगता चतुर्वक्त्रमनोहरा । शूलाद्यायुधसंपन्ना पीतवर्णातिगर्विता

मेदोनिष्ठा मधुप्रीता बन्धिन्यादिसमन्विता । दध्यन्नासक्तहृदया काकिनीरूपधारिणी

मूलाधाराम्बुजारूढा पञ्चवक्त्राऽस्थिसंस्थिता । अंकुशादिप्रहरणा वरदादिनिषेविता

मुद्गौदनासक्तचित्ता साकिन्यम्बास्वरूपिणी । आज्ञाचक्राब्जनिलयाशुक्लवर्णाषडानना

मज्जासंस्था हंसवती मुख्यशक्तिसमन्विता । हरिद्रान्नैकरसिका हाकिनीरूपधारिणी

सहस्रदलपद्मस्था सर्ववर्णोपशोभिता । सर्वायुधधरा शुक्ल संस्थिता सर्वतोमुखी
सर्वौदनप्रीतचित्ता याकिन्यम्बास्वरूपिणी ।

स्वाहा स्वधा मतिर्मेधा श्रुतिस्मृतिरनुत्तमा
पुण्यकीर्तिः पुण्यलभ्या पुण्यश्रवणकीर्तना ।

पुलोमजार्चिता बंधमोचिनी बंधुरालका
विमर्शरूपिणी विद्या वियदादिजगत्प्रसूः । सर्वव्याधिप्रशमनी सर्वमृत्युनिवारिणी
अग्रगण्याऽचिन्त्यरूपा कलिकल्मषनाशिनी ।

कात्यायनी कालहन्त्री कमलाक्षनिषेविता
ताम्बूलपूरितमुखी दाडिमीकुसुमप्रभा ।

मृगाक्षी मोहिनी मुख्या मृडानी मित्ररूपिणी
नित्यतृप्ता भक्तनिधिर्नियन्त्री निखिलेश्वरी । मैत्र्यादिवासनालभ्या महाप्रलयसाक्षिणी
पराशक्तिः परानिष्ठा प्रज्ञानघनरूपिणी । माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी
महाकैलासनिलया मृणालमृदुदोर्लता । महनीया दयामूर्तिर्महासाम्राज्यशालिनी
आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता ।

श्रीषोडशाक्षरीविद्या त्रिकूटा कामकोटिका
कटाक्षकिंकरीभूतकमलाकोटिसेविता ।

शिरःस्थिता चन्द्रनिभा भालस्थेन्द्रधनुःप्रभा
हृदयस्था रविप्रख्या त्रिकोणान्तरदीपिका । दाक्षायणी दैत्यहन्त्री दक्षयज्ञविनाशिनी

भोगदा कला

दरान्दोलितदीर्घाक्षी दरहासोज्ज्वलन्मुखी । गुरुमूर्तिर्गुणनिधिर्गोमाता गुहजन्मभूः
देवेशी दण्डनीतिस्था दहराकाशरूपिणी । प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डलपूजिता
कलात्मिका कलानाथा काव्यालापविमोदिनी । सचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता

आदिशक्तिरमेयात्मा परमा पावनाकृतिः । अनेककोटिब्रह्माण्डजननी दिव्यविग्रहा
क्लींकारी केवला गुह्या कैवल्यपददायिनी । त्रिपुरा त्रिजगद्वन्द्या त्रिमूर्तिस्त्रिदशेश्वरी
त्र्यक्षरी दिव्यगन्धाढ्या सिन्दूरतिलकाञ्चिता ।

उमा शैलेन्द्रतनया गौरी गन्धर्वसेविता

विश्वगर्भा स्वर्णगर्भाऽवरदा वागधीश्वरी ।

ध्यानगम्याऽपरिच्छेद्या ज्ञानदा ज्ञानविग्रहा

सर्ववेदान्तसंवेद्या सत्यानन्दस्वरूपिणी । लोपामुद्रार्चिता लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला
अदृश्या दृश्यरहिता विज्ञात्री वेद्यवर्जिता ।

योगिनी योगदा योग्या योगानन्दा युगन्धरा

इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी । सर्वाधारा सुप्रतिष्ठा सदसद्रूपधारिणी
अष्टमूर्तिरजा जैत्री लोकयात्राविधायिनी । एकाकिनी भूमिरूपा निर्द्वैता द्वैतवर्जिता
अन्नदा वसुदा वृद्धा ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी ।

बृहती ब्राह्मणी ब्राह्मी ब्रह्मानन्दा बलिप्रिया

भाषारूपा बृहत्सेना भावाभावविवर्जिता ।

सुखाराध्या शुभकरी शोभना सुलभा गतिः

राजराजेश्वरी राज्यदायिनी राज्यवल्लभा । राजत्कृपा राजपीठनिवेशितनिजाश्रिता
राज्यलक्ष्मीः कोशनाथा चतुरङ्गबलेश्वरी । साम्राज्यदायिनी सत्यसंधा सागरमेखला
दीक्षिता दैत्यशमनी सर्वलोकवशङ्करी । सर्वार्थदात्री सावित्री सच्चिदानन्दरूपिणी

विश्वा कला

देशकालापरिच्छिन्ना सर्वगा सर्वमोहिनी । सरस्वती शास्त्रमयी गुहाम्बा गुह्यरूपिणी
सर्वोपाधिविनिर्मुक्ता सदाशिवपतिव्रता । संप्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी

कुलोत्तीर्णा भगाराध्या माया मधुमती मही ।

गणाम्बा गुह्यकाराध्या कोमलाङ्गी गुरुप्रिया

स्वतन्त्रा सर्वतन्त्रेशी दक्षिणामूर्तिरूपिणी । सनकादि समाराध्या शिवज्ञानप्रदायिनी

चित्कलानन्दकलिका प्रेमरूपा प्रियङ्करी । नामपारायणप्रीता नन्दिविद्या नटेश्वरी

मिथ्याजगदधिष्ठाना मुक्तिदा मुक्तिरूपिणी ।

लास्यप्रिया लयकरी लज्जा रम्भादिवन्दिता

भवदावसुधावृष्टिः पापारण्यदवानला । दौर्भाग्यतूलवातूला जराध्वान्तरविप्रभा

भाग्याब्धिचन्द्रिका भक्तचित्तकेकिघनाघना । रोगपर्वतदम्भोलिर्मृत्युदारुकुठारिका

महेश्वरी महाकाली महाग्रासा महाशना । अपर्णा चण्डिका चण्डमुण्डासुरनिषूदनी

क्षराक्षरात्मिका सर्वलोकेशी विश्वधारिणी ।

त्रिवर्गदात्री सुभगा त्र्यम्बका त्रिगुणात्मिका

स्वर्गापवर्गदा शुद्धा जपापुष्पनिभाकृतिः । ओजोवती द्युतिधरा यज्ञरूपा प्रियव्रता

दुराराध्या दुराधर्षा पाटलीकुसुमप्रिया । महती मेरुनिलया मन्दारकुसुमप्रिया

वीराराध्या विराड्रूपा विरजा विश्वतोमुखी ।

प्रत्यग्रूपा पराकाशा प्राणदा प्राणरूपिणी

मार्तण्डभैरवाराध्या मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधूः । त्रिपुरेशी जयत्सेना निस्त्रैगुण्यापरापरा

सत्यज्ञानानन्दरूपा सामरस्यपरायणा । कपर्दिनी कलामाला कामधुक्कामरूपिणी

बोधिनी कला

कलानिधिः काव्यकला रसज्ञा रसशेवधिः । पुष्टा पुरातना पूज्या पुष्करा पुष्करेक्षणा

परंज्योतिः परंधाम परमाणुः परात्परा । पाशहस्ता पाशहन्त्री परमन्त्रविभेदिनी

मूर्तामूर्ता नित्यतृप्ता मुनिमानसहंसिका । सत्यव्रता सत्यरूपा सर्वान्तर्यामिणी सती

ब्रह्माणी ब्रह्मजननी बहुरूपा बुधार्चिता । प्रसवित्री प्रचण्डाऽऽज्ञा प्रतिष्ठा प्रकटाकृति

प्राणेश्वरी प्राणदात्री पञ्चाशत्पीठरूपिणी । विश्रृङ्खला विविक्तस्था वीरमाता वियत्प्रसू:
मुकुन्दा मुक्तिनिलया मूलविग्रहरूपिणी । भावज्ञा भवरोगघ्नी भवचक्रप्रवर्तिनी
छन्दःसारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी । उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी
जन्यमृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिनी । सर्वोपनिषदुद्घुष्टाशान्त्यतीता कलात्मिका
गम्भीरा गगनान्तस्था गर्विता गानलोलुपा ।

कल्पनारहिता काष्ठाऽकान्ताकान्तार्धविग्रहा
कार्यकारणनिर्मुक्ता कामकेलितरङ्गिता । कनत्कनकताटङ्का लीलाविग्रहधारिणी
अजा क्षयविनिर्मुक्ता मुग्धा क्षिप्रप्रसादिनी ।

अन्तर्मुखसमाराध्या बहिर्मुखसुदुर्लभा
त्रयी त्रिवर्गनिलया त्रिस्था त्रिपुरमालिनी ।

निरामया निरालम्बा स्वात्मारामा सुधासृतिः
संसारपङ्कनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डिता । यज्ञप्रिया यज्ञकर्त्री यजमानस्वरूपिणी
धर्माधारा धनाध्यक्षा धनधान्यविवर्धिनी । विप्रप्रिया विप्ररूपा विश्वभ्रमणकारिणी
विश्वग्रासा विद्रुमाभा वैष्णवी विष्णुरूपिणी ।

अयोनिर्योनिनिलया कूटस्था कुलरूपिणी

धारिणी कला

वीरगोष्ठीप्रिया वीरा नैष्कर्म्या नादरूपिणी ।

विज्ञानकलना कल्या विदग्धा बैन्दवासनी
तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थस्वरूपिणी

सामगानप्रिया सौम्या सदाशिवकुटुम्बिनी
सव्यापसव्यमार्गस्था सर्वापद्विनिवारिणी । स्वस्था स्वभावमधुरा धीरा धीरसमर्चिता

चैतन्यार्घ्य समाराध्या चैतन्य कुसुमप्रिया । सदोदिता सदातुष्टा तरुणादित्यपाटला
दक्षिणादक्षिणाराध्या दरस्मेरमुखाम्बुजा । कौलिनीकेवलाऽनर्घ्यकैवल्यपलदायिनी
स्तोत्रप्रिया स्तुतिमती श्रुतिसंस्तुतवैभवा । मनस्विनी मानवती महेशी मङ्गलाकृतिः
विश्वमाता जगद्धात्री विशालाक्षी विरागिणी । प्रगल्भा परमोदारा परमोदा मनोमयी
व्योमकेशी विमानस्था वज्रिणी वामकेश्वरी । पञ्चयज्ञप्रिया पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी
पञ्चमी पञ्चभूतेशी पञ्चसंख्योपचारिणी । शाश्वती शाश्वतैश्वर्या शर्मदा शंभुमोहिनी
धरा धरसुता धन्या धर्मिणी धर्मवर्धिनी । लोकातीता गुणातीता सर्वातीता समाश्रिता
बन्धूककुसुमप्रख्या बाला लीलाविनोदिनी । सुमङ्गली सुखकरी सुवेषाढ्या सुवासिनी
सुवासिन्यर्चनप्रीताऽऽशोभना शुद्धमानसा । बिन्दुतर्पणसंतुष्टा पूर्वजा त्रिपुराम्बिका
दशमुद्रासमाराध्या त्रिपुराश्रीवशङ्करी । ज्ञानमुद्रा ज्ञानगम्या ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी
योनिमुद्रा त्रिखण्डेशी त्रिगुणाम्बा त्रिकोणगा ।

अनघाऽद्भुतचारित्रा वांछितार्थप्रदायिनी

अभ्यासातिशयज्ञाता षडध्वातीतरूपिणी । अव्याजकरुणामूर्तिरज्ञानध्वान्तदीपिका
आबालगोपविदिता सर्वानुल्लङ्घ्यशासना । श्रीचक्रराजनिलया श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी
श्रीशिवाशिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका ।

परिभाषाशेष :—

श्रीमणिसध्रीबिविधगुडदरान्देशैश्च पुष्टनादाभ्याम् ।

नामसु शतकारम्भा न स्तोभो नापि शब्दपुनरुक्तिः

मतिवरदाकान्तादावकारयोगेन रक्तवर्णादौ ।

आकारस्य क्वचन तु पदयोर्योगेन भेदगेन्नाम

साध्वी तत्त्वमयीति द्वैधा त्रैधा बुधो विद्यात् ।

हसवती चानर्घेत्यर्धान्तादेकनाम्नैव

शक्तिनिष्ठाधामज्योतिःपरपूर्वकं द्विपदम् ।

शोभनसुलभा सुगतिस्त्रिपदैकपदानि शेषाणि

निधिरात्मा दम्भोलिः शेर्वाविरिति नाम पुंलिङ्गम् ।

तद्ब्रह्मधाम साधुज्योतिः क्लीबेऽव्ययं स्वधा स्वाहा

* **कामकला विलासः** । सरोजिनी हिन्दी व्याख्या सहित ।
श्यामकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

* **कामाख्यातन्त्रम्** । 'ज्ञानवती' हिन्दी टीका सहित ।
आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

* **कुलार्णवतन्त्रम्** । 'नीरक्षीरविवेक' हिन्दी टीका सहित ।
डॉ॰ परमहंस मिश्र

* **तन्त्रराजतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । श्रीकपिलदेव नारायण

* **तन्त्रालोक** । अभिनवगुप्तपादाचार्य । जयरथकृत 'विवेक' संस्कृत टीका एवं राधेश्याम चतुर्वेदी कृत हिन्दी टीका । (1-5 भाग सम्पूर्ण)

* **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** । (उपासनाखण्ड) हिन्दी टीका सहित ।
जगदीशचन्द्र मिश्र

* **मुद्राविज्ञान-साधन** । डॉ॰ श्यामाकान्त द्विवेदी

* **वरिस्यारहस्यम्** । भास्करराय विरचित 'प्रकाश' संस्कृत एवं श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द' कृत हिन्दी टीका सहित ।

* **श्रीविद्या-साधना** । (शाक्तसम्प्रदाय एवं श्रीविद्या) । (श्रीविद्या का सर्वांगपूर्ण शास्त्रीय विवेचन) । डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी

* **लक्ष्मीतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । श्रीकपिलदेव नारायण

* **सौन्दर्यलहरी** । 'लक्ष्मीधरी' संस्कृत एवं 'सरला' हिन्दी व्याख्या ।
सुधाकर मालवीय

* **स्पन्दकारिका** । हिन्दी टीका सहित । डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी

* **स्वच्छन्दतन्त्रम्** । संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ।
प्रो॰ राधेश्याम चतुर्वेदी

* **स्वरोदयशास्त्र एवं यौगिक-तान्त्रिक साधनाएँ** ।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली 110007